

संगीतमय

बनाए

(प्रकाश से संवत् २००२ तक)



डॉ. वनमाला पर्वतकर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

संगीतमय बनारस (पुराकाल से संवत् २००२ तक)

उत्तरवाहिनी गंगा काशी के कंठहार की तरह सुशोभित है और विद्या गुरु विश्वनाथ और 'रसो वै सः' के प्रतीक भगवान् माधव काशी को अलौकिक बना देते हैं । कालांतर में इसका नाम बनारस हो गया । साहित्य, संगीत, कला, वेद, वेदाङ्ग, पुराण, इतिहास, आयुर्वेद ज्योतिष और सभी शास्त्रों की शिक्षा और अध्ययन का यह विश्व प्रसिद्ध केन्द्र हो गया । जहाँ से ज्ञान का प्रकाश मिले वही स्थान काशी कहा जाता है, अतः संत महात्मा, भगवान् बुद्ध, जैन तीर्थंकर, गुरु नानकदेव सभी यहाँ से जुड़े हैं । महाप्रभु वल्लभचार्यजी की परम्परा में भी बनारस एक प्रमुख केन्द्र है जो संगीत से जुड़ा है ।

विद्वानों और संतो की इस परम्परा ने इतिहास में 'बनारसी' विशेषण को महत्वपूर्ण बना दिया । इसी तरह से अति प्राचीनकाल से निरंतर बनारस की संगीत परम्परा भी अपनी विशेषताओं के लिये ख्याति प्राप्त है । यहां गायन, वादन और नृत्य तीनों की परम्परा उच्चकोटि के साहित्य से अंलकृत है, फलतः लय, ताल और स्वरों के मेल से 'बनारसी संगीत' का अपना एक विशेष आकर्षण है । इसी पर कुछ प्रकाश डालने का इस पुस्तक में प्रयास किया गया है । इसके मार्गदर्शन में लेखिका के गुरु पं० शिवकुमार शास्त्री का विशेष योगदान है ।

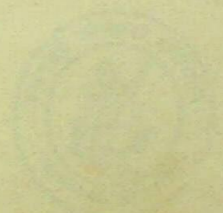
ISBN : 978-93-81999-05-9

मूल्य: 600/-

सन् - 2012

मंगलसूचक चमत्कार
प्रमाणार्थ चमत्कार

संस्कृत
श्री अमृतलाल शर्मा



वाराणसी, उत्तरप्रदेश

संगीतमय बनारस

(पुराकाल से सम्वत् २००२ तक)

लेखिका

डॉ. वनमाला पर्वतकर



शारदा संस्कृत संस्थान

वाराणसी

प्रकाशक :

शारदा संस्कृत संस्थान

सी० २७/५९, जगतगंज, वाराणसी-२२१००२

दूरभाष -०५४२-२२०४१६८, मो०-९८३९२४५३६५

e-mail : sharadabhawan@yahoo.co.in

website : www.sharadasansthan.in

© लेखक

ISBN : 978-93-81999-05-9

प्रथम संस्करण : २०१२

मूल्य : ६००/-

आवरण :

श्री रमेन्द्र पाण्डेय

संगणक :

डी.जी. प्रिंटर्स

खोजवाँ बाजार, वाराणसी

दूरभाष : ०९९३५४०८२८७

मुद्रक :

प्रभा प्रेस

जे. १३/२४ के. चौकाघाट, वाराणसी

मो.-09838927095

SANGEETMAY BENARAS

(VIKRAM SAMVAT-1 to 2002)

Written by
Dr. Vanamala Parvatkar



SHARADA SANSKRIT SANSTHAN
VARANASI

Publishers:

SHARADA SANSKRIT SANSTHAN

(Publishers & Distributors)

C. 27/59, Jagatganj Varanasi-221002

Tel. : 0542-2204168 (Off.) Mo.-9839245365

e-mail : sharadabhawan@yahoo.co.in

website : www.sharadasansthan.in

© Writer

ISBN : 978-93-81999-05-9

Edition : 2012

Price : 600/-

Awaran :

Sri Ramendra Pandey

Composed by :

D.G. Printers

Khojawa Bazar, Varanasi

Mob. 09935408287

Printed by :

PRABHA PRESS

J. 13/24 K. Chaukaghat, Varanasi

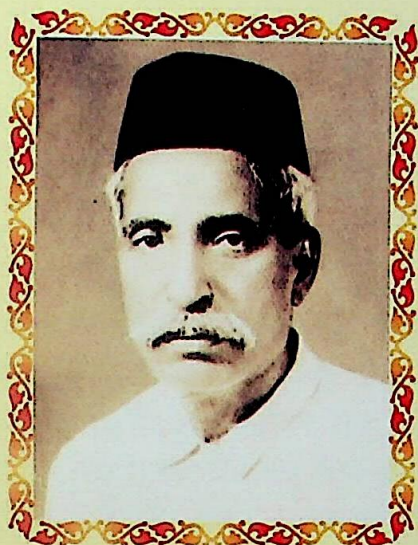
Mo. 09838927095

❀ स्मर्पण ❀



पूजनीया मातृकल्या श्रद्धेया भाभी
स्व. आशा मालवीय
(पत्नी: श्रद्धेय गुरुदेव पं० शिवकुमार शास्त्री)

जिन्होंने मेरे जीवन में करुणा, सहनशीलता को बल प्रदान किया,
जिनकी अनुकम्पा से यह कार्य सम्पन्न हुआ।
उनकी पावन स्मृति में सादर सस्नेह समर्पित.



पितामह
स्व० लक्ष्मणराव पर्वतकर (स्वप्नमाम)



माता-पिता
स्व० कुंदमाला पर्वतकर-स्व० रामकृष्ण पर्वतकर

जिनके आशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हुआ
उनके चरणों में निवेदित.

Padmashri

Pt. Balwantraai Bhatt 'Bhavarang'

Mrs. Vasundhara B. Bhatt

पद्मश्री

पं. बलवन्तराय भट्ट 'भावरंग'

श्रीमती वसुन्धरा भट्ट

दिनांक : 16.12.11

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि मेरी पुत्रीवत् प्रिय चि. डॉ. वनमाला पर्वतकर "संगीतमय बनारस" शीर्षक से पुस्तक का प्रकाशन कर रही हैं। लगभग पाँच दशकों के 'काशीलाभ' का ऋण चुका रही हैं। सुदूर गोमान्तक प्रदेश से आकर काशीवास का सहज पुण्य तो प्राप्त किया ही साथ ही स्वर-ताल रूपी दिव्य पुण्य लाभ भी प्राप्त हुआ।

काशी के संगीतकारों से मेरी सदैव से अपेक्षा रही कि काशी के गौरवमय सांगीतिक इतिहास को लिपिबद्ध कर प्रकाशित करावें। अस्तु, उक्त अपेक्षा डॉ. वनमाला के इस प्रकाशन से पूर्ण होगी, ऐसा विश्वास है।

वैदिक काल से आरम्भ करके, इतिहास के पन्नों से गुजरते हुए, सन्तों के योगदान- उनके प्रभाव, शास्त्रीय परंपरा, अन्य परंपराओं सहित स्वातंत्र्य पूर्व एवं पश्चात् की स्थितियों-परिस्थितियों से लेकर काशी के अन्यान्य विविध आयोजनों का यथासम्भव पूर्ण समावेश करने का प्रयास प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है। इनके इस प्रयास को काशीरत्न पं. शिवकुमार शास्त्री का सहज प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन भी मिला है। वस्तुतः 'बनारस' तत्व से डॉ. वनमाला का परिचय कराने का श्रेय भी उन्हीं को जाता है। मुझे विश्वास है कि बनारस और बनारस के संगीत के अध्ययन, इतिहास और प्रामाणिकता के सन्दर्भ में समुचित मार्गदर्शन कर सकेगी।

डॉ. वनमाला को उनके इस प्रकाशन हेतु हार्दिक बधाई देते हुए भगवान आशुतोष से प्रार्थना करता हूँ कि अपने मंगलमय आशीष से, इन्हें इसी प्रकार अभिसिंचित करें।

शिवमस्तु

बलवन्तराय भट्ट

"Nada-Tanu", B. 33/33-31, Rohit Nagar Colony, Nariya, P.O. BHU, VARANASI - 221 005

"नादतनु" बी. 33/22-21, रोहित नगर कालोनी, नरिया, पो. का.हि.वि.वि., वाराणसी - 221 005

फोन नं. 0542 - 2312743, 2318743.

भूमिका

बनारस में शाम जिस रौनक से उतरती थी वह भोर के झुटपुटे तक गाने-बजाने की गूंज से सजी रहती और भोर में पौ फटते-फटते घंटी, घंटे शहनाई और नगाड़े की ध्वनि से अरुणोदय को निमंत्रण देती यहाँ के लोगों को आनंद से उल्लसित करती अपने आनन्दवन नाम को सार्थक करती रही है। घंटों ओर नगाड़ों की ध्वनि के साथ कीर्तन और मंत्रों की ध्वनि से वातावरण में अलौकिक तरंगें प्रवाहित होती रही जिससे भोर होते-होते नियमपूर्वक गंगा स्नान, विश्वनाथ दर्शन करनेवाले- “हर हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गंगे” भैरवी में गाते वातावरण को संगीत से सींच देते रहे हैं। बनारस मंदिरों का शहर है। 36 करोड़ देवता यहाँ वास करते हैं। उन सभी मन्दिरों में यहाँ के श्रद्धालु उनकी आराधना में भक्ति-भाव के साथ संगीत को महत्व देते रहे हैं।

बनारस में सभी विद्याओं, कलाओं के अध्ययन में शास्त्रीय-भारतीय चिंतन को हमेशा से महत्व दिया गया जिससे बनारस में प्राचीन काल से शास्त्रार्थ की परम्परा रही जिसमें दूर-दूर से विद्वान यहाँ शास्त्रार्थ करने आने के लिए अपने को धन्य समझते रहे। ऐतिहासिक दृष्टि से भी बनारस पर इतने अधिक आक्रमण होने के बाद भी बनारसी लोगों ने अपनी पूरी परम्पराओं को सुरक्षित रक्खा।

बनारस के नित्य नैमित्तिक जीवन में, यहाँ के त्योहारों में, मेलों में, सामाजिक जीवन में, संस्कारों में संगीत को हमेशा से महत्व दिया गया। यहाँ के संतों ने भी इसे पुष्ट किया। संगीत की ऐसी परम्परा लोकजीवन के साथ अभिजात्य जीवन में भी बनारस में पुष्ट रही। बनारस के अभिजात्य

संगीत में यहाँ के गायक और गायिकाओं ने विश्व में अपना विशेष स्थान बनाया। ऐसी बनारस की सुदृढ़ संगीत परम्परा पर प्रकाश डालने का प्रयास है।

सामाजिक जीवन में आनन्द-प्राप्ति के लिये प्रयुक्त संगीत के साथ-साथ अभिजात्य संगीत का बनारस का घराना अत्यधिक समृद्ध है। दुखद यह है कि घराने पर लिखी पुस्तकों में बनारस का कहीं नामोल्लेख भी नहीं मिलता है। पुस्तकों में घरानों में ग्वालियर, आगरा, किराना और जयपुर के साथ-साथ अन्य नाम भी मिलते हैं। कहा जाता है कि कम से कम 3 पीढ़ी वंश-परम्परा या शिष्य-परम्परा में एक विशेष गायकी गायी जाती है या बाज बजाया जाता है तो वह घरानों के रूप में स्थापित हो जाता है। बनारस के संगीत के घरानों के अध्ययन के समय 8-9 पीढ़ियों की वंशावली प्राप्त हुई है।

बनारस के संगीत घरानों में इतने अधिक गायक वादक हो गये हैं जिस पर विस्तार से लिखना दुरूह कार्य है साथ ही समय, श्रम और धन साध्य है। अतः कुछ कलाकारों के घरानों पर ही प्रकाश डाला जा सका है।

अभी तक बनारस के संगीत पर कालक्रमानुसार विस्तृत कार्य नहीं हुआ है। बनारस के संगीत से सम्बन्धित उल्लेख यत्र-तत्र ऐतिहासिक पुस्तकों में, यात्रियों के विवरण में प्राप्त होते हैं। पुरातात्विक अवशेषों और भित्ति चित्रों द्वारा भी विषयवस्तु पर प्रकाश पड़ता है।

कृतज्ञता ज्ञापन

बनारस के संगीत पर कार्य करने हेतु भारत के मानव संसाधन के संस्कृति विभाग से वरिष्ठ शोधवृत्ति प्राप्त हुई थी। इसके लिए मैं संबद्ध मंत्रालय की आभारी हूँ।

उस समय किये कार्य को पुस्तक रूप में छापने के लिये, प्रकाशन के लिये तैयार करने में व्यक्तिगत परेशानियों से विलंब हुआ उससे कई साक्षात्कार देने वाले विद्वान दिवंगत हो गये जिनसे मुझे इस विषय पर अमूल्य जानकारी प्राप्त हुई। उन सभी की मैं आभारी हूँ।

इस कार्य को करने में सर्वप्रथम मैं गोपाल मन्दिर के परम श्रद्धेय काशी षष्ठ पीठाधीश्वर गोस्वामी महाराजश्री श्री श्याम मनोहर महाराजश्री को नमन करती हूँ जिनके आशीर्वाद से यह कार्य सम्पन्न हुआ है।

संगीत संबंधी साक्षात्कार

पुष्टिमार्गीय षष्ठ पीठाधीश्वर गोस्वामी श्याम मनोहर महाराजश्री, प्रसिद्ध साहित्यकार स्व. पंडित सीताराम चतुर्वेदी, स्व. डॉ. शुकदेव सिंह, स्व. डॉ. विनायक रामचंद्र रटाटे, ऐतिहासिक प्रामाणिकता को सँवारने हेतु डॉ. विश्वनाथ भारद्वाज इन सबकी आभारी हूँ।

बनारस के संगीत घराने संबंधी जानकारी

स्व. पं. किशन महाराज, स्व. पं. रंगनाथ मिश्र, स्व. पं. सुरेन्द्र मोहन मिश्र (सितार वादक), स्व. पं. आशुतोष भट्टाचार्य (कविराज, तबला वादक), स्व. पं. मन्त्रुलाल मिश्र, पं. कामेश्वर नाथ मिश्र, पं. सुरेन्द्र मोहन मिश्र (गायक, तबला वादक), श्री श्यामलाल कीर्तनिया, श्री तुलसीराम पखावजी, उस्ताद चाँद खाँ (सारंगी वादक), स्व. पल्टू महाराज (तबला वादक), स्व. पं. हरिशंकर मिश्र इन सबने जानकारी देकर पुस्तक की सामग्री को समृद्ध बनाने हेतु सहयोग दिया इन सबकी मैं आभारी हूँ।

बनारस घराने संबंधी प्रामाणिक सूचनायें, दुर्लभ चित्रों को देकर पियरी घराने के श्री सुरेन्द्र मोहन मिश्र (गायक) ने अमूल्य योगदान दिया है। वे बनारस घराने के वंशज भी हैं। ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ भी हैं। इनका भी आभार व्यक्त करती हूँ।

इस पुस्तक को लिखने में श्रद्धेय पं. शिवकुमार शास्त्री जो मेरे गुरुजी हैं, इन्होंने दुर्लभ सूचनाओं, सामग्रियों, चित्रों को उपलब्ध कराया, साथ ही पूरा मार्गदर्शन किया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बनारस से संबंधित इनके ज्ञान को संकलित करके मैंने लिखा है। पुस्तकों का दुर्लभ होना, भाषा संबंधी सीमा से बनारस के संगीतज्ञों, विद्वानों के साक्षात्कार तथा मेरे गुरुजी पं. शिवकुमार शास्त्री जो बनारस के विशेष व्यक्तित्व हैं, इनसे प्राप्त विवरणों के आधार पर ही मैंने लेखन कार्य किया है। इनके प्रति

कृतज्ञताज्ञापन करने में मैं असमर्थ हूँ। बनारस घराने के संगीत का प्रशिक्षण भी मुझे इनसे मिला है। इसके लिए मेरे ऊपर सदा गुरु ऋण रहेगा। गुरु पत्नी श्रद्धेया स्व. श्रीमती आशा मालवीय एवं परिवार के सभी सदस्यों की मैं आभारी हूँ जिन्होंने मुझे संगीत शिक्षण और लेखन में स्नेहपूर्ण अनुकूल वातावरण दिया।

केन्द्रीय ग्रंथागार (काशी हिन्दू विश्वविश्वविद्यालय), सारनाथ संग्रहालय के अधिकारी, डॉ. टी.के. विश्वास (निदेशक भारत कला भवन, का.हि.वि.वि.), डॉ. व्यास (भारत कला भवन, का.हि.वि.वि.) काशी संगीत समाज के श्री काजू बाबू, श्री कृष्ण कुमार रस्तोगी जिनके द्वारा काशी के संगीतज्ञों के कुछ चित्र, रिकार्डिंग, विवरण प्राप्त हुये। डॉ. प्रिय कुमार चौबे जिन्होंने कुछ कलाकारों के साक्षात्कार में मुझे मदद की इन सबकी मैं आभारी हूँ। बहुमूल्य सुझाव देने और उत्साहवर्धन करने के लिये मैं डॉ. गौतम चटर्जी की आभारी हूँ।

संगीतज्ञों की वंशावलियाँ पं. कामेश्वर नाथ मिश्र लिखित “काशी की संगीत परम्परा” नामक पुस्तक से उनकी अनुमति से ली है। चित्रों को रेखांकित करने के लिये अपने भाई चि. रविकुमार पर्वतकर की आभारी हूँ। अक्षर संयोजन, मुद्रण कार्य के लिये श्री राजकुमार जायसवाल, डी.जी. प्रिंटर्स, खोजवाँ बाजार, इनकी आभारी हूँ। प्रकाशन कार्य के लिये शारदा संस्कृत संस्थान, जगतगंज के श्री विनोद राव पाठक की आभारी हूँ।

पितातुल्य श्रद्धेय पद्मश्री पं. बलवंतराय भट्ट “भावरंग” इन्हें प्रणाम करती हूँ। जिन्होंने संगीत में उन्नति करने के लिये हमेशा आशीर्वाद दिया।

अंत में परम पूज्य माता स्व. कुंदबाला पर्वतकर, पिता स्व. रामकृष्ण पर्वतकर, पितामह लयभास्कर स्व. लक्ष्मणराव पर्वतकर उर्फ खाप्रुमाम गोवा के दोनों तबला के प्रकाण्ड विद्वान को श्रद्धापूर्वक नमन करती हूँ। जिनके आशीर्वाद के बिना यह कार्य असंभव था।

इन सबके प्रति धन्यवाद ज्ञापन करते हुये सब विद्वानों एवं गुरुजनों के प्रति नमन करते हुये बनारस के ऊपर लिखा मिर्जा गालिब का शेर अर्ज करती हूँ—

‘त आल अल्लाह बनारस चश्म-ए-बदूर,
विहिश्त-ए-खुर्रम-ओ-फिरदौस-ए-मायूर।’

(बनारस एक हरा-भरा सुन्दर स्वर्ग है- अल्लाह इसे बुरी नज़रों से बचाये)।

प्रस्तुत पुस्तक छः अध्यायों में विभक्त है। आवश्यकतानुसार अध्यायों को खण्डों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय : खण्ड-क में संगीत के संदर्भ में कुछ शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द सृष्टि, नाद, ब्रह्म, काल, ताल, भाव, रस इत्यादि भारतीय चिंतन के विषय जिनको जाने बिना संगीत का महत्त्व नहीं है, उस पर विचार किया है।

खण्ड-ख में बनारस क्या है? इसकी विशेषताओं को संक्षेप में बताने का प्रयास किया है।

द्वितीय अध्याय : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 3 खण्डों में विभक्त है। **खण्ड-क** में प्राचीन काल से 15 शताब्दी तक प्राप्त बनारस के उल्लेख तथा संगीत की स्थिति पर विचार व्यक्त किया है। **खण्ड-ख** में 16वीं शताब्दी से स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनारस तथा संगीत के क्षेत्र में राजनीतिक उथल-पुथल के परिणाम का विवरण दिया है। **खण्ड-ग** में बनारस के सांगीतिक उत्थान में काशी नरेशों का योगदान इसका उल्लेख किया है।

तृतीय अध्याय : **खण्ड-क** में संतों का संगीत जगत में योगदान इस संबंध में चर्चा करते हुये भारत के कुछ संतों के साथ बनारस के कबीरदास, रैदास, तुलसीदास, बाबा कीनाराम एवं काष्ठ जिह्वास्वामी का बनारस के संगीत जगत पर प्रभाव और विशेषतायें उल्लिखित हैं। **खण्ड-ख** में बनारस के पुष्टमार्गीय षष्ठपीठ जहाँ पर राग सेवा, भोग, शृंगार के साथ पुष्टिमार्ग में संगीत अनिवार्य अंग है। उसकी राग पद्धति आज भी भारतीय संगीत के राग पद्धति के समान ही है। पुष्टिमार्ग में सेवा के सीमित समय में पखावज पर संगीत के साथ पद गायन होता है। यह परम्परा बनारस में जीवित है, बनारस के संगीत से जुड़ी है। यह परम्परा 500 वर्ष पुरानी है इसलिये उसका भी उल्लेख यहाँ किया है।

चतुर्थ अध्याय : गायन, वादन, नृत्य के बनारस घरानों का विवरण दिया है।

पंचम अध्याय : बनारस के पियरी घराने का इतिवृत्त जिसका लगभग 300 वर्षों का प्रामाणिक विवरण उल्लिखित है जिसमें पं. छोटे रामदास जी संगीत के क्षेत्र में एक विशेष हस्ती थे। इनका गायन, वादन दोनों में विशाल कार्यक्षेत्र देखकर पता लगता है कि ऐसा दूसरा उदाहरण दुर्लभ है। साथ ही उनके शिष्य पंडित शिवकुमार शास्त्री जी जिन्होंने अपने गुरु की धरोहर सुरक्षित रख्खा है उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला है।

षष्ठम अध्याय : बनारस की कुछ विशेषतायें जिन्होंने बनारस को संगीत जगत में महत्वपूर्ण बनाया और ये सभी बनारस की मौलिक विशेषतायें हैं। अतः इन्हें सात खण्डों में विभाजित किया है। **खण्ड-क** बनारस की वैशिक परम्परा से संगीत की शिक्षा प्राप्त करके बनारस का संगीत के क्षेत्र में नाम उजागर किया। **खण्ड-ख** में संगीत बनारसी महफिल का विवरण दिया है। **खण्ड-ग** में बनारस के संगीत से जुड़े मेले उनका उल्लेख है। **खण्ड-घ** में बनारस का बेजोड़ अनूठा संगीत मेला जो कभी होता था उसका विवरण दिया है। **खण्ड-ङ** में बनारस की लीलाओं में संगीत। **खण्ड-च** में बनारस के रंगमंच का संगीत। **खण्ड-छ** में बनारस के शौकिया संगीतज्ञों जिन्होंने बनारस में दूसरे पेशे को अपनाकर संगीत जगत में बनारस का नाम किया उनके उल्लेखमात्र है।

उपसंहार : इतने बड़े विषय को संक्षेप में लिखने का प्रयास करते हुए 1945 ई. तक की संगीत की स्थिति के बारे में मैंने विवेचन किया है। पुराने सभी संगीतज्ञों के नामों का उल्लेख पुस्तक में करना संभव नहीं था अतः कुछ विशेष संगीतज्ञों के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया है। बनारस की निगमागम शास्त्र सम्मत परम्परा पर विशेष अध्ययन हेतु विचार व्यक्त किये हैं।

वनमाला पर्वतकर

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय :	1-28
(क) संगीत : भारतीय चिंतन	1-26
(ख) बनारस की संस्कृति	17-28
द्वितीय अध्याय : ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	29-110
(क) प्राचीन काल से 15वीं शताब्दी तक	29-74
(ख) 16वीं शताब्दी से स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनारस	75-96
(ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान	97-110
तृतीय अध्याय	111-168
(क) संतों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव	111-143
(ख) महाप्रभु वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्गीय उपासना में संगीत का स्थान, धराने और पूरे संगीत जगत पर प्रभाव	144-168
चतुर्थ अध्याय	169-226
बनारस की संगीत परम्परा	

पंचम अध्याय**227-250**

पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी की
संगीत परम्परा एवं विशेषतायें

षष्ठ अध्याय**251-276**

(क) वैशिक परम्परा	251-256
(ख) संगीत की बनारसी महफिल	257-260
(ग) बनारस के संगीत से जुड़े मेले	261-264
(घ) बुढ़वा मंगल, बनारस का बेजोड़ अनूठा संगीत मेला	265-269
(ङ) बनारस की लीलाओं में संगीत	270-271
(च) बनारस के रंगमंच का संगीत	272-273
(छ) बनारस के शौकिया संगीतज्ञ	264-276

उपसंहार**277-286****परिशिष्ट छाया प्रतियाँ****287-327**

(1) बाबा कीनाराम का विष्णुपद	287-291
(2) बनारस के संगीत घराने की वंशावलियाँ	292-317
(3) पं. रामसेवक जी द्वारा लिखित पुस्तक ताल प्रकाश और तालविज्ञान का मुख पृष्ठ, संवत् 1953	319
(4) सहायक ग्रंथों की सूची	320-327



चित्र सूची

1. राजघाट की मृण्मूर्तियाँ लगभग 7वीं शताब्दी.	30
2. सारनाथ में प्राप्त पुरातात्विक 6ठी शती वंशीवादक, 11वीं शती सरस्वती	32
3. बनारस के रामनगर के दुर्गामन्दिर के पुरातत्त्व में संगीत - शिल्प लगभग 19वीं शती	98,109
4. बनारस के संत कबीर, रैदास, कीनाराम बाबा, काष्ठ जिह्वा स्वामी, तुलसीदास	127,128,133, 134,136
5. षष्ठ पीठाधीश्वर गोस्वामी श्री जीवनलाल जी महाराज 'गुलाबबाड़ी' में उपस्थित	152
6. संगीत का बनारस घराना समूह	170
7. बनारस संगीत घराने के प्रयाग जी, मिठाईलाल जी, दरगाही जी	180
8. पं. बड़े रामदास जी	203
9. जेम्स प्रिंसेप के पुस्तक से (1820-1840 ई.) हिन्दू नर्तकियाँ	214
10. पं. हरिशंकर मिश्र	217

11. बनारस का पियरी घराना समूह	219
12. पं. लक्ष्मीदास मिश्र पियरी घराने के वीणा वादक	221
13. पियरी घराने के पं. शिवसहाय, पं. रामसेवक, पं. पशुपति सेवक, पं. शिवसेवक	222,223
14. पियरी घराने के पं. शिवसेवक जी के पुत्र पं. रामकृष्ण सेवक, पं. भवानी सेवक, पं. विष्णु सेवक	224
15. पं. छोटे रामदास जी आकर्षक व्यक्तित्व	228
16. पं. छोटे रामदास जी संगीत साधक	228
17. पं. छोटे रामदास जी कौमुदकी वीणा व सरस्वती वीणा बजाते	230
18. पं. छोटे रामदास जी विभिन्न वेष में	232,235
19. मौजुद्दीन खाँ, बड़ी मोती बाई	236
20. हुस्नाबाई	238
20. पं. शिवकुमार शास्त्री पारिवारिक धरोहर संभाले हुए	240
21. पं. शिवकुमार शास्त्री सितारवादक	246
22. विधाधरी, रसूलनबाई, सिद्धेश्वरी देवी	252,253
23. जेम्स प्रिंसेप के समय बुढ़वा मंगल का बाह्य दृश्य 1820-1840 ई.	266

अध्याय-1

(क) संगीत : भारतीय चिन्तन

सर्व विद्या की राजधानी काशी या बनारस जहाँ विद्या की साधना हमेशा से जीवन की पूर्णता में चलती रही। प्राचीनकाल से मोक्ष प्राप्ति के लिये काशी में आने के लिये सभी लोग उत्सुक रहे। काशी का सुन्दर वनीय परिवेश, कई पुष्करिणी, मोक्षदायिनी गङ्गा का प्रवाह, सभी विद्याओं के गुरु महेश्वर फक्कड़ बाबा विश्वनाथ सभी के आकर्षण का केन्द्र रहे। साधु, संत, विद्वान साहित्यकार, संगीतकार, कलाकार सभी ने काशी या बनारस को निकट से देखा, यहाँ की मुक्त, निर्मल, मौजमस्ती भरी संस्कृति से प्रभावित होकर अपनी-अपनी विद्याओं का अध्ययन करके काशी या बनारस की संस्कृति में विलीन होकर काशी के ही होकर रहे और काशी या बनारस को विश्व में सर्वोच्च स्थान पर स्थापित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्हीं विद्याओं में बनारस का संगीत भी एक है।

बनारस की संगीत परम्परा का यदि गहराई से अध्ययन करें तो संगीत प्रस्तुत करने वाले सभी व्यक्ति या कलाकार अपनी साधना से आनन्दबोध की अनुभूति करते हैं जिसे रसानुभूति कहते हैं अतः बनारस के संगीत को समझने के पूर्व भारतीय चिन्तन को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय चिन्तन में सृष्टिक्रम से ही सभी प्रकार के शास्त्र और विद्याओं अवतरण होता है। इसी क्रम में उपवेद गांधर्ववेद का भी प्राकट्य हुआ। भारतीय परम्परा का शाश्वत प्रश्न है- “कोऽहं?” जिसका उत्तर “सोऽहं” के रूप में मिलता है। “सोऽहं” को परिभाषित किया है- “रसो वै सः”¹ ने। संगीत रसानुभूति द्वारा सभी को आनन्द का अनुभव कराता है। श्रीमद्भागवत पुराण में गजेन्द्र मोक्ष² के प्रसंग में उल्लिखित है कि किसी के अद्भुतचरित का गायन करने वाले आनन्द समुद्र में मग्न रहते हैं। संगीत का आनन्द नाद समुद्र की तरंगों का उद्वेलन है। हरिदासस्वामी ने भी आनन्दसमुद्र की जगह नाद समुद्र कहा है—

तरैया नाद महानद को.....

नाद समुद्र में मग्न होकर कलाकार आनन्द की अनुभूति करता है जिसे रसानुभूति कहते हैं। वैदिक वाङ्मय में उल्लेख मिलता है जल ही रस है और वह ही अमृत है।³ हमारी परम्परा में संगीत का प्रवाह श्रुति, स्मृति, पुराण आदि के आधार पर ही स्थित है। इसीलिये यहाँ की परम्परा को समझने के लिये शास्त्रों में उल्लिखित शब्दों का विवेचन प्रस्तुत करना अनिवार्य है। जैसे- सृष्टिक्रम, परब्रह्म, रस, भाव, वाणी, वाक्, काल, ताल, विद्या, अविद्या आदि।

सृष्टिक्रम- शास्त्रों के मत-मतान्तरों के अनुसार सृष्टिक्रम के विवरणों में अन्तर मिलता है। साम्प्रदायिक आचार्यों ने अपने-अपने ढंग से विवरण और व्याख्या की है, व्यक्ताव्यक्त स्वरूपवाला परम् शिव है या महाविष्णु या जगद्धात्री? उसको सभी तरह से मानकर भी एक ही निष्कर्ष निकलता है कि ऐसा कोई है जिसके लिये वेद भी “नेति नेति” बताते हैं। साथ ही सभी विवरणों के रहते उसका अनुभव करने वाले पूरी तरह वर्णन करने में असमर्थ रहते हैं और ‘स्वसंवेद्य’ कहते हैं। अतः यह उद्धरण प्रस्तुत है—

1. तैत्तिरीय उपनिषद्, 2/7.

2. अत्युद्भुतं तच्चरितं सुमंगलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नः - श्रीम.भा.पु. 8/3/20.

3. (क) “आपो ज्योति रसोमृतम्”

(ख) “अमृत वै आपः” - कौशितकी ब्रा. 12/1.

शैव जिसे शिव, वेदान्ती ब्रह्म, बौद्ध बुद्ध प्रमाण पटुनैयायिककर्ता, जैनी अर्हन्त और मीमांसक कर्म कहते हैं (इन नामों से जानते हैं) वह त्रैलोक्यस्वामी हम लोगों को इच्छित फल दें।'

ध्यान देने पर इस परम्परा में हरि या विष्णु का प्राधान्य स्पष्ट होता है। यथा नित्य-नैमित्तिक सभी कर्मों के लिये संकल्प बोले जाते हैं जिसमें विष्णु शब्द विद्यमान है—

हरिः ऊँतत्सदिती विष्णुर्विष्णु श्रीमद्भगवतो

महापुरुषस्यविष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य.....आदि

इसीलिये सम्प्रदाय भेद से विवरणों में जो अन्तर मिलते हैं वे सभी एकमात्र सत्य को प्रतिपादित करते हैं जो अज, अमर, अनन्त, अगोचर, सर्वव्यापी, निर्गुण आदि गुणों से जाना जाता है परन्तु वर्णनातीत है जैसे-स्वानन्दानुभूति। साथ ही महामाया से युक्त होकर “एकोऽहं बहुस्याम्” उक्ति के अनुसार अनेक आकाशगंगाएँ और अनन्त ब्रह्माण्ड के रूप में संपूर्ण सृष्टि में, प्रत्येक कण-कण में व्याप्त होकर सर्वव्यापी हो जाता है। सर्वव्यापी होने पर भी वह गूढ़ ही रहता है। ऊँकार को ही शास्त्रों में उसका स्वरूप या प्रतीक बनाया गया है।

हमारी परम्पराओं में दृश्य जगत की रचना के पहले तात्त्विक सृष्टि का एक क्रम माना गया है। जिसके अनुसार रचना के पूर्व कुछ भी नहीं था केवल एक सत्ता थी जो अव्यक्त थी। जिसे परब्रह्म, परमेश्वर आदि संज्ञा से जानते हैं। अपने एकान्त स्वभाव से असत् के प्रभाव को हटाने के लिये उस परमेश्वर ने अपनी भाव रूपी माया शक्ति से युक्त होकर सृष्टि की स्वेच्छा से रचना की। उसी परब्रह्म परमात्मा ने अपने पुरुष रूपांश से चिदाभास को स्थापित किया। फलतः क्रमशः मिथ्या अज्ञान का नाश करनेवाला विज्ञान स्वरूप महत्तत्त्व चिदाभास गुण, काल एवं परमात्मा की इच्छानुसार अहंकार,

1. यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो।

बौद्धा बुद्ध इति प्रमाण पटवः कर्तेति नैयायिकाः॥

अर्हन्नित्यथ जैन शासनरता कर्मेति मीमांसकाः।

सोऽयं विद्-धातु वाञ्छित फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः॥

अध्याय-1 (क) संगीत : भारतीय चिन्तन/3

अहंकार के वैचारिक रूप अधिभूत अध्यात्म और अधिदैव कार्य, कारण और कर्ता आदि अस्तित्व में आते गये।

सात्विक, राजस, तामस प्रभावों से अहंकार से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ और उनकी तन्मात्रायें सभी अस्तित्व में आईं। इन सभी भगवान के अंश रूप महत्तत्त्वादि के अभिमानी विकार, विक्षेप विकार और चेतनांश विशिष्ट देवगण सम्मिलित रूप से परमात्मा की इच्छानुसार सृष्टि करने में सफल नहीं हुये- अन्तर्निहित गुण-भेद के कारण। फलतः उन्होंने उसी आदि देव से प्रार्थना की- हे परमात्मा आप ही आदि देव हैं। हम सभी का स्वभाव भिन्न है। आप ही अपनी क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति हमें दीजिये। जिससे हम आपकी इच्छानुसार सृष्टि की रचना कर सके।

अज, निर्विकार, परब्रह्म, पुराणपुरुष परमात्मा ने कालशक्ति को अंगीकार कर महत्त्व, अहंकार, पंचभूत, पंचतन्मात्रा, मन पंचज्ञानेन्द्रियाँ और पंचकर्मेन्द्रियाँ इन 23 एवं प्रसुक्त कर्मों को क्रियाशक्ति मिलाकर अपने अंशद्वारा अधिपुरुष विराट् रूप को प्रकट किया और अण्डरूप आश्रय स्थल में प्रविष्ट होकर 1000 दिव्य¹ वर्षों तक स्थित रहा।

विराट पुरुष जब ब्रह्माण्ड फोड़कर निकला तब अपने रहने का स्थान खोजने लगा। शुद्ध संकल्प से पवित्र जल की सृष्टि की जिसका नाम 'नर' से उत्पन्न होने के कारण 'नार' पड़ा। उसी में इतने अधिक काल तक रहने के कारण ही उस पुरुष का नाम नारायण पड़ा। इस सम्पूर्ण सृष्टि में जो कुछ भी है सब उसी विराट पुरुष के अंश से बने है।

प्रलय समुद्र की जलराशि के बीच शेषशायी विष्णु के नाभी से निकले कमल में विराजमान ब्रह्मा के चारों मुखों से 4 वेदों ऋग्वेद, यजु, साम, अथर्व साथ ही आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्ववेद, स्थापत्यवेद उपवेद के रूप में प्रकट हुये। साथ ही चारों मुख से इतिहास पुराण पाँचवाँ वेद प्रकट हुआ।

उन्हीं ब्रह्मा की क्रीडा रूप में निषाद धैवत, पंचम, मध्यम, गांधार, रिषभ, षडज ये गेय सात रूप में प्रकट हुये। नाद या परा आदि वाक् रूप

1. दिव्य वर्ष कालमान में, श्रीमद्भागवत, 3/6/6.

में वही व्यक्त होता है और वही ऊँ-कार वैखरी से शब्दब्रह्म का बोध कराता है। ब्रह्मा की जीव से स्पर्श वर्ण (व्यंजन) पंचवर्ग बने क च ट त प और देह से स्वर वर्ण (अकारादि) हुये। उन्हीं की इन्द्रियों से उष्मवर्ण शषसह और बल से अंतस्थ य र ल व बने। यही अक्षर ब्रह्म हमारे शरीर में षटचक्रों¹ में मातृका रूप में रहते हैं और यही ऊँकार में समाहित रहते हैं जो अक्षर ब्रह्म माने जाते हैं। उन्हीं व्यंजन और स्वर युक्त होकर बीजमंत्र भी बनते हैं। बीजमंत्र जीव की प्रगति में साधना रूप में स्वीकारे जाते हैं। अक्षर समूह को 'वर्णमाला'² के नाम से जानते हैं। शब्द ब्रह्म में नानाशक्तियों से उपबृंहित विस्तार पूर्वक ये दिखते हैं। व्यंजन स्वर से रहित होने पर निर्गुण मानने का उल्लेख है।

स्वरयुक्त व्यंजनों से पद, पद से मिलकर अनेक छन्द बनते हैं। शब्द संयोजना से जब भावाभिव्यक्ति करते हैं तब रसमय हो जाते हैं और वे काव्य कहलाते हैं। काव्य में छन्द रचना मात्राओं पर और संगीत ताल की छन्दरचना भी मात्राओं पर ही आधारित है।

वेदान्त और सांख्य ये दो मूलभूत तत्त्व सृष्टिक्रम की चिन्तन धारयें हैं। इन्हीं को अलग-अलग चिंतकों ने अलग-अलग दृष्टि से समझाया है। वेदान्तियों के अनुसार ब्रह्म ही इस दृश्यमान संसार का निर्मित और उपादान कारण है। यही सर्वव्यापक आत्मा और विश्व की जीवशक्ति है। यही वह मूलतत्त्व है जिससे संसार की सब वस्तुयें पैदा होती हैं तथा फिर उसी में लीन जो जाती है।³

आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से वनस्पति और संपूर्ण जीवों की सृष्टि वर्णित है।⁴

जिसका मन के द्वारा मनन नहीं होता, जो शक्ति से ही मन मनन

1. षटचक्र निरूपण-अजपाजय विधि.

2. श्रीमद्भागवत्, 3/12.

3. शारीरिक भाष्य, 2/83.

आस्ति तावन्नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावं सर्वज्ञ सर्व शक्ति समन्वित ब्रह्म।

4. तै.ब्रा. 2/1, श्रीमद्भागवत पुराण में भी ऐसा ही वर्णन है।

व्यापार में समर्थ होता है उसी ब्रह्म को तुम जानो।¹

श्रीमद्भागवत् गीता में “ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म” अर्थात् ऊँ अक्षर ब्रह्म है। वेदों को भी ब्रह्म का निःश्वास कहा है। उसी प्रकार ब्रह्मवाचक ऊँकार को भी वेद का मूल, उसकी मात्राओं से ऋगादि वेदों का होना बताया है।

यथा—

1. ओमित्येकाक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्²
2. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति³
3. वेदः प्रणव एवाग्रे⁴
4. ततो ऽ भूत्त्रिवेदोङ्कार⁵
5. सर्वमन्त्रोपनिषद वेदबीजं प्रणवस्वरूपम्⁶
6. स ओमित्येतदक्षरम् पश्यत⁷
7. प्रत्यगानन्दं ब्रह्म पुरुषं प्रणवस्वरूपम्⁸

ऊँकार की अकार, उकार और मकार तीनों ऋक, साम, यजुः वेदों के निदर्शक हैं। वे क्रमशः पद, स्वर, ताल (छन्द) के मूल स्रोत हैं। प्रणव का चतुर्थ आधा है वह नाद है जो प्रथम तीन के साथ मिलकर आनन्द प्रकट करने में समर्थ है वही रस है वही अथर्व का प्रतीक है। यही अंतिम बिन्दु नाद के साथ लय में लीन होकर साधक या जीव पूर्ण मुक्ति का बोध करता है साधक ब्रह्मवाचक प्रणव ऊँकार में लीन होकर “रसौ वै सः” की अनुभूति करते हैं जो संगीत का चरम लक्ष्य है।

1. केन.उप, 1/5, यन्मनना न मनुते ये नाहर्मनो मतम् तदेव ब्रह्म त्व विद्धि।
2. माण्डुक्य उप. 1.
3. कठ. 1/15.
4. श्रीमद्भागवत, 11/17/11.
5. श्रीमद्भागवत, 12/6/39.
6. श्रीमद्भागवत, 12/6/41.
7. गोप ब्राह्मण, 5/1/15.
8. नारायणथर्व शीर्ष.

नाद

यह ब्रह्मवाचक प्रणव ऊँकार की आनंदानुभूति के लिये नाद और वाक् दोनों को समझना आवश्यक है। वाक् और नाद दोनों शब्द करीब-करीब समान होते हुये भी संप्रदायों (निगमागम) से संबद्ध हैं। जैसे वेदों में वाक् है तो वेदोत्तर आगम में नाद की चर्चा है।

वेदोत्तर आगमपुराणों में नाद को वही स्थान है जो वेद में वाक् को। बड़े-बड़े शास्त्रकारों ने नाद को ही ब्रह्म कहा है। संगीत में नाद ब्रह्म और वैयाकरणों ने शब्द ब्रह्म। योगियों ने नाद को निर्गुण ब्रह्म का सगुण रूप कहा है। प्रणव या नाद की उपासना से ब्रह्म साक्षात्कार होता है। शब्द को आकाश का गुण बनाकर उसे आकाश के समान व्यापक बनाया है। नाद का अर्थ ध्वनि। वर्ण, पद, वाक्य स्वर सब उस ध्वनि के व्यक्त रूप हैं। नाद की उत्पत्ति न=प्राणतत्त्व, द=अग्नितत्त्व के संयोग से हुई है। जीव ब्रह्म अपनी अभिव्यक्ति के लिये अपने अनुभव और अपनी विचारशक्ति के प्रगतिकरण के लिये नाद का द्विधा उपयोग करता है। 1. वर्ण रूप, 2. स्वर रूप।

वर्ण रूप नाद के संबंध में व्याकरण शास्त्र न्याय और मीमांसा में विशद् चर्चा है। स्वर रूप नाद की विवेचना संगीतशास्त्र में मिलती है।

नाद की महिमा बताते हुये कहा है—

नादान्देस्तु परम्पारं न जानाति सरस्वती।

अद्यापि मज्जनभयातुं बं वहति वक्षसि॥

हनुमत मत

नादानुसन्धान नमोस्तुभ्यं त्वां साधनं तत्त्व पदस्य जाने।

भवत्प्रसादात् पवने न साकं विलीयते विष्णु पदे मनो मे॥

भगवत्पाद् आद्यशंकरकृत योग तारावली

आहत और अनाहत नाद के दो भेद कहे गये हैं। जिस प्रकार योगी अनाहत नाद में तल्लीन होकर ब्रह्मानंद का अनुभव करता है उसी प्रकार साधना करने वाला गायक योगी आहत नाद में तल्लीन होकर ब्रह्मानंद का

अनुभव करता है। बिना आघात का नाद अनाहत नाद, पिण्ड शरीर में प्राणवायु से नाभी तक जाकर अपान वायु से टकराकर उल्टा सिर की ओर चलता है। उससे प्रणव रूपी घोष अनहत नाद व्यक्त होता है जिसका विवरण तानसेन ने अपने पद में दिया है—

अनहत अंग उपज्यो घट में

शारङ्गदेव ने “संगीत रत्नाकर” में नाद की स्तुति करते हुये कहा है—

जो समस्त जग का चैतन्य है, जो अद्वितीय है, आनन्दमय है, जो विश्वरूप में विवृत हुआ है हम भी उस नाद ब्रह्म की उपासना करते हैं।¹

नाद से वर्ण की, वर्ण से पद की और पद से वाणी की अभिव्यक्ति होती है। वाणी से ही सब व्यवहार चलता है। अतः यह सम्पूर्ण जगत नाद के अधीन है।² वाणी से सारा विश्व उत्पन्न हुआ है। ये समस्त भुवन गिरा से ही जन्म पाये हैं। इस अमर और मर्त्य संसार की जननी वाणी है। इसी से संसार को नाद या शब्द का परिणाम कहा गया है।³

वेद में परा, पश्यति, मध्यमा और वैखरी ये वाणी या वाक् के चार भेद कहे गये हैं। जिन्हें ब्राह्मण ही समझते हैं। इनमें तीन गुप्त होने से सामान्य लोग इन्हें नहीं पहचानते। केवल चौथे स्तर की वैखरी ही मनुष्य बोल पाते हैं।⁴

1. सं. रत्नाकर, 1/3/1.

चैतन्य सर्व भूतानां विवृतं जगदात्मना।

नादब्रह्म तदानन्दम द्वितीयमुपास्महे।।

2. सं. रत्नाकर, 1/2/2.

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वा च।

वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमतो जगत्।।

3. वाक्य. 1/112.

वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे वाच इत।

स सर्वममृतं यच्च मत्यमिति श्रुतिः।।

4. ऋग्वेद, 1/164/45.

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विहृब्रह्मिणा ये मनीषिणः।

गुह्य त्रिणि नेङ्ग्यन्ति तुरीये वाचो मनुष्या वदन्ति।।

इसी ब्रह्म रूपी वाक् से स्वर, पद, ताल की सृष्टि हुई है। व्याकरण शास्त्र के अ इ उ या उदात्त अनुदात्त, स्वरित हो, सामगान के कृष्ट प्रथम हो या गांधर्व और संगीत के षड्जादि स्वर हो सभी वाक्त्व जन्म हैं। वाक् को ही शब्द ब्रह्म मानते हैं। ब्रह्म के नाद ब्रह्म, शब्दब्रह्म और परब्रह्म स्वरूप में जो शब्द ब्रह्म या नाद ब्रह्म को जान लेता है उसको विष्णु का परम पद प्राप्त होता है। उसे नाद के ज्योति रूप में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

नादस्यांतरगतं ज्योतिः ज्योतिरंतरगतं मनः।

यन्मनो विलयं याति तद् विष्णोः परमं पदम्॥

ह. प्रदीपिका

व्यापक दृष्टि से देखने पर लगता है कि नाद का अनाहत रूप ही परा वाक् है जो समस्त विश्व में व्याप्त है। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। हठयोग की साधना से वह सुनाई देता है तभी ज्योति के भी दर्शन होते हैं तब विष्णु के परमपद की प्राप्ति हो जाती है।

मेरे पू. दादाजी लयभास्कर स्वर्गीय लक्ष्मणराव पर्वतकर उर्फ 'खाप्रुमाम' गोवा के तबला के उच्चकोटि के कलाकार थे। उन्हें इस ज्योति के दर्शन हुये थे उसी कारण वे बिहड़ लयकारियाँ करने में विश्व में एकमात्र कलाकार सिद्ध हुये थे जिनके लिये पं. रविशंकर जी ने कहा है कि ऐसा कलाकार न भूतकाल में हुआ न भविष्य में होगा। उन्हें विष्णु के परमपद की प्राप्ति हो गई थी।

नाद और ध्वनि में अंतर है। ध्वनि के लिये कहा है—

शब्दो ध्वनिश्च वर्णं च मृदंगादि भवेत ध्वनिः।

कण्ठ संयोगजन्मानो वर्णस्ते कादयो मताः॥

अर्थात् ध्वनि आघात जन्म है। सामान्य रूप से सुनी जा सकती है यही आहत नाद है। अनाहत नाद अंतर्ध्वनि है जिसे इन्द्रियातीत भी कहा जा सकता है।

ध्वनि के बिना न कोई काल है न काल के बिना कोई ध्वनि। जहाँ नाद की उत्पत्ति होती है वहाँ काल अवश्य विकसित रहता है।

नाद जब हुआ तब संपूर्ण सृष्टि देश ओर काल से संबद्ध हुई। अतः सृष्टि के नादात्मक के साथ कालात्मक (तालात्मक) हुई और तालचक्र के द्वारा कालचक्र से जुड़ गई। ताल के अभाव में नाद निःशब्द है।¹

इस प्रकार वैदिक संहिता, ब्राह्मण ग्रंथों की अपेक्षा उपनिषद ग्रंथों में नाद की चर्चा आती है जो योग तंत्र और संगीत में आकर स्थिर हो जाती है। वाक् के चार स्तरों के समान नाद के आहत और अनाहत दो स्तर हैं। जिस प्रकार वैखरी वाक् बोलने-सुनने के लिये सर्वसाधारण के लिये सुलभ है वैसे ही आहत नाद भी सर्वत्र व्यवहार में बोलने-सुनने में अनुभूत है। प्रसिद्ध है कि पाणिनी के अष्टाध्यायी में व्याकरण शास्त्र के आधारभूत अ इ उ ण आदि चतुर्दश सूत्र हैं वे शिव के डमरू से उत्पन्न माने गये हैं। नंदिकेश्वर काशिका में बताया है कि नटराज शिव ने नृत्य के अन्त में डमरू बजाया उसी से 14 माहेश्वर सूत्र निकले हैं—

नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्।

उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेताद्विमर्शे शिवसूत्र जालम्॥

इन्हीं सूत्रों से स्वर, वर्ण बने और “रुद्रडमरूद्भव विवरण” के अनुसार ‘अ इ उ ण’ इत्यादि से षडज, रिषभ, गंधार आदि स्वर और इन्हीं से 108 ताल की उत्पत्ति हुई।

अतः चर्चित वाक् के समान शब्द ब्रह्म, नाद ब्रह्म भी व्याकरण, योग तन्त्र, संगीत आदि में प्रयुक्त है। इनकी अलग-अलग महिमा और शक्ति हो तो भी वैदिक वाङ्मय के विद्वानों द्वारा की गई व्याख्याओं और फलादेश में बहुत साम्य है। वाक् ब्रह्म, शब्द ब्रह्म और नाद ब्रह्म की उपासना से परमत्त्व या परब्रह्म तक साधक या संगीतज्ञ पहुँचता है इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

लय

संगीत में नाद के बाद दूसरा तत्त्व लय है। भारतीय संगीत में कालतत्त्व

1. औमापतम्, 5.

यत्र नादस्य संभूतिस्तत्र तालो विजृम्भते।

नादात्मकमिदं देवि सर्वं तालमयं जगत्॥

लय, ताल के रूप में व्यक्त होता है। लय का अर्थ लीन होना, प्रलय होना। एक अर्थ यह भी है कि स्वर ताल के संयोग से सुनने वाला परमानन्द में लीन हो जाये वह भी लय है। 'संगीत दामोदर' में कहा है कि लय विशारदों ने 40 प्रकार की लय बताई है। भगवान भी लय के वश में रहते हैं।'

योगतारावली नामक ग्रन्थ में नादानुसंधान संबंधी प्रथम श्लोक में ही 1 लाख 25 हजार प्रकार की लय का उल्लेख मिलता है।

सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि वसन्ति लोके।

नादानुसंधानसमाधिमेकं मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्॥

योगतारावली

संगीत में लय गति बताने के अर्थ में वर्तमान में प्रयुक्त है। यह लय तालचक्र और स्वरसमूह के संयोग से प्रकट होती है। काल निस्सीम है। उसका ज्ञान सीमा से बाँधें बिना या खण्ड बनाये बिना संभव नहीं है। भारतीय संगीत के मूल तत्त्व स्वर और लय है। स्वर नादाधीन है। स्वर से राग की उत्पत्ति तथा लय से ताल की उत्पत्ति होती है।

भरत ने गांधर्व को "स्वस्ताल पदात्मकम्" कहा है। लय के बिना संगीत का कोई अस्तित्व नहीं है। काव्य में लय तत्त्व छन्द में अभिव्यक्त होता है। संगीत में ताल के रूप में स्वर, पद्य और छन्द इन्द्रिय गोचर तथा अनुभूति जन्य है। छन्द और ताल दोनों ही मापक है। लय को मापने की इकाई संगीत में मात्रा है। विभिन्न मात्राओं से विभिन्न ताल बनते हैं।

सृष्टिक्रम में भी एक लय रहती है। सब कल्पों में सृष्टिक्रम एक सा ही है। अंतर केवल इतना है कि महाकल्प के प्रारम्भ में प्रकृति से क्रमशः महत्त्वादि की उत्पत्ति होती है। कल्पों के प्रारम्भ में प्राकृत सृष्टि ज्यों कि त्यों रहती है। केवल वैकृत सृष्टि नये रूप से होती है। इसमें कालतत्त्व को काल, महाकाल, कल्प, युग, चतुर्युगी, मन्वन्तर आदि खण्डों में विभाजित किया

1. संगीत दामोदर.

चत्वारिंशदि मे प्रोक्ता लया लयविशारदैः।

लयेन वश्यो भगवान् लये लीनो जनार्दनः॥

अध्याय-1 (क) संगीत : भारतीय चिन्तन/11

है। इसी कालखण्ड को मापने वाला ताल है जो भारतीय संगीत की अपनी विशेषता है जो विश्व के संगीत में कहीं भी नहीं है। लय के बीच विश्रांति ही द्रुत, विलंबित का निर्धारण करती है।

विश्रान्तियुक्तया कालक्रियया मानभिष्यते।

क्रियानन्तर विश्रान्तिर्लयः.....

सं. रत्नाकर

संगीत स्वर और लय से सौन्दर्यानुभूति, रसानुभूति करने में समर्थ है। अतः भारतीय शास्त्रों में वर्णित कलाओं के वर्गीकरण में संगीत को कला के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है।

कला

(1) इस शब्द की उत्पत्ति कल धातु से है जिसका अर्थ गिनना या करना है।

(2) आनन्द देने के अर्थ में कलाकृति इन्द्रिय सुख का साधन है।

कला का अर्थ कोई भी व्यावहारिक गुण जिसमें बुद्धि की प्रवीणता से कुछ रचनात्मक कार्य निर्मित होकर सौन्दर्य बोध कराता है। जैसे- संगीत, चित्रकारी आदि। ब्रह्माण्ड पुराण में = 4, 40, 57 में स्वर की 16 शक्तियों में सत्या, लीला, विद्या आदि नामों में 'कला' एक शक्ति बताई गई है।

रस की शोभा को व्यक्त करने वाली क्रिया का नाम कला = कं+लसतीति है।¹

कम् = आत्मानं, शब्दं, ध्वनिं (अधिकाधिक शब्दार्थान्)

लसति = अलंकरोति, शोभां वर्धयति सा कला।

अर्थात् आत्मा, शब्द, ध्वनि आदि अनेक तत्त्वों-पदार्थों की जो शोभा बढ़ावे वही कला है।

चन्द्रमा की 16 कलायें हैं उनके अलग-अलग गुण और प्रभाव हैं। इन्हीं प्रभावों से 64 कलायें अलग-अलग गुण और प्रभावों द्वारा रसों का

1. वल्लभ कुल पुष्टिमार्ग के अनुसार.

बोध कराती हैं। उन्हीं के सौष्ठव से कलाकार एवं देखने-सुनने वाले को रस और सौन्दर्य बोध होता है। प्राचीन ग्रन्थों में ललित कला के लिये शिल्प शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

भरतमुनि ने नाट्यकला को उपयोगी मानकर और उसे सर्वोच्च स्थान देकर कला का आधुनिक अर्थ में प्रयोग किया है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

भ. नाट्यशास्त्र-1/113

भारतीय परम्परा में कलाओं की तुलना में विद्याओं का महत्त्व रहा। परम्पराओं से 14 विद्यायें- चार वेद, छः अंग चार शास्त्र (मीमांसा, न्याय, पुराण और धर्मशास्त्र) है। विद्या की 64 विधाओं को कला कहा है। वात्स्यायन ने 64 कलाओं का उल्लेख किया है। शैव तंत्रों में 64 कलाओं का उल्लेख मिलता है। उसमें भी गीत, वाद्य, नृत्य और नाट्य को पहले गिनाया है। 64 कलाओं में गीत, वाद्य और नाट्य को महत्त्वपूर्ण स्थान देने का कारण है कि संभवतः यह ललित कलाओं के अन्तर्गत रसानुभूति कराने में सबसे अधिक सक्षम है।

दैनिक जीवन में रसानुभूति या आनन्द व्यक्तिगत राग द्वेष से प्रभावित रहता है। इसलिये उसे लौकिक आनन्द कहते हैं। रस को अलौकिक आनन्द कहा गया है क्योंकि अलौकिक आनन्द किसी नाटक को देखने से, अच्छा संगीत सुनने से, अच्छी चित्रकारी देखने से प्राप्त होता है वहाँ भाव व्यक्तिगत राग द्वेष से ऊपर उठकर दर्शक और श्रोता को आनन्द के उस जगत में ले जाता है जहाँ दुख और सुख दोनों भावों की परिणति आनन्द ही है।

हमारी भारतीय परम्परा में इसी को समझाया है। रस और भाव इन दो शब्दों के विवेचन से “भाव” का महत्त्व हमारे आध्यात्मिक विकास से भी है, जीवन से भी है। इसी तरह रस के प्रभाव भी लौकिक अलौकिक दोनों स्तरों में समान रूप से हमारे जीवन से जुड़े हैं। मनोरंजन और चिदानन्द की अनुभूति दोनों की ही रसानुभूति और रस सम्प्रेषण से सीधा संबंध है।

1. श्रीमद्भागवत गीतां, 2/16.

उपनिषद में आनन्द के सार¹ के अर्थ में रस को बताया है। किसी भी पदार्थ के सारे के अर्थ में भी रस शब्द का प्रयोग हुआ है।²

भाव

चित्त के ऊपर प्रभाव पड़ने से जो विक्षोभ होता है उस अनुभूति को भाव कहते हैं। मन में जिसके प्रभाव से रस बोध उत्पन्न होता है उसे भाव कहते हैं।

नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः।

उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥³

अर्थात् बिना भाव के सत्-असत् का बोध नहीं होता।

रस

कला द्वारा प्राप्त आनन्द के लिये 'रस' शब्द का प्रयोग भारतीय चिन्तन की विशिष्ट अभिव्यक्ति है। भरत के नाट्यशास्त्र में रस का प्रयोग सर्वप्रथम नाट्य के प्रसंग में ही हुआ है।

विभावानुभावव्याभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्तिः।

अर्थात् स्थाई भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस उत्पन्न होता है। यह परिभाषा भरत के नाट्यशास्त्र में दी है। इसके विशद विवेचन में जाने की आवश्यकता नहीं है।

संगीत की दृष्टि से कहीं तो सुख-दुःख के बोध को स्पष्ट करने के लिये और आनन्दानुभूति को प्रकट करने के लिये संगीत में भी भारतीय साहित्य के समान रसों को माना है।

भरत ने हास्य में मध्यम-पंचम, वीर रौद्र अद्भूत में षड्ज-रिषभ, करुणा में गंधार निषाद और वीभत्स, भयानक में धैवत स्वरों का प्रयोग करना चाहिये ऐसा बताया है जो नाट्य के संदर्भ में है। संगीत में शृंगार,

1. रसो वै सः/रसं ह्येबायं लब्धाऽऽनन्दीभवति, तै.उ. 2/7/1.

2. एषां भूतानां पृथिवि रसः आपो रसोऽपामोषधयो, ओषधीनां पुरुषो रसा, पुरुषस्य वाग्रसः वाच ऋग्रसः साम ऋचः साम रसः साम्यं अग्दीथो रसः छां, 1/1/2.

3. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/16.

वीर, करुणा और शांत रस की अनुभूति रागों द्वारा श्रोता को अवश्य होती है। वास्तव में संगीत का मुख्य उद्देश्य रसोत्पत्ति द्वारा “रसो वै सः” की स्थिति तक पहुँचना ही है। रस संगीत का सर्वस्व है। नाटकों में अभिनय हो या गाना, बजाना, बातचीत के उतार-चढ़ाव में प्रयुक्त काकू का प्रयोग भावों द्वारा रसनृति में समर्थ होता है। भक्ति के पदों को गाने से संगीतज्ञ और श्रोता दोनों भक्ति का ही आनन्द प्राप्त कर भावयुक्त हो जाते हैं। संगीत की इसी साधना के माध्यम से क्रिया विधि विशेष को जानने वाले भक्त भी हुए हैं जो योगस्थ और योगारूढ़ होकर परम तत्त्व में लीन हो गये हैं। इनका प्रमाण संत साहित्य का अध्ययन करने से आसानी से मिलता है।

उपर्युक्त विवरण से सिद्ध होता है कि भारतीय संगीत ऋग्वेदादि अपरा विद्याओं में से प्रत्येक विद्या के विषय संबद्ध तत्त्वों से जुड़कर समग्रता को प्राप्त हुआ है। स्वर-ताल पदात्मक निगम, वाद्य-नृत्यात्मक आगम सम्बद्ध नाद मूलक संगीत हो, इनके मुख्यांग तत्त्व ऋक यजुः, साम ही है। इस गांधर्व या संगीत विद्या-कला-दर्शन के स्वर-वर्ण-उच्चारण-मुद्रायें-हस्त-पादादिका निश्चित लय-मात्रा-ताल (छन्द) में संचालन, पठन-पाठन-उपासना आदि के लिये उचित काल (मुहूर्त) की जानकारी, उसके व्याकरण विशिष्ट शब्दों के निर्वचन आदि की व्यवस्था वेदाङ्ग (षडङ्ग) से सिद्ध होती है। पुराणेतिहास से सांगीतिक महत्त्व, उसके प्रयोक्ताओं की दिव्य भव्य कहानियों की पुष्टि होती है तो न्याय-मीमांसा और धर्मशास्त्रों में इसका यथोचित विचार किया मिलता है।

उपवेदों में से ‘गांधर्व उपवेद’ तो इस विद्या की विधि-प्रयोग और सिद्धान्तों को पूर्ण रूप से बताता है और अंततोगत्वा ब्रह्म स्वरूपता तन्मयता तक पहुँचाने वाले रस तत्त्व जिससे परमानन्द की प्राप्ति होती है वह अथर्व से सिद्ध है। फलतः इन अपरा विद्याओं से परा के निकट पहुँचा जाता है और अन्त में पराविद्या ब्रह्मविद्या उपनिषदीय ज्ञान से संगीत साधक शिवरूप हो जाता है।

सर्वविदित है कि निगम-में ‘वाक्तत्त्व’ को जो स्थान है वही आगम में ‘नाद तत्त्व’ का है। आगमानुयायी पं. शाङ्गदेव ने आनन्दवन स्वयं प्रकाशित

शिव को 'नाद तनु' कहा है। वास्तव में वह शिवसमग्र स्वर संदर्भ अर्थात् षडजादिस्वरों की अभिव्यंजक श्रुतियों का आधार स्तम्भ है जिससे ग्राम-वर्ण-अलंकार और जाति उत्पन्न होते हैं। यह उपनाद ब्रह्म का सगुण रूप है। पुराणों के अनुसार उस नाद तनु शिव की परमप्रिय सर्व विद्या की राजधानी "काशी" क्रीडा स्थाली है, उस काशी में रहने वाले समस्त जड़, चेतन, जीव उस नादरूप शिव की "देवोभूत्वा देवं यजेत्" न्याय के अनुसार अपनी नादोपासना में तल्लीन रहते हैं। इसीलिये वे सभी शिवस्वरूप हैं। पुराण आदि शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर लिखे गये 'कुट्टिनीमतम्' आदि ग्रंथों में स्पष्ट कहा गया है कि भोग मोक्षदायिका परम सिद्ध नगरी का आश्रय करने वाले समस्त नर-नर्तक गायक (स्त्री-पुरुष) वेश्या-गणिका आदि शिवतुल्य है। ऐसी इस नगरी की महिमा है।

प्रकृत संदर्भानुसार वाराणसी या बनारस नामों से प्रसिद्ध इस नगरी में रहकर प्राचीन काल से वर्तमान तक जिन, गायक, वादक, नर्तकों (स्त्री-पुरुष) ने अपनी साधना की है वे निश्चयेन उपर्युक्त वेदादि वाङ्मय का बोध प्राप्त कर अपने इस सिद्ध विद्या कला दर्शन का उत्तरोत्तर विकास कर चुके हैं। उसमें अधिकाधिक प्राविण्य प्राप्त कर, नादतनु का साक्षात्कार कर चुके हैं जो परा विद्या का लक्ष्य है। इन्हीं समस्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस अध्याय में आध्यात्म की विद्याओं की चर्चा की गई है।



(ख) बनारस की संस्कृति

उत्तर वाहिनी, पुण्य सलिला गंगा के पश्चिम तट पर बसी काशी, शिव के त्रिशूल पर विराजमान काशी केवल भूमण्डल ही नहीं तो त्रैलोक्य में सबसे न्यारी है। इसीलिए पाताल के दैत्य-दानव-नाग तथा स्वर्ग के देवी-देवता, गंधर्व, अप्सरायें किन्नर सभी यहाँ आने के लिए तरसते हैं। यहाँ के यज्ञ-यागादि, गीत-संगीत, कला-कौशल, रीति-रिवाज, सौन्दर्य-वैभव आदि वहाँ देखने-सुनने नहीं मिलता है। इस नगरी की महिमा अलौकिक है। इसके विशेष गुणधर्म एवं भौगोलिकता के कारण इसके अनेक नाम मिलते हैं। काशी नामकरण प्राचीन है। इसके बाद वरुणा और असि नदी पर स्थित होने के कारण वाराणसी नाम पड़ा। इसी वाराणसी को अविमुक्त आनंद वन, रुद्रावास अंत में बनारस नाम से ख्याति मिली। इसी बनारसी संस्कृति के विकास का परिणाम सब जगहों पर 'बनारसी' शब्द जुड़ता गया जो बनारस की विशेषताओं का सूचक बना जैसे बनारसी पान, बनारसी लंगड़ा, बनारसी साड़ी, बनारसी भांग बूटी, बनारसी बहरी अलंग, बनारसी संगीत का घराना। सब में केवल बनारस की विशेषतायें हैं जिससे बनारस प्रसिद्ध हुआ।

संतों की, साहित्यकारों की, कलाकारों की नगरी में सभी ने बनारस की मौज-मस्ती से फक्कड़पन का स्वभाव अपनाकर पूरे विश्व में विशेष स्थान बनाया जिसका आनंद लेने संपूर्ण विश्व से बनारस में भ्रमण करने के लिये

आज भी लोग उत्सुक हैं अतः ऐसी क्या चीज है जिसने बनारस को इतना महत्वपूर्ण बनाया है यह जानने के लिये सर्वप्रथम बनारसी संस्कृति क्या है यह जानना आवश्यक है। यह बनारसीपन, बनारसी मिजाज, बनारसी मौज-मस्ती जानने के बाद ही हम समझ सकते हैं कि यहाँ का संगीत घराना कैसे विकसित हुआ होगा।

वाराणसी या बनारस का एक प्राचीन नाम आनन्दवन भी है और यह महाश्मशान भी है। यहाँ के जनमानस की वृत्ति का आधार गंगा, विश्वनाथ और भगवान् आनंदकन श्री कृष्णचन्द्र भी हैं। भगवान् राम की मर्यादा और महावीर श्री हनुमान के आदर्शों से यहाँ जन जीवन प्रेरणा लेता रहा है। गंगा के निर्मल प्रवाह के समान यहाँ का जनमानस बिना भेद-भाव के स्वच्छ और स्वस्थ आनंद का प्रेमी रहा है। फलतः इस लोकोत्तर आनन्दकानन की दिव्य-भव्य प्रकृति और यहाँ के अधिष्ठाता औषडदानी के स्वभाव का प्रभाव यहाँ के जनजीवन पर पड़ा और जिसकी कुछ विशेषतायें सदा से बनी रही। इसी बनारसीपन की विशेषताओं पर कुछ विचार—

(1) महाश्मशान- यहाँ के रहने वालों को क्षणभंगुण जीवन की चेतावनी देकर राग द्वेषरहित आनंदित जीवन के लिये प्रेरित करती यहा कहावत—

**चना चबैना गंग जल जो पुरवै करतार
काशी कबहु न छोड़िये विश्वनाथ दरबार**

इसीलिये बनारसी मूलतः संतोषी स्वभाव के होते हैं। काशी में रहने वालों के लिये—

काश्यां वासः सन्ता संगः गंगाम्भ शंभुपूजनम् कहा जाता है।

(2) भगवान की सेवा के लिये जिस प्रकार विभिन्न भोज्य पदार्थों को अलग-अलग उनकी विशेषताओं के साथ नैवेद्य समर्पित किया जाता है वैसे तो असली बनारसी 'जीव' भी ऋतु और काल के अनुरूप ही खाने-पीने का ध्यान रखकर भोजनादि का आनंद लेता रहता है। साथ ही मौसम के अनुसार ही इत्र व सुगंधित वस्तुओं का भी व्यवहार करता है।

(3) “तन मन निर्मल राखिये” के उपदेश पर चलता हुआ बनारसी “बहरी अलंग”¹ और “साफा पानी”² देकर स्वच्छ शरीर और वस्त्र का रोज ध्यान रखता ही है। साथ ही “महावीर विक्रम बजरंग बली” की प्रेरणा से दंड बैठक, मुदगर जोड़ी गदा फेरकर, काया में मालिश करवाकर सबेरे कचौड़ी, जलेबी, दूध और शाम को भांग, ठंडई के बाद मलाई के सेवन का भी प्रेमी रहता है।

(4) गंगा में नौका विहार का आनंद राजा से लेकर रंक तक सभी लेते हैं।

(5) चाहे गहरे बाजी³ हो या महफिल नवाजी हो धनी और निर्धन सभी बनारसी एक दिल होकर उसका आनंद लेते हैं। बटेरबाजी, कबूतरबाजी, बुलबुलबाजी, पतंगबाजी आदि अनेक बाजियों के साथ दिल्लगी बाजी का भी बनारस में एक समय बहुत बोलबोला था जिसमें बड़े-बड़े साहित्यकार भी चूकते नहीं थे जो बनारस के मौज-मस्ती की विशेषता रही।

(6) यहाँ के मेले और तमाशों में सदा से गरीब, अमीर सभी बराबरी से मौजमस्ती लेते रहे। चाहे कार्तिक मास में अँवरातरे “लिट्टी बाटी” का “अहरा” लगाना हो यो चैत में होने वाले मेले “बुढ़वा मंगल” में गाने, बजाने, नाचने का मजा लेना हो सभी बनारसी समान रूप से मिलकर उसमें आनंद लेते रहे।

1. बहरी अलंग- उस स्थान को कहते हैं जहाँ कम बस्ती हो अर्थात् जहाँ शहरी हवा छू तक नहीं जाती। बहरी अलंग के स्थान पर प्राकृतिक छटा मनोरम हो ऐसे स्थान पर कुँआ या तालाब, निपटने के लिये थोड़ी आड़ या छायादार वृक्ष हो। ऐसे स्थानों पर पहुँचकर लोग पहले भांग बूटी पीस कर ठंडई के साथ उसका सेवन करके दूर निपटने जाते हैं।
2. साफा पानी- निपटने के कार्य के बाद कसरत, कुश्ती आदि के बाद नहाने का कार्य घंटों चलता है उसके बाद शरीर के सभी कपड़ों को वे कितने भी साफ हो धोना अनिवार्य है उसमें भी बहुत समय लगाते हैं यह बनारसी मस्ती का द्योतक हैं नहाने के बाद टीका लगाना, मलाई खाना, पान घुलाना अनिवार्य है इन सब कामों बनारसी जीव अपना घंटों का समय व्यतीत करता है फिर देर रात घर वापस लौटते हैं।
3. एक्का और घोड़े के विशेष शौक को बनारस में गहरेबाजी कहते हैं।

(7) असली बनारसी जीव हेली-मेली, पास-पड़ोसी, सभी के मरनी-करनी में बराबरी से साथ निभाता रहा है।

(8) बनारसी शौकीन सितार, सुर-बहार, बीन, तबला, पखावज, गाना खुद सीखते रहे हैं और यहाँ का सर्वसाधारण आज भी गंगा किनारे सबेरे गंगा के घाट पर और गलियों में भैरवी गाता हुआ सुनाई और दिखाई पड़ जायेगा।

(9) यहाँ के मन्दिरों में या संत-महात्माओं के दरबार में सभी बनारसी उसी भक्ति-भाव से यथावसर सम्मिलित होते रहे हैं जिसके कारण संत-महात्माओं के पद नगरवधूओं से लेकर कुलवधूओं तक गाये जाते रहे हैं जिन्होंने यहाँ की संस्कृति को पुष्ट किया है।

(10) बनारस में धनवान के धन और दम्भी के रुआब झेलना बनारस के मिजाज को खपा नहीं। आज जो खांटी बनारसी बचे हैं जो किसी के धन और ऐंठ को रईसी नहीं मानते हैं! दिलदारों को रईस मानते हैं। बनारस के रईस जर और जमीन के प्रति आकर्षित होते हुये भी मानसिक रूप में उसमें आसक्त नहीं है। बनारसी रईस ने कभी अपने सिद्धान्तों और रूढ़िवादिता से समझौता नहीं किया। इनमें अपनी ऐंठ एवं स्वाभिमान नस-नस में भरा है। बनारस में हर पैसे वाला रईस नहीं है। परोपकारी, दिलदारी ही व्यक्ति बनारसी रईस है।

(11) शैव शाक्त और वैष्णव प्रभाव से यहाँ भांग, गांजा और ठंडई को अपनाया गया है परन्तु मद्यपान करने वालों को उपेक्षा और तिरस्कार ही मिलता रहा है। इसी प्रभाव से यहाँ संगीतज्ञ भी इसी रंग में रंगे-रमे रहे।

(12) परनिंदा करने वालों, दूसरे से जलने वालों और दूसरों का अहित चिंतन करने वालों के लिये बनारसियों के मन में सदा से वितृष्णा रही है। ऐसे लोगों को, कंजूसों को, परनिंदा करने वालों, दूसरे का काम बिगाड़ने वालों को बनारसी जीव दो खास विशेषणों से संबोधित करता है—

(1) दोखी (2) कुटिचर।

(13) खानपान में परिष्कृत रुचि, उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाओं में रुचि, स्वच्छ जीवन, स्वच्छ मन और स्पष्ट बोलने वाले बनारसी सुर की चोट से घायल होते रहे हैं और भावप्रधान, कर्णप्रिय संगीत और ललित नृत्य के स्वाभाविक प्रेमी अपने को रससिक्त करते रहे हैं। उक्त पंक्ति इनकी इस प्रवृत्ति को दर्शाती है—

मजेदारी में सैंया मोर मारे गये।

(14) विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति, साहित्य, भाषा और वेशभूषा संगीत आदि ने यहाँ की संस्कृति को सजाया है। इसका प्रमुख उदाहरण बनारस में कभी लावनी गाई जाती थी और हिन्दी के मूर्धन्य तत्कालीन कवियों की लावनी लोकप्रिय भी थी। उल्लेख्य है कि लावनी महाराष्ट्र की अपनी प्रादेशिक विशेषता है दूसरा उदाहरण बंगाल के बाउल की तरह बनारस में भी एक तारा और गोपीचंद के साथ पद गायन की लोक परंपरा रही। साथ ही 'बम लहरी' भी थी जो अब लुप्त प्रायः है।

(15) बनारस के इस मस्ती भरे जीवन की प्रेरणास्रोत रहे हैं आनंदकन भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र और बाबा विश्वनाथ का सच्चिदानन्द स्वरूप। इन्हीं दोनों ने बनारस के संगीतज्ञों को भी प्रभावित किया।

बनारस के संगीत जगत की विशेषतायें

(1) संगीत शास्त्रों में उल्लिखित विवरण के अनुसार बनारस का संगीत मार्गी और देशी दोनों विधाओं को सुरक्षित रखने में समर्थ रहा है।

(2) देश-विदेश से दूरातिदूर केन्द्रों से वाराणसी या बनारस का संबंध ऐतिहासिक प्रमाणों से स्पष्ट है। अतः बनास में वैदिक काल की परम्परा और शास्त्रीय मर्यादा का प्रवाह यहाँ के संगीत को पुष्ट करता ही रहा है। साथ ही साथ दूर-दूर के गाने-बजाने आदि को भी अपने में समाहित करता रहा। बनारस के प्रसिद्ध औघड़पंथी बाबा कीनाराम की एक रचना जो प्रबंध

गायन की एक सुरक्षित निधि है, उदाहरणस्वरूप प्राप्त है।

(3) शताब्दियों से संगीत में होने वाले नये-नये प्रयोगों को भी यहाँ संगीतज्ञों ने अपनाया और उसको बनारसी पहचान में ढाला। संगीत की सभी शैलियाँ बनारस की परम्परा में अपनाई गई और वह यहाँ की विशेषता बनती गई।

(4) बनारस के संगीत विद्वान कर्नाटक शैली पर भी समान अधिकार रखते थे।

(5) ईरान की अति प्राचीन गायकी से लेकर अमीर खुसरो की रचनायें, सिंध की काफिया, पंजाब का टप्पा, ब्रजमण्डल का रसिया, बंगाल के चंडीदास और रामदास के पद, महाराष्ट्र के अभंग और आलवार लोगों की कृतियाँ, जयदेव की अष्टपदी और हिन्दी की सभी आंचलिक रचनायें आदि सभी को बनारस ने अपनाकर अपनी परम्परा में सुरक्षित रक्खा।

(6) समायोचित रागों को उसी समय गाने, बजाने और सिखाने की बनारस की परम्परा रही है। यहाँ संगीत की शिक्षा में भी गुरु-शिष्य परम्परा का ही निर्वाह हुआ है।

(7) बनारसी मिजाज के अनुकूल बनारस के संगीतज्ञ भी स्वतंत्र मनोवृत्ति वाले, मनमौजी व्यक्तित्व के रहे हैं। इनका जब मन मिजाज़ बना तभी इन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया। धन प्राप्ति के लोभ से बन्धनमुक्त रहने वाले यहाँ के संगीतज्ञों में बिना मन-मिजाज बने कार्यक्रम के लिये दौड़ने की प्रवृत्ति नहीं रही। अपनी मौज के लिये, अपने आनन्द के लिये संत-महात्मा और भगवान की सेवा के लिये और जिनको अपना हेलीमेली मानते थे उनके लिए बिना दक्षिणा के भी पूरे मन से गाते-बजाते-नाचते थे अन्यथा जो कुछ घर में है उसी पर सन्तोष करके रियाज करते रहते थे।

(8) बनारस के संगीतज्ञों का एक विशेष स्वभाव था। उनको कोई बहुत बड़ा और श्रेष्ठ कलावन्त या विद्वान माने या न माने और निजी ख्याति बढ़े ऐसी चिन्ता वे कभी नहीं करते थे। उनके अपने माधुर्य और आकर्षण से उन्हें ख्याति, सम्मान धन सभी मिले परन्तु उन गुणीजनों ने संगीत को एक साधना के रूप में स्वीकार किया, धन और यश उपार्जन का माध्यम नहीं माना कुछ उदारमना संगीतज्ञों के उदाहरण—

(1) संगीत नायक पं. छोटे रामदास जी के कण्ठ संगीत के गुरु जो पूरे बनारस के परम गुरु माने जाते थे। संगीत के इन मूर्धन्य विद्वान आदरणीय पंडित रामसेवकजी ने जवानी में ही किसी के यहाँ जाकर गाना, बजाना छोड़ दिया था। अपने पियरी स्थित घर पर जो भी सीखने आता उसे सिखाते, द्रव्य दक्षिणा की कोई बात नहीं। यहाँ तक कि कोठेवालियाँ केवल दो बिड़ा पान लेकर (जब एक पैसे में आठ बीड़ा पान था) उनके पास जाकर, चरण स्पर्श कर निवेदन करें कि एक-दो टप्पा सिखा दीजिये तब वहाँ बैठे हुए दूसरे शिष्यों का अभ्यास रोककर, वह पहले उन कोठेवालियों को टप्पा सिखाकर आशीर्वाद देकर बिदा कर देते थे। उल्लेखनीय है कि उनका रहन-सहन राजसी था। 10-20 शिष्य मुफ्त में गाना-बजाना सीखते थे और भोजन वस्त्र पाते थे और दण्ड बैठक अनिवार्य रूप से करते थे। रामसेवकजी महाराज ने स्वयं किसी से दक्षिणा नहीं माँगी। इन संगीतज्ञों ने विद्या को बेचा नहीं।

(2) बाई साहब हुस्नाबाई को अमीर, गरीब पूरा समाज 'सरकार' कहता था। कोठे पर जाने के लिये सीढ़ी थी, जिसके दरवाजे पर दरबान रहता था। यदि बाई साहेब रियाज पर बैठी हैं या मिजाज़ नहीं बना है तो दरबान इच्छुक श्रोताओं को नीचे से ही वापस कर देता था। विशेष बात यह है कि सन् 1925 ईस्वी के पहले उनके घर पर एक महफिल सुनने की दक्षिण 101 रुपया थी।

(3) अपने एक गोपालक दरबारी के लड़के के विवाह में स्वनामधन्य

अध्याय-1 (ख) बनारस की संस्कृति/23

उद्भट गायक पं. बड़े रामदास जी अपने साथ संगत करने वालों के लेकर, अपने खर्च से 34-40 किलोमीटर दूर देहात में पहुँच गये वहाँ 5 हाँथ से भी ऊँची लाठी लिये शहर से आई बारात के लिये भारी भीड़ इकट्ठा थी। बनारस के गवैया आये हैं उनको सुनने के लिये सभी आतुर हो गये जबकि वहाँ बैठने के लिये और गाने-बजाने के लिये दरी-चाँदनी भी नहीं थी।

जिसके लड़के का विवाह था वह और सभी बराती पं. बड़ेरामदास जी को एवं संगतकारों को देखकर गद्गद् हो गये। वर के पिता ने कहा यहाँ कैसे आपका स्वागत सत्कार होगा? पास के मन्दिर के चबूतरे की ओर इशारा करते हुए पूरे भारत में ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ ने कहा कि उस पर ठीक से बिछावन बिछाओ जिससे हम लोगों के बैठने की जगह ठीक हो जाये।

इतनी देर में भीड़ ने उपद्रव मचाया कि तुरन्त गाना सुनना है। वर का पिता घबड़ाया लेकिन पंडित बड़े रामदास जी ने उनसे कहा कि तुम घबड़ाओं मत। संगतकारों को कहा कि बिछावन पर अपना-अपना सारंगी, तबला, पखावज तंबूरा और बाजा तैयार रखे और एक खाली कटोरा लेकर खड़े होकर स्थानीय बोली में बोले कि किसी ऊँची जगह पर बैठने का प्रबंध करो तो गाना शुरू करें। उस गाँव में कोई ऊँचा स्थान न देखकर बिना बैल की बैलगाड़ी खड़ी थी उसके ऊँचे जोते पर दो आदमी के कंधे पर चढ़कर बैठ गये और उसी कटोरे पर अपने हाँथ की उँगलियों से कहरवा बजाते हुये प्रथा के अनुसार, ढोलक पर एक देवी की स्तुति गाना शुरू किया। भोजपुरी के उस लोकगीत ने जल्दी ही पूरी भीड़ पर असर किया और बस श्रोता मस्त हो गये। थोड़ी ही देर में भीड़ से कहा कि अब वह यथास्थान बैठकर कायदे से गाना, बजाना करेंगे और उसके बाद देहाती भीड़ ने घंटों शास्त्रीय संगीत का आनंद लिया। शुद्ध दूध, दही, घी का देहाती भोजन करके चलने के पहले अपने पास से प्रथा के अनुसार लड़के को तिलक का रुपया दिया और जब उनके दरबारी मित्र ने दक्षिणा के लिये थैली बढ़ाई तो उसको वापस करके बोले कि संगत करने वालों को कुछ दे दें। आने-जाने का भी खर्च

अपने पास से करके प्रसन्नचित होकर अपने शहर बनारस चले आये। ऐसे उदार और निर्लोभी गवैया के पास भी दो-तीन लुटिया भर बेशकीमती नगीनों की अँगूठियाँ इकट्ठी हो गई थी जिससे वह अपने शिष्यों को बाँटते रहते थे। यह प्रत्यक्षदर्शी का बताया विवरण है।

(4) संगीत नायक छोटे रामदास जी के पास एक अति निर्धन कपड़ा धोने वाला नवयुवक बाँसुरी लेकर आया। गर्मी के दिन तीसरे पहर छोटे रामदास जी अपनी बैठक में फर्शी हुक्के से तमाखू पी रहे थे। दरवाजे पर खड़े उस नवयुवक ने जमीन पर सिर टेककर उनसे बाँसुरी सिखाने का निवेदन किया। उसको ध्यान से देखकर कल से रोज साढ़े आठ बजे आने को कहा। खुशी से आँसू बहाता युवक चला गया।

दो-तीन साल अपने पास से उसका खाने, कपड़े का पैसा देकर, सिखाकर उस गरीब युवक को सुरीला शहनाई वादक बना दिया। इस शहनाई वादक ने अच्छा नाम किया। अभी सात-आठ साल पहले उसका निधन हुआ। उसने शहनाई में अच्छा नाम किया, पैसा कमाया। ये शहनाई वादक बिलावल और सारंग के कई प्रकार शहनाई पर साधिकार बजाना था।

(5) बनारस के सुप्रसिद्ध गवैया उस्ताद मौजुद्दीन खाँ ख्याल ध्रुपद, धमार आदि के उस्ताद तो थे। बनारस के संगीत विद्वान जगदीप जी की बन्दिशों का खजाना उस्ताद मौजुद्दीन खाँ के पास ही था। खाँ साहब की तालीम एक ही शिष्या को मिली जिनका नाम श्रीमती बड़ी मोती बाई था।

ईस्वी सन् 1930 के पहले ही श्रीमती बड़ी मोतीबाई पूरे देश में ख्यातिप्राप्त लोकप्रिय गायिका थी। सारंगी के सुरों जैसी मीठे गले के साथ वह परम सुंदरी भी थी। ईस्वी सन् 1945 के पहले की एक घटना कलकत्ता जलसे की है जिसमें बनारस के प्रसिद्ध कलाकारों के व्यक्तित्व का प्रामाणिक उदाहरण है। कलकत्ते के संगीत सम्मेलन में श्रीमती बड़ी मोती बाई के गाने के बाद उनका विशेष रूप से अभिनंदन एवं सम्मान किया गया जिसमें

उनकी प्रशस्ति की गई। इसके बाद श्रीमती बड़ी मोतीबाई ने अपने विनम्र और मधुर स्वभाव के अनुकूल स्वयं कुछ बोलने का अनुरोध किया।

आयोजकों और श्रोताओं का अभिवादन करने के बाद उन्होंने कहा- आप लोगों ने मेरी बहुत प्रशंसा की और मुझे बहुत सम्मान दिया है। परन्तु मैं तो केवल उस्ताद खाँ साहब की तालीम आपको ठीक तरह से सुना सकूँ इतना ही जानती हूँ। हकीकत में यह आपकी मेहरबानी है कि आप सबने मुझे गाने का मौका दिया और सुना। आपने जो मुझे इज्जत दी है मैं उस एहसान को हमेशा याद रखूँगी। विशेष बात ये है कि उस समय उनकी माली हैसियत यह थी कि नाक, कान, गले, हाँथ और अंगुलियों में चमाचम हीरों के गहने पहनकर बड़े-बड़े मोतियों की एक माला गले में डाले वह गाने बैठती थी। उस समय उनके दूध पीने के लिये दैनिक खर्च 50-60 रुपये था। यहाँ दिये सभी उदाहरण प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं। यह सभी बनारस के संगीत साधकों के व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने वाले शब्द चित्र हैं।

16वीं, 17वीं शताब्दी से लेकर आज से 40-50 वर्ष पूर्व तक बनारस के संगीतज्ञों के व्यक्तित्व का जो परिचय प्रस्तुत हुआ है वह बनारस के सभी संगीत विधाओं के गुणीजनों में समान रूप से बना रहा। ऐसे संगीत साधकों का बनारस में 5-6 अलग समूह बने या घराने बने।

(1) कबीरचौरा

(2) पियरी

(3) तेलियाबाग

(4) चाहमहमा

(5) रामापुरा

(6) शिवाला

(7) रामनगर-गंगापार, वाराणसी नगर से अलग बस्ती है। जहाँ पर भूतपूर्व काशी नरेशों का किला और महल है।

26/संगीतमय बनारस

इन सात घरानों में गाने, बजाने और नाचने तीनों विधाओं के साधक रहे हैं। इन्होंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंश परम्परा और गुरु-शिष्य परम्परा से बनारस में संगीत की परम्परा को सद्बद्ध बनाकर रक्खा। यहाँ के कुछ परिवारों की सात से दस पीढ़ी तक की वंशावली का प्रमाण मिलता है जिससे यह अनुमान लगाना उचित है कि इनके पूर्वज भी शताब्दियों से संगीतज्ञ रहे होंगे।

बनारस के भीतर स्थापित इन सात घरानों में सबसे बाद का शिवाला और तेलियाबाग स्थित घराना है। यह घराना मुगल सल्तनत के अवसान काल में शहजादों के साथ बनारस आये दरबारी संगीतज्ञों का है जिसे लगभग 150 वर्ष भी नहीं हुये हैं। इन सभी घरानों में बनारस की अपनी पहचान तो बनी परन्तु क्रियात्मक पक्ष में गाने, बजाने की शैली अलग सी हो गई है। राग विस्तार, राग की सजावट करने का ढंग बदल सा गया है। बोल बनाव, तान, लय का प्रयोग, सम दिखाना ये सभी कुछ अलग सा हो गया है।

बनारस की गायकी में लोकसंगीत और मौसमी धुनों का प्रादेशिक संगीत इन सभी को शास्त्रीय सीमाओं में बाँधकर गाना-बजाना बनारस की अपनी विशेषता है।

बनारस के उस्ताद छः प्रकार की तालीम देते थे—

- (1) घराना चलाने की
- (2) रोजी रोटी चलाने की
- (3) कोठेवालियों की
- (4) भाँडो और लौंडो की
- (5) कव्वालों की
- (6) भजनियों/कीर्तनियों की

कोठेवालियों या तवाइफों में गायकी गानेवाली शिवकुंवर, बड़ी मैना,

तौरवी, चन्द्रावती बड़ी मोती आदि थी। हुस्ना तवायफ अकेली थी जो जोड़ी तंबूरे पर गाती थी अन्य सब सारंगी के साथ गाती थी।

पेशवाज पहनकर गाते खड़े होकर भाव बताना भी यहाँ की तवायफों की विशेषता रही है। विद्याधरी, काशीबाई रसलून, सिद्धेश्वरीजी भी ख्याल गाती थी लेकिन तुमरी दादरा में विशेष प्रवीण थी।

इस प्रकार किसी भी शहर के उत्थान के लिये अनुकूल वातावरण का होना अनिवार्य है वह वातावरण, बनारस की जिन्दादिली और मौज-मस्ती यहाँ के रहने वाले नागरिकों को भोलेबाबा के आशीर्वाद से हमेशा प्राप्त रही। इसी के कारण हास-परिहास, आमोद-प्रमोद, मन की निर्मलता, बनारस का प्राकृतिक सौन्दर्य, मंदिर और पुष्करिणी तालाब से सुशोभित, बाग-बगीचों का शहर, यहाँ के राजा, संत, साहित्यकार, कलाकारों को हमेशा मौज-मस्ती के लिये प्रेरित करता रहा उसी का परिणाम है कि बनारस शहर और उसका संगीत पूरे विश्व में अपनी ख्याति के लिये प्रसिद्ध है।



अध्याय-2

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क. प्राचीन काल से 15वीं शताब्दी तक

वाराणसी, काशी या बनारस का उल्लेख वेद, वेदांग से लेकर कालक्रम में अलग-अलग समय पर लिखे हुए विभिन्न ग्रंथों में मिलता है। काशी या बनारस विद्या के शिक्षण-प्रशिक्षण का एक प्राचीन केन्द्र रहा है। गुरु-शिष्य परम्परा में यहाँ वेद, उपवेद और अन्य सभी विषयों की शैक्षणिक परम्परा रही है। अति प्राचीन काल से धर्म, उद्योग-व्यापार एवं वैशिक परम्परा के प्रमाण इतिहास में प्राप्त हैं। यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा की अपनी विशेषता भी इतिहास में प्रमाणित है। अतएव यही मानना उचित होगा कि पूर्व वैदिक काल से ही यहाँ संगीत का निजी अस्तित्व रहा है।

प्रागैतिहासिक काल के भित्तिचित्र, जो वाराणसी के आस-पास, गुफाओं में मिलते हैं तथा अन्य प्रागैतिहासिक/ऐतिहासिक काल के वाराणसी जनपद के स्थल, जहाँ पुरातात्विक सामग्रियाँ हैं, अभी तक उनकी खोज और खुदाई आदि कार्य करके पुरावशेषों से संगीत संबंधी सामग्रियाँ पूरी तरह खोजी और संकलित नहीं की गई है। बनारस शहर के राजघाट नामक स्थान से प्राप्त



गुप्तकालीन मृणमूर्तियाँ लगभग 7वीं शताब्दी

30/संगीतमय बनारस

मृण्मूर्ति (टेराकोटा) हाथ में अनवद्ध वाद्य ढोलक है, जो स्थानीय संगीत परम्परा का साक्षी है जो 2री से 7वीं शताब्दी के आस-पास का माना जाता है। बनारस में राजघाट और सारनाथ की खुदाई में प्राप्त पुरावशेषों से बनारस के नागरिकों का कला प्रेम, धर्म के प्रति दृढ़ आस्था जो कि व्यापारिक, आर्थिक प्रगति का प्रतीक है इसका भी ज्ञान होता है।

बनारस या काशी के इतिहास संबंधी किसी भी विषय के शोधपूर्ण अध्ययन/अनुसंधान में भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक विस्तार को जानना, समझना अनिवार्य हो जाता है। अतएव एशिया, यूरोप और अफ्रीका के प्राचीन ऐतिहासिक विवरणों में उपलब्ध साक्ष्यों की उपेक्षा संभव नहीं है। प्रागऐतिहासिक साक्ष्य के अनुसार सभ्यताओं के ज्ञात इतिहास में भी भारतीय संस्कृति के विवरण उपलब्ध है।

सुमेरियन और बेबिलोनियन इतिहास में मध्य एशिया से भारत तक स्थल और जलमार्ग से व्यापार के प्रमाण मिलते हैं।¹ सुमेरियन इतिहास में भी वाद्ययंत्रों² तथा वीणा वादन³ (बजाने वाले) का उल्लेख मिलता है। इन दोनों सभ्यताओं में भी देवदासी⁴ की परम्परा भी मिलती है। यह सभी ईसा पूर्व 3200 और उसके परवर्ती काल का विवरण है। इन्डोयूरोपियन जाति का इतिहास भी भारत से स्थल मार्ग और जलमार्ग से संपर्क को प्रमाणित करता है। ईसा पूर्व 13वीं और 12वीं शताब्दी से असीरीयन साम्राज्य का विस्तार हुआ जिसका संपर्क मिस्र और भारत आदि से रहा है।

ईसा पूर्व 12वीं शताब्दी फिनिशियन साम्राज्य के समय जल मार्ग से अफ्रीका के केप ऑफ गुड-होप और भारत आदि समुद्रीतट तक व्यापारिक दृष्टि से यात्रा करने लगे।

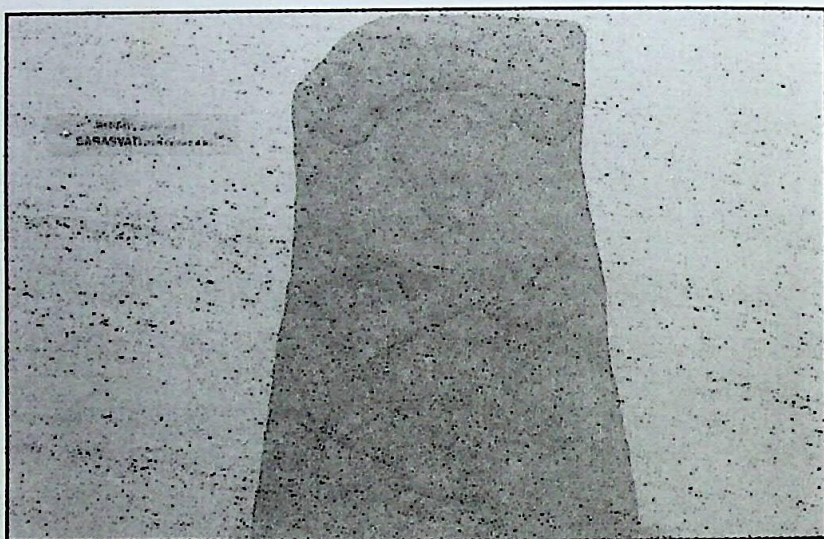
625-604 ईसा पूर्व कॅल्डियन पुनर्जागरण का काल भी मंदिर में देवदासियों की वैशिक परम्परा और दूर-दूर तक व्यापार का काल था। इसी

1. विश्व की प्राचीन सभ्यता- श्री राम गोयल, पृ० 61

2. वही, पृ० 44

3. वही, पृ० 103

4. वही, पृ० 72, पृ० 150



बनारस स्थित सारनाथ में 6ठीं शती का वंशीवादक (पुरातात्विक)



बनारस स्थित सारनाथ में 11वीं शती की सरस्वती (पुरातात्विक)

काल में बेबीलोन नामक नगर का पुनर्निर्माण हुआ।⁵ भारत से तत्कालीन सभ्यता और व्यापार का संबंध बना था। “लालसागर परिभ्रमण” नामक किताब जिससे यह पता चलता है कि भारत से गाने, बजाने, नाचने में कुशल पूरी तरह प्रशिक्षित दास-दासियों को विदेश भेजा जाता था। जो ईसा पूर्व 2री 3री शताब्दी की है।⁶

इस अति प्राचीन नगरी से गंगा के जलमार्ग और स्थल मार्ग से विश्व से व्यापार के प्रमाण उपलब्ध हैं। प्राचीनतम, वैदिक काल से 12वीं शताब्दी तक ऐतिहासिक प्रमाण मिलता है कि बनारस हर तरह से सम्पन्न, समृद्ध धार्मिक तीर्थ, विद्या कौशल और जल एवं स्थल मार्ग का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। फलतः बनारस से चीन तक, पश्चिमी एशिया, मिस्र और रोम तक, कैस्पियन समुद्र के तट पर ज्वालादेवी के मन्दिर तक बनारस के लोग आते जाते थे। सिकंदर के आक्रमण के पहले बनारस से रोम तक व्यापार होने के प्रमाण इतिहास के पन्नों में उल्लिखित हैं। बनारस के उत्खनन में प्राप्त रोम-यूनान की मुद्रा और योरोपीय एवं मध्य एशिया-कैस्पियन क्षेत्र स्थानों में प्राप्त भारतीय मुद्रायें इस आवागमन को प्रमाणित करती हैं। बनारस से सुदूर देशांतर समुद्री यात्रा के स्मृति अवशेष अभी भी कार्तिक महीने में जलने वाले आकाशद्वीप हैं। इस पुरातन काल में बनारस से और गोमती गंगा संगम से दूरस्थ देशों तक जल मार्ग से व्यापार था।

पिछले 2500 वर्षों में बनारस पर विदेशियों के जितने भी आक्रमण हुये, उनके पुरावशेषों और ध्वंसावशेषों की खोज भी पूरी तरह नहीं हुई है। अतः विभिन्न समय की मूर्तियाँ इत्यादि प्रमाण भी दुर्लभ हैं। इस कारण पुस्तकों में उल्लिखित विवरणों से ही यहाँ की संगीत परम्परा का प्रमाण देना होगा।

1. निगमागम काल :

वैदिक संहिता, ब्राह्मण, उपनिषदों में काशी का विवरण मिलता है।

1. विश्व की प्राचीन सभ्यता- श्री राम गोयल, पृ० 300, 305, 306
2. भारत का इतिहास को अ. अंतोनका, ग्रि. म. बोंगर्द- लेनिन ग्रि. ग्रि. कोतोवर की पृ०

काशी धर्म और विद्या का केन्द्र है। ऋग्वेद में उल्लेख है- वशिष्ठ ने कहा, हे इन्द्र मैं सबके साथ पवित्र मन से व्यवहार करता हूँ। फिर भी मुझे झूठा दोष लगता है, वह झूठा दोष लगानेवाला दुष्ट वक्ता उसी तरह संपूर्ण समाप्त हो जाय, जैसे काशी प्राप्त जीवों के पाप कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं।¹ अथर्ववेद संहिता में भी यही उल्लेख मिलता है।²

बृहदारण्यक उपनिषद् में गर्गगोत्रोत्पन्न वलाका पुत्र अविद्या के विषय को ही ब्रह्म समझने वाला शुद्ध ब्रह्म ज्ञान विहीन बहुत घमण्डी विद्वान् दृप्तबालाकि काशीराज अजातशत्रु के पास जाकर उनसे बोला कि हम तुम्हें ब्रह्म का उपदेश देने आये हैं।³ शतपथ ब्राह्मण में सत्राजित के पुत्र शतानिक ने काशी पुत्र काश्य के द्वारा अपने अश्वमेध यज्ञ के लिये कल्पित अश्व को संग्राम में जीता, काशी राज धृतराष्ट्र को हराया। तब से लेकर आज तक काशी नरेश अग्नाधान नहीं करते।⁴ ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में व्यापारी लोग वाराणसी को “जित्वरी” कहते थे, इसका अर्थ है जयनशील अर्थात् वाराणसी स्मरणमात्र से ही सभी प्रकार के मंगलों का निष्पादन करती है। व्यापार में पूरा लाभ अर्थात् पूरी जय मिलती है। इसलिये इसका नाम जित्वरी है।⁵ बृहदारण्यक में गार्गी अजातशत्रु को काशी अथवा विदेह का राजा कहती है।⁶ काशी कोसल का उल्लेख गोपथ ब्राह्मण में सर्वप्रथम मिलता है।⁷ काशी का सर्वप्रथम उल्लेख अथर्ववेद के पैप्पलाद शाखा में मिलता है तकमा (ज्वर) से प्रार्थना है वह उसे छोड़कर गांधार, काशी, मगध में अपना अधिकार फैला दें।⁸ अथर्ववेद में वरणावती नदी के नाम पर

-
1. ऋग्वेद संहिता अध्याय- 7, 5 मंडल, 7 वर्ग, 6 ऋचा, 3
 2. अथर्ववेद संहिता- 8/4/8
 3. बृहदारण्यक उपनिषद्- 2/1/1, श. 14/5/1/1
 4. श. 13/5/4/19, 21
 5. पातंजल महाभाष्य 4/3/84 कीलहार्न 313
 6. बृहदारण्यक, 3/8/2.
 7. गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग 2/9
 8. अथर्ववेद पैप्पलाद शाखा 5/22/14

वाराणसी नामकरण हुआ।¹ अतः वैदिक युग में स्थान वाचक प्रथा के अनुसार “काशी” के राजा को “काश्य” संबोधन मिलता है। शतपथ में काशीराज धृतराष्ट्र का नाम मिलता है। बृहदारण्यक में राजा अजातशत्रु का नाम मिलता है।

वैदिक काल में काशी या वाराणसी के नाम मिलते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद में संगीत की दृष्टि से सामवेद का महत्त्व दृष्टिगोचर होता है। सामवेद के उपवेद का नाम गांधर्ववेद है। भगवान् कृष्ण ने भगवद् गीता में कहा है “वेदानां सामवेदोऽस्मि (भ.गी. 10/22)। ऋग्वेद के मंत्रों का गान ही साम है। प्राचीन काल की निगमागम परम्परा में बहुत सी उपासना विधियाँ पूरी तरह उल्लिखित हैं जिनमें संगीत का भी स्थान था। वेद को अपौरुषेय कहा जाता है। वेद मंत्रों का श्रवण और दर्शन प्राचीन ऋषियों ने किया था और इसीलिये भारतीय परम्परा में विद्या का अवतरण दिव्य लोक से माना गया है अतएवं इन्हें श्रुति भी कहते हैं। वेद में संगीत का उल्लेख श्रौत यज्ञों के अन्तर्गत है जिसे दिव्य या पारलौकिक मानते हैं। साथ ही लौकिक संगीत का भी उल्लेख गाथा के रूप में है। वैदिक काल में संगीत की स्पष्ट दो धारायें प्रचलित थीं प्रथम साम संगीत द्वितीय सामेतर। साम गायन पूर्णतः धार्मिक होता था। उसकी विषय वस्तु देवस्तुति संबंधी ऋचायें थीं, जब कि सामेतर संगीत की विषय वस्तु सामान्यतः प्रशस्तियाँ प्रतीत होती हैं। सामेतर के अंतर्गत गाथा, नाराशंसी इत्यादि को रखा जा सकता है। “नाराशंसी, गाथा” से साधक या उपासक दैवी वरदान स्वरूप संगीत के महत्त्व को जानकर अपनी इष्ट सिद्धियों को प्राप्त कर लेता था। काशी में वेद पुराण इत्यादि के अध्ययनाध्यापन (गुरु शिष्य परम्परा से) का महत्त्व प्राचीन काल से रहा है अतः यज्ञ एवं संगीत भी उसीके अंगभूत परिणाम हैं। गाथा एवं नाराशंसी के उद्धरण अश्वमेध एवं अन्य यज्ञों के साथ भी मिलते हैं। बनारस में गंगा के तट पर नागवंशीय भारशिव राजाओं ने 10 अश्वमेध यज्ञ किये थे उस घाट का नाम आज भी दक्षाश्वमेध है। इसका

समय ईस्वी, सन् के पहले का है।¹ इस घाट की महिमा का वर्णन काशी खण्ड² एवं त्रिस्थली सेतु³ में भी प्राप्त है।

यह यज्ञ जब बनारस में हुये होंगे उस समय यज्ञ विधि विधान के अनुसार वैदिक और लौकिक परम्परा में संगीत अवश्य रहा होगा। साम का गायक उद्गाता कहलाता था। गाथा विशिष्ट परम्परागत गीत प्रकार जिनका गायन धार्मिक तथा लौकिक समारोहों पर होता था इनके गायक “गाथिन” कहलाते थे। ये व्यावसायिक गायक ब्राह्मण या क्षत्रिय होते थे। गाथा गाने की परम्परा आज भी बनारस के ग्रामीण क्षेत्रों में दूर-दूर तक लोकाचार में जीवित है। रास्ते में मिलने वाली दो परिचित स्त्रियाँ गेय स्वरों में ही अपनी-अपनी गाथायें (कथायें) एक दूसरे को सुना देती हैं। इसमें सुख-दुःख दोनों की कथायें होती हैं। वेदों में गीत वाद्य के साथ नृत्यकला का भी अस्तित्व पाया जाता है। सामूहिक नृत्य जिसमें नर-नारी दोनों भाग लेते थे⁴ उल्लेख है। यजुर्वेद में निम्नलिखित सामों के विशिष्ट गान काल तथा स्तोम संख्या बताई गयी है।⁵

(अ) रथन्नरं साम त्रिवृत्स्तोमो वसंतऋतुः।

(आ) बृहत्साम पंचदशस्तोमो ग्रीष्मऋतुः।

(इ) वैरूपं साम सप्तदशस्तोमो वर्षा ऋतुः।

(ई) शाक्वर-रैवते सामनी हेमन्त ऋतुः।

वैदिक काल में बाण, वीणा, कर्करि, काण्डवीणा, अपघाटिला, गोधा वीणा, तंत्री वाद्य तथा आघाटी घन वाद्य दुन्दुभि, भूमिदुन्दुभि अवनद्ध वाद्य, वेणु, नाड़ी सुषीर वाद्यों के नाम मिलते हैं।

इसी वैदिक परम्परा के समान बनारस की गाने, बजाने, नाचने की

1. डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल, भारत का इतिहास (150 ई.स. से 350 ई.स. तक) पृ० 5-6
2. स्कन्दपुराण (काशीखण्ड) 52/83
3. त्रिस्थली सेतु पृ० 159
4. ऋग्वेद- 10/76/6
5. भारतीय संगीत का इतिहास- शरत्चन्द्र परांजयें पृ० 28

लौकिक परम्परा अभी भी चली आ रही है। वर्षा में मल्हार, माघ में होली, चैत्र में चैती। इनका इन विशेष ऋतुओं में ही गायन होगा अन्य समय नहीं।

2. पौराणिक काल :

वैदिक वाङ्मय के बाद पुराणों का स्थान आता है। इन्हें आगम धारा भी कहते हैं। युगधर्म के अनुसार निगमागम में संचित ज्ञान को भगवान वेदव्यास ने सरल, सुबोध शैली में सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित इन पंचलक्षणात्मक अष्टादश पुराण, उपपुराणों की रचना की। वास्तव में पुराण भारतीय ज्ञान के विश्वकोश है।

भगवान वेदव्यास ने पुराणों की रचना की। रोमहर्षण नामक अपने शिष्य को पढ़ाया। आगे चलकर रोमहर्षण के पुत्र लोमहर्षण सूत ने नैमिषारण्य में शौनकादि चौरासी हजार शिष्यों को हजारों वर्षों तक की पुराणों की कथा सुनाई। इसी नैमिषारण्य से पूरे संसार में पुराण वाङ्मय का विस्तार हुआ।

भगवान कृष्णद्वैपायन जिन्हें हम वेदव्यास के नाम से जानते हैं महाभारत और पुराण के रचयिता माने जाते हैं। ऐसी कथा है कि उत्तराखण्ड में सरस्वती नदी के तटवर्ती अपने आश्रम को छोड़कर वेदव्यास अपने सहस्रों शिष्यों के साथ काशी आये। काशी की यह मान्यता है कि यहाँ आने वालों की परीक्षा होती है कि वह काशी में रहने का पात्र है या नहीं। तदनुसार महर्षि वेदव्यास और उनके शिष्यों को माता अन्नपूर्णा की इच्छा के अनुसार तीन दिन-रात भोजन नहीं मिला। इससे क्रुद्ध होकर वेदव्यास ने काशीवासियों को श्राप दिया कि यहाँ के रहने वालों को तीन पीढ़ी से अधिक धन, विद्या और मोक्ष की उपलब्धि नहीं होगी।¹

इस पर काशी के गणों ने वेदव्यास को शिष्यों सहित गंगा के पार वाराणसी से बाहर खदेड़ कर बाहर कर दिया। दैवी प्रकोप से दुःखी वेदव्यास के पश्चाताप और क्षमायाचन के बाद भी उन्हें सोमवार या अन्य विशेष पर्वों पर ही बाबा विश्वनाथ के दर्शन की अनुमति मिली। काशी से

1. मा भूत त्रै पुरुषो विद्या मा भूत त्रै पुरुषं धनम्। मा भूत त्रै पुरुषो मोक्षः इत्येवमश्वत्थुरीम्॥
(काशी खण्ड)

गंगा पार दूसरे तटवर्ती व्यासपुर नामक गाँव में आज भी व्यासेश्वर का शिवलिंग है जिसे व्यास काशी कहते हैं और गंगा पार रामनगर किले में भी वेदव्यास का मंदिर है। परंतु पूरे काशी क्षेत्र में उनका कोई मंदिर नहीं है। लेकिन वेदों को 18 पुराणों में विभाजित करने वाले भगवान वेदव्यास (कृष्ण द्वैपायन) की गुरुपूर्णिमा पर (आषाढ़ शु. 15) पूजा करने की सदियों से चली आ रही परम्परा आज भी वाराणसी में अभी तक जीवित है।

पुराणों में आये रोमहर्षण लोमहर्षण, सूत कथा और इनके रचयिता व्यास आदि शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं। जिस प्रकार व्यास, रोमहर्षण, लोमहर्षण द्वारा गुरु-शिष्य परम्परा के अनुसार पुराणों की कथा का विस्तार हुआ उसी प्रकार गांधर्व वेद या संगीत की भी गुरु-शिष्य परम्परा का विकास बनारस में संगीत के क्षेत्र में हुआ। सूत और कथा शब्द भी वेदों में बीजरूप में पड़े तथ्यों के विस्तार के रूप में एक विशेष जाति के और कथा कथन के अर्थों को बनाते हैं। विविध शब्दकोशों, रामायण, महाभारत, पुराणों के आधार पर पण्डितों ने, भाष्यकारों ने इन शब्दों को संगीत कृति के रूप में या अनेक प्रकार के आख्यानो-उपाख्यानो, ऐतिहासिक कहानियों को विविध स्वरों-लयों के माध्यम से पठन-पाठन श्रवण कराने के अर्थ में स्वीकारा है जो परम्परा आल्हा गाने में और बम लहरी गाने में आज भी चल रही है।

विभिन्न स्थलों पर आया यह शब्द यथा कैपट मत में 'कथक', सिद्धान्त कौमुदी में 'कथिक' पाली में 'कथिको', जैनियों में कहग आदि नामों से सुरक्षित है। कहीं-कहीं नृत्याभिनय शैली में हरिकथाओं के प्रदर्शन के रूप में दिखाई देता है। नारदीय भक्तिसूत्र, शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, गीता आदि ग्रंथों में 'कीर्तन' भक्ति की पर्याप्त चर्चा हुई है। इसी कीर्तन भक्ति के आधार महाराष्ट्र में नारदीय संकीर्तन होता है इसे कथा कहते हैं। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय का कीर्तन भी कीर्तनप्रधान कथा है। अतः सांगीतिक पद्धति के बीज जो वेदों में उपलब्ध हैं वह पुराणों में पल्लवित हुये हैं।

इसी सांगीतिक परम्परा का एक वर्ग विशेष काशी या बनारस में "कथक" नाम से प्रसिद्ध है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सूत जाति को दो भागों में बाँटा है। एक मिश्र

जाति के सूत तथा दूसरे सूत वंशीय लोग। सूतों के संदर्भों में उपर्युक्त वर्णन में दो बातें स्पष्ट हैं कि रोमहर्षण के पहले सूत कथा-गाथा-गान और वंश चरितावली के कथन (देखें मध्यकाल में भार-भट्ट-चारण) और गायन का पेशा करते थे किन्तु वे वर्णसंकर नहीं थे जैसे कि रोमहर्षण था। दूसरे अवश्य ही मिश्र आस्पद धारी हो गये होंगे। महाभारत में भी कथक का संबंध नाटक में गाने, बजाने वाले से ही है।¹ वर्तमान में संगीत से संबंधित कथक वर्ग निश्चयेन उपर्युक्त कथा वाचक सूतों की परम्परा का होना चाहिए।

पुराणों में जातियों के उल्लेख में पाठ मिलता है “कथकाः मोथकाश्चैव”। इसलिये कथक एक अलग जाति, जो लीला, नाटक और कथा कीर्तन, गायन, वादन, नृत्य से संबंधित रही।

मध्यकाल में कथकों के समुदाय की खोजबीन करने में जब गोत्र परम्परा का विचार करते हैं तब यह उचित लगता है कि संगीत से जुड़े हुए ब्राह्मण परिवार किसी समय अपने समाज समुदाय से उपेक्षित और बहिष्कृत होकर कथकों के समुदाय में मिल गये। मध्यकाल में गाना, बजाना, नाचना, नाटक करना इन सबकी यहाँ तक उपेक्षा होने लगी थी कि सम्बन्धित व्यक्तियों के साथ का भोजन, हुक्का पानी भी बंद हो गया था। उपरोक्त समुदाय विशेष के नामों की परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी अति प्राचीन है। बनारस में संगीत में ऊँचा उठाने में इस कथक समुदाय का महान योगदान है।

आयुर्वेद के ग्रंथ बृहत्रयी में चरकसंहिता एवं सुश्रुत संहिता भगवान बुद्ध के पहले के काल के हैं। आयुर्वेद के ग्रंथों में संगीत को रोग के पथ्य के रूप में प्रशस्त लिखा मिलता है। अग्निवेश तंत्र के प्रथम संस्कर्ता भगवान पतंजली का आश्रम काशी में ही था। आयुर्वेद की दूसरी पुस्तक सुश्रुत संहिता के उपदेशक भगवान धन्वन्तरि के अवतार काशीराज दिवोदास इतिहास प्रसिद्ध है। दिवोदास ने इन्द्र की आज्ञा से वाराणसी नगर को बसाया था।² इनके समय भी बनारस में संगीत पूर्ण रूप से विकसित था।

1. महाभारत- 1/215/3

2. दिवोदासस्तु विज्ञाय वीर्य तेषां यतात्मनाम्। वाराणसी महातेजा निर्ममे शम्भुशासनात्॥
(महाभारत, अनु० प० 30/11)

3. श्रीमद्भागवत पुराण :

श्रीमद्भागवत पुराण में भगवान श्रीकृष्ण का काशीराज पर चढ़ाई का उल्लेख और पौंड्रक और काशीराज के उद्धार की कथा।¹ काशी बड़ी विशाल नगरी थी। बड़ी-बड़ी अटारियाँ, सभा-भवन, बाजार, नगर द्वार, द्वारों के शिखर, चहारदिवारियों, खजानों, हाथी, घोड़ों, रथों और अन्न के गोदामों से सुसज्जित थी और श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र चलने से सारी काशी को जलाकर भस्म करने का उल्लेख मिलता है।² गायन, वादन, नर्तन के साथ राग आलापने (अर्जुन द्वारा) का उल्लेख, प्रह्लाद, उद्धव, देवर्षि नारद भक्ति, ज्ञान वैराग्य नर्तन आदि का उल्लेख भगवान की लीलाओं का कीर्तन।³ देवर्षि नारद वीणा पर गाकर जगत को आनंदित करते हैं।⁴ विभिन्न वाद्यों के नाम मृदंग, शंख, भेरी, वीणा, ढोल, नरसिंग, धुंधुरी नगारे, घंटे, दन्तुभि आदि।⁵ श्रीकृष्ण द्वारा पांचजन्य शंख बजाने का उल्लेख।⁶ वारांगनाओं की श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये उत्सुकता बहुत से नटों, नाचनेवालों, गानेवालों, सूतों, मागधों द्वारा श्रीकृष्ण के अद्भुत चरितों के गायन का उल्लेख व्याप्त है।⁷ भगवान श्रीकृष्ण की वंशी के वेणु गीत पर गोपियों की रीझना।⁸ भगवान का रास लीला के लिये संकल्प।⁹ भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान गोपियाँ कर रही थी।¹⁰ महारास, पूरे अध्याय में श्रीकृष्ण के साथ गोपियों के महारास में गाने, बजाने नृत्य का उल्लेख। रसरूप

-
1. श्रीमद्भागवत- अ. 66/10/10
 2. श्रीमद्भागवत- अ. 66/10/41-42
 3. श्रीमद्भागवत- अ. 5/1/21
 4. श्रीमद्भागवत- अ. 6/1/39
 5. श्रीमद्भागवत- अ. 10/1/15
 6. श्रीमद्भागवत- अ. 11/1/1
 7. श्रीमद्भागवत पुराण- अ. 11/1/18-20
 8. श्रीमद्भागवत पुराण- अ. 21/10/2-4
 9. श्रीमद्भागवत पुराण- अ. 29/10/3
 10. श्रीमद्भागवत पुराण- अ. 30/10/44

भगवान की रसमयी लीला का वर्णन जिससे “रसो वै सः” की अनुभूति होती है। रस पंचाध्यायी, शरदपूर्णिमा में रस का वर्णन उपर्युक्त तथ्य को स्पष्ट करता है।

श्रीमद्भागवत में काशी के विवरण को देखकर ज्ञात होता है कि उस समय सभी वैभवों से सुशोभित यह नगरी विद्या और उपासना या केन्द्र रही। काशी शैव उपासना का केन्द्र होने से शैव उपासना में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है तदनुसार उस काल में भी यहाँ के संगीतज्ञ अपनी कला में अवश्य ही निष्णात रहे होंगे। उक्त संदर्भ में यह भी नहीं भूलना चाहिए कि यहाँ वैष्णव सम्प्रदाय का महत्व भी बराबर रहा है। वाराणसेय शैव सम्प्रदाय निर्विरोध रूप से समन्वयवादी रहा है। काशी में समस्त देवताओं का समान रूप से निवास है। पुरियों में विष्णुपुरी का विशेष स्थान है जिसकी चतुर्दिक सीमा जतनबर से बिन्दु माघव घाट तक है। जिस के बीच चौखम्बा यहाँ का चौड़ा क्षेत्र है। वेदोक्त शिव-विष्णु-शक्ति परक सूत्रों से आदि काल से आज तक यजन-याजन होता आ रहा है। कार्तिक मास मुख्यत वैष्णवसम्बद्ध है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव आज भी पूरे महीने पंचगंगा के क्षेत्र में सुस्पष्ट है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए एक कहावत प्रसिद्ध हुई- “आधी काशी शिव की, आधी गोपाल लाल की।”

नारद पांचरात्र में भी अनेक जगहों पर संगीत संबंधी विवरण है। विद्याघर, किन्नर, गंधर्व, अप्सरा, वेदमूर्ति सिद्ध ब्राह्मण, ब्रह्मचारी ज्योतिषि, स्तुतिपाठक और सभी देवता, देवपत्नी गंधर्व उस सभा में एक साथ उपस्थित थे।² इसके साथ ही शिल्प³, गायत्रु⁴ आदि अनेक संगीत के शब्द मिलते हैं। इसी प्रकार तालभंग के पाप को दूर करने के लिए इष्टदेव श्रीकृष्ण का ध्यान किया। उनकी कृपा से वंशीधारी प्रकट हुये। सबने उनकी स्तुति की।⁵

1. श्रीमद्भागवत पुराण- अ. 33/10/1-4

2. नारद पांचरात्र- 1/10/87-88

3. नारद पांचरात्र- 1/11/29

4. नारद पांचरात्र- 1/12/5

5. नारद पांचरात्र- 1/12/9

रासमहोत्सव का वर्णन। ये सब वर्णन संगीतिक हैं।

इस ग्रंथ के रचना काल में संगीत विद्या सभी प्रकार से पुष्ट रही। काशी वैष्णव उपासना का भी केन्द्र रहा है। इसलिये यहाँ उस काल में संगीत प्रवीण गुणीजन अवश्य रहे होंगे। श्रीमद्भागवत पुराण, नारदपांचरात्र, हरिवंश पुराण, स्कंदपुराण, विशेषकर काशी खण्ड, वायुपुराण, मार्कण्डेय पुराण, औमापतम् आदि में संगीत के व्यावहारिक पक्ष और प्रस्तुतिकरण के भरपूर विवरण उपलब्ध हैं। पुराणों में गांधर्व के ज्ञाता वेदानुयायी भरत, संगीत के प्रतिष्ठाता आगमानुयायी मतंग तथा अन्य गायक, वादक, नर्तक, गांधर्व, किन्नर और अप्सराओं तथा भक्तजनों का व्यवस्थित परिचय प्राप्त होता है। यत्र-तत्र प्रसंगवश संगीत शास्त्र की भी पर्याप्त चर्चा मिलती है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संगीत शास्त्र का प्रारंभ ईसा के बहुत पहले से होकर आज तक चला आ रहा है। जिसका प्रधान प्रवर्तक महान तांत्रिक मतंग 2000 वर्षों पहले का है। यस्य मतं अग्रे गच्छतीति स मतंगः।” इस निर्वचन से यह बात स्पष्ट है।

इस (गीत वाद्य-नृत्यात्मक) संगीत त्रयी के प्रत्येक अंग गीत, गाथा-गान उसमें गेय बन्दिश, आलाप, तान, मूर्च्छनाओं आदि की स्पष्ट जानकारी पुराणों तथा स्वतंत्र रूप से कुछेक तांत्रिक ग्रंथों में उपलब्ध है। गीत के समान विविध वाद्यों के उल्लेख हैं यथा तत, वितत, घन, सुषीर, अवनद्धसे सम्बद्ध अनेक वाद्य पुराणों में उल्लिखित हैं। साथ ही विभिन्न वाद्यों के निर्माण विधि का भी पूरा उल्लेख है। इसी प्रकार नृत्त तथा नृत्य के भी शास्त्रीय प्रमाण उल्लिखित हैं। हरिवंश पुराण में छालिका और हल्लीसक का प्रयोग मिलता है। हल्लीसक मंडलाकर नृत्य (स्त्रियों का) जिसमें बीच में एक गायक (पुरुष) रहता है। छालिक्य को गांधर्व कहा जाता है, जिसमें नाना प्रकार के वाद्य बजते थे, आसारित नृत्य के साथ गीत का भाव अभिनय द्वारा दिखाते थे। छालिक्य का उल्लेख केवल कालिदास के “मालविकाग्निमित्रम्” में ही आया है अन्यत्र कहीं नहीं। बनारसी नाच के उल्लेख में हरिवंशोक्त

1. नारद पांचरात्र- 1/11/1-5

हल्लीसक और छालिक्य के समान काशी जनपद या बनारस शहर में समवयस्क लड़के-लड़कियाँ बीच में कृष्ण के प्रतीक रूप में एक लड़के या लड़की को खड़ा कर चारों तरफ घेरा बनाकर हाथ पकड़कर घूमने या नाचनें, पैर और हाथ से ताल देते गीतों हुए नाचते हैं जिसका एक गीत-‘रासमंडल गोपिक चन्दन तुलसी माला झप।’

वायुपुराण 86-87 में स्वरमंडल का उल्लेख मिलता है :-

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छना चैकविंशतिः।

तानाश्चैकोनपंचाशत इत्येतत् स्वरमण्डलम्॥

सात स्वरों, तीन ग्रामों, इक्कीस मूर्च्छनाओं और उन्चास तानों की सामुदायिक संज्ञा मण्डल है।

पुराण में लय ताल के उल्लेख भी न्यून नहीं है। ईश्वर के सान्निध्य में या राजा रईसों की महफिल में स्वर, लय, ताल के साथ गाने बजाने को सुयोग्य माना जाता था जिसका नारदीय पांचरात्र में भी उल्लेख है। मन्दिरों, पारिवारिक उत्सवों और राजसभाओं आदि में देशकालोचित गाये जाने वाले अलग-अलग रागों के वर्णन भी मिलते हैं जैसे “पुष्पसार गीत”, ‘मांगल्यगीत’ ये विशिष्ट रागों की बन्दिशें लोकव्यवहार के पदों में बंधी होती थी। वहाँ स्वर, लय, ताल, छन्द और शब्दों में एक विशेष संगति होती थी। स्थान-स्थान पर स्वरों, ताल का देशकालानुसार अनुशासित शास्त्रीय विचार भी पुराणों ने किया है। रागों के नाम श्री, गौरी, शंकरा, भैरव ये आगम परम्परा के द्योतक हैं। वैदिक साम से बृहद् रथंतर नाम मिलते हैं। वेद में उल्लिखित एक मूर्च्छना उत्तरमंद्रा से राग के बीज रूप प्राप्त होते हैं।

काशी खण्ड में एक स्थान पर स्वरों के छोटे-छोटे आलाप करते हुए विस्तार का उदाहरण कोकिला आदि पक्षियों के माध्यम से इस प्रकार कहा जा रहा है कि ये पक्षी मधुर कण्ठ से परस्पर इस प्रकार बातें कर रहे हैं-

कोकिला कोमलालापै कलयन् किल् काकलीम्।

कलिकालौ कलयतः काशीस्थान्नेनि भासते॥

अर्थात् कोकिला काकली निषाद स्वर में कोमल आलाप लेते हुये कह

रही हैं- काशीवासियों को काशि और काल भासित नहीं होते। इसी प्रकार भद्रेश्वर, विरेश्वर आदि में गान सेवा करते हुए मोक्ष प्राप्ति के उदाहरण भी मिलते हैं। एक स्थान पर कोकिला आलापते हुए सदेह मुक्त हो गई-

सदेहं कोकिलालापा लिंगमध्ये तथं गता।

विशेषकर काशी में संगीत एवं संगीतज्ञ का महत्त्व प्रकाशित करने वाले ऐसे अनेकानेक सप्रसंग सफल उदाहरण यथा स्थान उपलब्ध हैं। जिसका प्राचीन काल से आज तक प्रयोग होता आ रहा है जो वैदिक एवं पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त है।

पाणिनी की अष्टाध्यायी व्याकरण का सबसे विख्यात ग्रंथ है संगीत विषयक सामग्री डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल की "पाणिनीकालीन भारत नामक ग्रन्थ में सांगीतिक सामग्री के पर्याप्त शब्द उपलब्ध हैं तदनुसार अष्टाध्यायी में गीती (3/3/95) गेय (3/4/68) गायक (3/1/146) गायन गाने वाला (3/1/147) नर्तक (3/1/145) पारिवादक (3/2/146) का उल्लेख आया है। अवनद्धवाद्य मड्डुक (4/4/56) झंझर (4/4/56) दुर्दर (4/4/34) तथा हाथ से ताली देने वाले पाणिघ (3/2/55) कहलाते थे। प्रमदसम्मदौ हर्षे (3/3/68) अर्थात् हर्ष उत्सव के लिए प्रमद सम्मद शिल्प प्रयुक्त है। तदनुसार डॉ० अग्रवाल ने भरहुत शिला पर अंकित दृश्य को सम्मद कहा है जिससे चार स्त्रियाँ नृत्य कर रही हैं। वृन्दवादन की एक शिला पर वीणावादिनी स्त्री, पाणिवादक, माड्डुकिक एवं झार्झरिक अंकित है जो उस काल के वृन्दवादन का दृश्य प्रतीत होता है।

4. वाल्मीकि रामायण :

ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में मनुस्मृति से पूर्व ही वाल्मीकि रामायण (700 ई.पू.) लिखी जा चुकी थी जिसमें वाराणसी की प्रशंसा है- उक्षापक्षी तुरग उरगः कोऽपि वारणा वा वाराणस्यां जनन-मरण-कलेश-दुःखासहिष्णुः।" वाल्मीकी रामायण में भी काशी का उल्लेख मिलता है। राजा दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर काशीराज को आमंत्रित किया था।¹ अयोध्या

1. वा.रा.- 1/13/23

काण्ड में कैकेयी के क्रोध के शमन के लिये काशी में उत्पन्न वस्तुओं को प्राप्त करने का आदेश राजा दशरथ ने दिया था।¹ किष्किन्धा काण्ड के वर्णन में सुग्रीव ने अपने दूत को सीता की खोज के लिये काशी राज्य में भेजा था।²

महाराजा दशरथ का रामायण काल में काशी से संपर्क बना रहा तो उस समय काशी की संगीत परम्परा भी उस काल के समान समृद्ध अवश्य रही होगी। वाल्मिकी रामायण काल के संगीत संदर्भों को देखते हुए स्पष्ट होता है कि गांधर्व-शास्त्र पर्याप्त रूप से व्यवस्थित हो चुका था। यज्ञों के समारोहों पर अन्य देवताओं के साथ गंधर्वों का भाग भी निश्चित था।³ श्री राम की आज्ञा से दोनों भाई लवकुश ने मार्ग विधान से रामायण का गान किया।⁴ दुन्दुभि, मृदंग, पणव आदि वाद्यों का उल्लेख मिलता है।⁵ वाल्मिकी के गुरु के रूप में देवर्षि नारद का उल्लेख।⁶ सूत, मागधों द्वारा मंगलमयी स्तुति का उल्लेख।⁷ अनेक जगहों पर “कुशीलवौ” शब्द प्राप्त होता है। ये संभवतः स्तुति करने वाले चारणों को कहते थे।⁸ उत्सवों में नट नर्तक अपनी कला दिखाते थे।⁹ वीणा का भी उल्लेख मिलता है।¹⁰ युद्धकाण्ड में गणिका का भी उल्लेख मिलता है।¹¹

इन सब उल्लेखों से पता लगता है कि राज्य में राजा संगीत का पोषक था। उत्सवों में संगीत का बहुत महत्व था। वैदिक गायन के साथ गांधर्व की

-
1. वा.रा.- 2/10/37-38
 2. वा.रा.- 7/38/16-20
 3. वा.रा.- बालकाण्ड- 15/4
 4. वा.रा.- बालकाण्ड- 4/33-36
 5. वा.रा.- बालकाण्ड- 5/10-11, 12, 18
 6. वा.रा.- बालकाण्ड- 2/2
 7. वा.रा.- बालकाण्ड- 81/1-2-3
 8. वा.रा.- बालकाण्ड- 94/192
 9. वा.रा.- बालकाण्ड-17-19
 10. वा.रा.- बालकाण्ड- 10/40-41.
 11. वा.रा.- बालकाण्ड- 127/3

भी पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। उस काल में जीवन में संगीत का उपयोग राजा को जगाने, आराधना में, उत्सवों में, युद्ध में वीरों को उत्साहित करने के लिए होता था। कलाकारों को प्रचुर धन देने का भी उल्लेख मिलता है। राजा प्रजा के मनोरंजनार्थ नृत्यशालायें और संगीत शालायें भी थीं। अनेक वाद्यों के नाम पटह, डिण्डिम, आडंबर, मड्डुक, मुरज, मृदंग, चेलिका कोण आदि अवनद्ध वाद्यों के नाम मिलते हैं।¹

इस प्रकार का संगीतमय जीवन राजाओं के आपसी संबंध के कारण बनारस में भी उन्नत रहा। “कुशीलव” जैसा व्यावसायिक संगीतज्ञों का समूह नट, नर्तक, गायक इन सबका समाज में आदर काशी में उस समय निश्चित रहा।

5. महाभारत काल :

महाभारत में व्यास की “शतसाहस्री संहिता” में काशी का प्रसंग दो बार (1) तीर्थ रूप में अविमुक्त समासाद्य, तीर्थसेवी कुरुद्वह। दर्शनाद् देवदेवस्य, मुच्यते ब्रह्महत्याया।² (2) पाण्डवपक्ष से काशी राज का महाभारत युद्ध में सम्मिलित होना :

ततो वाराणसीं गत्वा देवमर्च्य वृषभध्वजम्।

कपिला हृदमुपस्पृश्य, राजसूय फलं लभेत्॥³

अज्ञात नाम काशिराज का उल्लेख, जिसमें काशीराज की कन्यायें अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका का भीष्म ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अपहरण किया था, प्राप्त होता है।⁴

पांडवों के पूर्वजों के समय काशी अलग राज्य था। पांडवों के समय का संकटाजी का मंदिर व मूर्ति यथा स्थान अभी भी है। पुराणों में स्कन्दपुराण (काशीखण्ड) में उनका उल्लेख है।

1. वा.रा. सुन्दरकाण्ड- 10-10/38, 39, 44, 45 आदि

2. म.भा. वनपर्व- 84/78

3. म.भा. वनपर्व- 84/79

4. म.भा. आदिपर्व- 102/56, 64, 65

रामायण की भाँति महाभारत काल में भी काशी से सबका संबंध था अतः अन्य लोकपरंपराओं के साथ संगीत में मागध, सूत, चारण आदि का उल्लेख, वैदिक काल का गाथा गायन यज्ञ तथा लोकोत्सवों में होता था। अनेक जगहों पर गांधर्व गीत के साथ वाद्य और नृत्य में भी कुशल थे “नृत्तेवादिश्च गांधर्वे”।¹ अप्सरा गंधर्वों का उल्लेख² अर्जुन गायन वादन, नर्तन तीनों जानते थे। विराट राजा की कन्या उत्तरा को बृहन्नला के रूप में गायन, वादन नर्तन सिखाया।³ राजाओं ने नर्तनागार और संगीत शालायें बनवाई।⁴ सात स्वरों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।⁵

अनेक जगहों पर संगीत का उल्लेख संगीत के महत्व को स्पष्ट करता है। साधारण व्यक्ति से लेकर उच्चश्रेणी के व्यक्ति भी संगीत की शिक्षा प्राप्त करते थे। जैसे अर्जुन, उत्तरा, कच देवयानी आदि। उस समय अनेक वाद्यों का प्रयोग था। संगीत सामाजिक जीवन का अंग था। बनारस के सामाजिक जीवन की भी उस समय यही स्थिति थी।

6. षोडश महाजनपद :

ईसापूर्व 5वीं 6वीं शताब्दी के 16 जनपदों में काशी भी एक प्रमुख जनपद था जिसका विवरण बौद्ध और जैन ग्रंथों में मिलता है। मगध के राजवंशीय इतिहास को जाने बिना उस समय के काशी का विवरण देना संभव नहीं है। हर्यक वंश 545, 544 से 493 ई.पू. के संस्थापक राजा बिंबिसार का बौद्ध ग्रंथों में जो उल्लेख है उसके अनुसार काशी और अन्य उत्तर पश्चिमी राज्यों से उसका संबंध था। बिंबिसार के पुत्र ने 493 से 461 ई.पू. अपने राज्य का विस्तार किया और अंगलिच्छवियों से लेकर अंबती (उज्जैन) तक अपने प्रभाव का विस्तार किया उस समय भी गंगा का जल मार्ग नियंत्रण बनाकर रखने में बहुत महत्वपूर्ण था और व्यापारिक और

-
1. म.भा. अनुशासन पर्व- 122/324, आदिपर्व 207, 114, सभापर्व 5/24
 2. म.भा. सभापर्व- 7/24
 3. विराटपर्व- 11/8/12, 13
 4. विराटपर्व- 22/3, 16
 5. शांतिपर्व- 184/39

अध्याय-2 (क) प्राचीन काल से 15वीं शताब्दी तक/47

सांस्कृतिक दृष्टि से उस काल में भी महत्व था। 461 से 445 ई.पू. अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उदय या उदाई ने राजधानी पाटलीपुत्र को बना लिया। उस काल की ऐतिहासिक जानकारी पुराणों में प्राप्त सामग्री और श्रीलंका के सिंहली भाषा के विवरणों से ही मिलती है और हर्यक वंश, शैशुनाग और नंदवंश 545 से 317 ई.पू. तक के समय में काशी, वाराणसी भारत का प्रमुख धार्मिक तीर्थ, शिक्षा केन्द्र था। साथ ही उद्योग, व्यापार तथा सांस्कृतिक प्रमुख केन्द्र बना रहा। यह कालक्रम बौद्ध कालक्रम के समानांतर है। इस समय की काशी का विस्तार गंगा गोमती के संगम से लेकर दक्षिण में चकिया, चंदौली, चुनार, मिर्जापुर, पश्चिम में गोपीगंज, भदोही और जौनपुर तक रहा है। सांस्कृतिक प्रभाव तो बलिया, बक्सर, पटना, गया तक बना था। इसी काल में सिकंदर का आक्रमण हुआ था। जिसका विशेष विवरण प्राचीन यूनानी अभिलेखों और बौद्ध रचनाओं से मिलता है।

प्राचीन भारत के उत्सवों की परम्परा, वेदोक्त ऋतुपरक नियमों का निर्वाह करते हुए काशी, उज्जैनी और पाटलीपुत्र में आयोजित होती थी। इन उत्सवों में गायन, वादन, नृत्य सभी का उल्लेख मिलता है।

7. जैनकाल में संगीत :

महाजनपद युग में बनारस में महावीर से करीब 250 वर्ष पहले जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म हुआ था। जैन के अनुसार इनके पिता अश्वसेन बनारस के राजा थे।

जैनियों के ठाणांग सुत्त, रायाणसेणीय तथा कल्पसूत्रों में संगीत संबंधी प्रचुर सामग्री मिलती है। इस समय भी संगीत कला को राज्याश्रय प्राप्त था। राजा अच्छे संगीतकार थे। वत्सराज उदयन महान वीणा वादन में कुशल था।¹ पत्नी वासवदत्ता के नृत्य के साथ वीणावादन की संगति करते थे।² उज्जैन के राजा प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता और वत्सराज उदयन में प्रेम होने

1. चूर्णिका 2, पृ० 161

2. उत्तराध्ययन टीका 18 पृ० 253

पर भास द्वारा संगीत प्रधान नाटक 'स्वप्नवासवदत्ता' की रचना प्राप्त होती है। राजकुशल गणिकाओं का राजसभा में सम्मान किया जाता था। चम्पा नगरी की गणिका संगीत तथा वैशिकी कलाओं में पारंगत बताई जाती है। उसे राजकोष से पर्याप्त वेतन मिलता था।¹ गणिकाओं के अतिरिक्त नृत्य करने वालों का व्यवसाय निट्टया अर्थात् नर्तकियों का विशिष्ट वर्ग था।²

विभिन्न उत्सवों पर गीतादिनृत्य का आयोजन होता था। उत्तराध्यायन टीका में वाराणसी के दो मातंगपुत्रों, (उक्त 'मातंग' संज्ञा बृहद्धेशीकार 'मतंग' ये मेल खाती है, जो मतंग के काल निर्धारण में परमोपयोगी है) की कथा आई है जो गायक तथा नर्तकों की टोलियाँ बनाकर सारे नगर में घूमते फिरते थे। निकृष्ट वर्ग का यह व्यवसाय सहन न कर उच्चवर्गीय लोगों ने उन्हें मारकर नगर से निष्कासित करने का उल्लेख मिलता है।³ कलाओं के अंतर्गत 72 या 64 कलाओं की गणना पाई जाती है।⁴

संगीत शास्त्र पर लिखे परवर्ती ग्रंथ संगीत समयसार 'संगीतोपनिषद सारोद्धार' आचार्य राजशेखर सूर के शिष्य सुधाकलश की रचना (गायकवाड़ ओरियण्टल लायब्रेरी बड़ोदरा से प्रकाशित) जिनमें संगीत शास्त्र संबंधी विस्तार से सामग्री मिलती है। अर्धमागधी (प्राकृत) में रचित 'अनुयोगद्वार' सूत्र में संगीत विषयक सामग्री पद्य में मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि प्राकृत में संगीत का कोई ग्रंथ रहा होगा।⁵

बौद्ध जातकों और जैन ग्रंथों को देखने से प्रतीत होता है कि महाजनपद काल तक बनारस तीर्थ क्षेत्र और विद्या का केन्द्र बन गया था। महाजनपद युग में तक्षशिला सबसे बड़ा विद्या का केन्द्र था। तक्षशिला के बाद बनारस का ही नाम आता है। बनारसवासियों में शिक्षा के प्रति इतना अनुराग था कि गरीब बालकों को भोजन वस्त्र देकर उनकी शिक्षा की

1. नायाधम्म 3 पृ० 59

2. उत्तरा० टीका पृ० 136

3. उत्तरा० टीका 13, पृ० 185

4. ठाणांग 9, 678, नायाधम्म 1, पृ० ओवाइया पृ० 40 रायाणसेणीय 211

5. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास भाग 5, छठा प्रकरण संगीत पृ० 156 से 158

व्यवस्था करते थे।¹ आज भी बनारस में ऐसी स्थिति है।

बनारस की उत्सवप्रियता आज भी दृष्टिगोचर होती है “आठ वार नौ त्योहार” काशी की प्रसिद्ध कहावत है। महाजनपद युग में बनारस में बहुत उत्सव मनाये जाते थे। कार्तिक में, उस समय नगर इन्द्रपुरी की तरह सजाया जाता था। विशेषकर स्त्रियाँ केसरिया रंग के वस्त्र पहनकर बाहर निकलती थी।² जैन सूत्रों से भी पता लगता है बनारस में दीवाली धूम-धाम से मनाई जाती थी।³ “छत्रमंगल” दिवस बनारस का दूसरा त्योहार जिसमें नगर बहुत सजाया जाता था। राजा एक सजे-सजाये महल में आकर श्वेत छत्र से सुशोभित सिंहासन पर बैठता था एक तरफ अमात्य, दूसरी तरफ ब्राह्मण और गृहपति आकर्षक वस्त्र पहनकर, तीसरी ओर नागरिक उपयान (नजराने) लिये खड़े रहते थे चौथी ओर हजारों की संख्या में नर्तकियाँ होती थी।⁴ यह दिवस संभवतः राजा के राज्यारोहण या विजयादशमी का भी हो सकता है। ‘हस्तिमंगल’ मदिरोत्सव⁵ में जातक में बताया है काशीराज ने इस उत्सव में तपस्वियों को खूब शराब पिलाई थी। इसी का अवशेष बनारस में पियाले के मेले में बच गया है।⁶ काशी में “जलोत्सव” भी होता था।⁷

काशी अपनी मौजमस्ती के लिए पूरे भारत में विख्यात है यहाँ की गणिकाएँ भी प्रसिद्ध हैं। जातकों में एक जगह (जातक 3/40-41) श्यामा नाम की काशी की गणिका का उल्लेख आता है जिसकी एक रात की फीस एक हजार कार्षापण होती थी और इसकी सेवा में पांच सौ दासियाँ रहती थी।⁸ बुद्ध के सैकड़ों वर्ष पहले काशी प्राचीन नगरी थी।

1. जा0 1/109

2. जा0 1/312-13

3. जैनसूत्र-1 पृ0 266

4. जातक कथा संग्रह

5. जातक 1/208

6. जातक कथा संग्रह

7. वही

8. वही

जातकों और बौद्ध साहित्य में व्यापार में कौशिक वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। काशी में बने वस्त्रों को काशीकुत्तम¹ को कहीं काशीय भी कहते थे।² इनके अत्यन्त महीन और मुलायम होने के उल्लेख मिलते हैं। सुगंधित द्रव्य का भी व्यापार जिसमें काशिक चंदन³, काशी विलेपन⁴ जो इत्र जैसे द्रव्य का बोध कराता है। इसी प्रकार हाथी दांत के गहने आदि का भी व्यापार था। काशी के व्यापारियों द्वारा प्रायः समुद्री व्यापार करने के भी उदाहरण मिलते हैं। अतः यहाँ के लोग देश देशांतर में जाते थे और वहाँ के यहाँ आते थे तो कला और कलाकार का आवागमन स्वाभाविक था।

पौराणिक युग में काशी एक स्वतंत्र राज्य था। बुद्ध काल के पूर्व ही काशी जनपद की राजधानी बनी रही। महाजनपद काल में भी काशी जनपद की राजधानी रही। इस काल तक काशी संगीत, साहित्य, कला कौशल, वस्त्र निर्माण, स्वर्णाभूषण और गरम मसालों का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र और निर्यातक हो चुका था। इसी काल में काशी भारतीय संस्कृति, ज्ञान और शिक्षा का केन्द्रस्थ तीर्थ भी बन चुका था। गुरुशिष्य परम्परानुसार सभी विषयों के साथ संगीत की भी परंपरा चल रही थी। इसे विश्व की प्राचीनतम परम्परा मानना उचित होगा।

वैदिक काल सूर्य तथा चन्द्रवंशीयों के विवरण के साथ भारत वंश का भी उल्लेख है। कौरव और पांडवों की परम्परा में कालांतर में पुरूगण कौरव गण में शामिल हो गये। चेदि, गांधार, कीकट (मागध) आदि गणों का उल्लेख भी वैदिक साहित्य में है। भारतीय पुरातत्त्व वेत्ता बी.बी. लाल के निर्देशन में हस्तिनापुर से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री प्रमाणित करती है कि यहाँ के निवासियों ने 11वीं और 9शताब्दी ई.पू. के बीच हस्तिनापुर को छोड़ दिया था- कारण बाढ़ के जल में डूबना। फलतः कुरुक्षेत्र में कौरव और पांडवों का युद्ध जिसे महाभारत के नाम से जाना जाता है इसके पहले ही

1. जातक 6/47, 6/151, 1/335

2. जातक 6/500

3. जातक 1/331, 5/302

4. जातक 1/355

कभी हुआ होगा जिसमें काशी राज का उल्लेख हम कर चुके हैं।

इस काल के बाद जो छोटे-छोटे राज्यों का ऐतिहासिक विवरण मिलता है उनके नाम हैं (1) कोसल जिसकी राजधानी अयोध्या थी (2) काशी की राजधानी काशी या वाराणसी, (3) विदेह की राजधानी मिथिला थी, (4) बिहार में मगध की राजधानी गिरित्रज, राजगिरी (वर्तमान राजगिरी), (5) अवन्ती की राजधानी उज्जैन थी।

इस काल में वरूण, रुद्र या शिव, विष्णु अग्नि, सूर्य आदि के पूजन का महत्व और वैदिक संस्कारों का पूरी तरह प्रभाव भारतीय समाज में व्याप्त था। जिसका प्रमाण है कि चारण छन्द शास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए गाना गाते थे। इसी प्रकार वैदिक साहित्य में प्राप्त नाट्य तत्त्व परवर्ती काल में महापुराण और काव्ययुगीन परम्परा में विकसित होकर समाज में प्रचलित थे। नाट्य शास्त्र की स्थापना होना यह प्रमाणित करता है कि उस काल में संगीत भी पूरी तरह विकसित रहा होगा।

8. बौद्ध काल :

इस काल के पाली के लिखे जातक, त्रिपिटक तथा संस्कृत में लिखे ललिताविस्तर और महायान संप्रदाय का लंकावतार सूत्र आदि ग्रन्थों के द्वारा विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। जातकों में विशेषकर बोधिसत्त्व के जीवन संबंधी घटनाओं का वर्णन मिलता है। पाली वाङ्मय के अनुसार बुद्ध के जन्म के कुछ शताब्दियों पहले काशी में ब्रह्मदत्त वंश का राज्य था। उस समय काशी 16 जनपदों में से एक थी। मत्स्य पुराण के अनुसार (पृ. 556, 672, आनंदाश्रम सीरीज) ब्रह्मदत्त उपाधिधारी सौ राजाओं ने काशी पर राज्य किया।¹ पाली साहित्य में जातकों का आरंभ “अतीते वाराणसियं ब्रह्मदत्ते रज्जं कारन्ते” से होता है इससे ब्रह्मदत्त काशी के राजा की उपाधि थी सिद्ध होता है। काशी वंश के राजाओं तथा सामाजिक जीवन का बौद्ध साहित्य में सुन्दर वर्णन मिलता है। इस काल की संगीत संबंधी सामग्री भारत की प्राचीन शिल्प एवं चित्रकला में उपलब्ध है।

संगीत के लिए “गन्धर्ववेद” संज्ञा थी जिसके अन्तर्गत गीत, वादित,

1. मत्स्यपुराण (पृ० 556, 672 आनंदाश्रम सीरीज)

नच्च, अख्यानन आदि का समावेश था। अख्यानम् के अंतर्गत प्राचीन आख्यान, वीरगाथाओं का गायन सम्मिलित था।¹ इनकी गणना सिप्प या शिल्प से की जाती थी। तत्कालीन सम्पन्न परिवारों में संगीत का अध्ययन जीवन का एक आवश्यक अंग था। बोधिसत्त्व संगीत एवं नाट्य के अच्छे ज्ञाता थे। ललितविस्तार में बुद्ध की माता को कला निपुण बताया है। सिद्धार्थ के लिए ऐसी वधु अपेक्षित थी जो गणिका के समान कलाकुशल हो।² इस काल अनेक वाद्य-वीणा, वेणु, मृदंग, पणव आदि का उल्लेख मिलता है।

दीघनिकाय जातक में “वेलुपण्डवीणा” भगवान बुद्ध के सामने पंचसिख ने बजाई। उस पर बौद्ध धर्म, अर्हत तथा भोग संबंधी गीत गाये। बुद्ध उनका गान सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए।³ जातक काल में वीणा वादकों की प्रतियोगिता में विजेता को पुरस्कार एवं राज्याश्रय प्राप्त था। उज्जैन का वीणावादक मुसिल और बनारस का गुत्तिल दोनों में प्रतियोगिता होकर गुत्तिल के विजेता होने का उल्लेख मिलता है।⁴ दम्मेध जातक में उल्लेख है कि बोधिसत्त्व जब तक्षशिला में अध्ययन कर रहे थे उस समय उन्होंने तीन वेद कंठस्थ किये थे। उन दिनों बनारस के लोकसंगीत का देवोत्सवों में बहुत प्रयोग होता था।⁵ सुरूचि जातक में 1000 प्राचीन नृत्य बालाओं का उल्लेख मिलता है।⁶

भूरिजातक में बनारस के राजा ब्रह्मदत्त की मृत्यु के उपरांत बोधिसत्त्व के राज्यारोहण के समय 16000 नर्ताकियों के नृत्य का उल्लेख मिलता है।⁷ दारिमुख जातक में बोधिसत्त्व की एक जन्म कथा के अनुसार जब वे

-
1. दीघनिकाय 1 पृ० 6
 2. ललित विस्तार 12 पृ० 139
 3. दीघनिकाय 2 पृ० 197
 4. गुत्तिलजातक भाग 2, पृ० जातक नं० 243 पृ० 249-257
 5. दम्मेध जातक- नं० 50, भाग 1, पृ० 260
 6. सुरूचि जातक- नं० 489, भाग 4, पृ० 318
 7. भूरिदत्त जातक- नं० 543, भाग 6, पृ० 162

बनारस पढ़ने आये तब एक उत्सव में 100 वाद्यों के प्रयोग का वर्णन मिलता है। काशी के राजा 7 दिन पहले दिवंगत हुये थे। सेना के साथ नये राजा की खोज में 4 सेनाओं में 100 वाद्य बजने का उल्लेख मिलता है।¹ चन्दकिन्नर जातक में बांस की बांसुरी का उल्लेख है।² संगीत कला में तज्ज्ञ होने के कारण गणिका को अन्य साधारण वेश्याओं की अपेक्षा विशेष सम्मान प्राप्त था। ललितविस्तर में गणिका शास्त्रज्ञ भी होती थी “शास्त्रे विधिज्ञ कुशल गणिका यथैव” इनके लिये पंचशील की दीक्षा आवश्यक थी। (द्र० दुग्धेध जातक) जनपद काल में उसे नगर वधू होने का सम्मान प्राप्त था। इस समय वेश्या या गणिका का नैतिक स्तर बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। बौद्ध धर्म में प्रव्रज्या लेने वालों में जनपद कल्याणी अड्डकाशी का भी उल्लेख है। कहा जाता है कि इस वेश्या की एक दिन की फीस काशी की आमदनी का आधा भाग था। बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर अड्डकाशी अरहतपद को प्राप्त हुई। (जातक कथा संग्रह) धर्मचक्र प्रवर्तन का उपदेश सारनाथ में पंचभिक्षुओं को सर्वप्रथम बुद्ध ने वाराणसी में ही दिया क्योंकि उस समय वाराणसी प्रसिद्ध, विख्यात नगर था। थेरीगाथा 2, 4।

बौद्ध काल में नाटय या नाटक के लिए पेक्खा (प्रेक्षा) संज्ञा थी। इस काल में नाटय व संगीत को राज्याश्रय प्राप्त था। तत्कालीन समाज में संगीत की प्रगति सामाजिक रूप में हो चुकी थी। उत्सवों (अनुष्ठानों) में, राज्यसभा में संगीत का आमोद-प्रमोद के लिये प्रयोग था। जातक कथाओं में वे अधिकतर बनारस से संबंधित होने के कारण बुद्धकालीन बनारस के संगीत की स्थिति की उन्नत अवस्था का दर्शन होता है। काशी में इस काल में वैशिक परम्परा पूरी तरह स्थापित थी। काशी या बनारस की गणिकाओं ने पूरे भारत में गायन और नृत्य में अपना विशेष स्थान बनाया। बोधिसत्व के समय लोक संगीत को भी उत्सव में अपनाने से सिद्ध होता है कि काशी में गणिकाओं द्वारा उत्सव में कजरी, झूला, होली, चैती आदि के सांगीतिक

1. दारिमुख जातक- नं० 378, भाग 3, पृ० 239 से 240

2. चन्दकिन्नर जातक- नं० 485, भाग 4, पृ० 284

प्रयोगों का होना इसकी भी पृष्ठभूमि दर्शाता है।

9. मौर्य काल :

चाणक्य और चन्द्रगुप्त भारतीय इतिहास के अविस्मरणीय विद्वान और सम्राट हैं। 317 ई०पू० में चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक हुआ जिसने 24 वर्ष शासन किया। उसके बाद चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र बिन्दुसार राजा हुये जिनका एक संस्कृत नाम अमित्रघातक है। इस काल में भी काशी का व्यापारिक और सांस्कृतिक महत्व जैन, बौद्ध ग्रंथ और पुराणों में पर्याप्त रूप से उल्लिखित है। बिन्दुसार ने 293 से 268 ई० पू० तक शासन किया। तत्कालीन संस्कृत रचनाओं में संगीत और नाटक संबंधी विवरण उपलब्ध हैं और काशी नागकूप का इतिहास पाणिनी से जुड़ा है इसलिये पाणिनी कालीन भारत में संगीत संबंधी जो विवरण उपलब्ध हैं वह काशी की संगीत परम्परा को गौरवान्वित करती है, जिसका एक प्रमुख प्रमाण काशी की वैशिक परम्परा और विद्वत् परम्परा है जिससे प्रभावित गुरु शिष्य परम्परा अभी तक चलती आ रही है।

मौर्यों के राजकीय आदेशों में अशोक का नाम देवानां प्रिय या देवानां प्रियदर्शी के रूप में मिलता है जो संस्कृत में शिलालेखों में उत्कीर्ण मिलता है। अनुमानतः यह काशी के पण्डितों का अशोक के चण्ड रूप पर व्यंग्य होना चाहिए। इसका अर्थ है जो देवताओं को ही प्रिय है : बनारस में इस प्रकार की उलटवासी लिखने बोलने की परम्परा अभी भी है। चण्डाशोक के हृदय परिवर्तन के बाद वाले स्वरूप में बौद्ध धर्म अनुयायी होने के बाद को अशोक कालीन सामग्रियाँ जो पुरातात्विक उत्खननों से सारनाथ में प्राप्त हुई हैं वह काशी के कला-कौशल और सांस्कृतिक वैभव को प्रमाणित करती हैं। इस काल की ऐतिहासिक कथा प्राचीन लेखों की कृतियों, चीनी यात्रियों के विवरण और पुरातात्वीय प्रमाण और लेखों से पूरी तरह प्राप्त होती है। लगभग 180 ई०पू० में मौर्य वंश के अंतिम प्रतिनिधि राजा बृहद्रथ की हत्या कर दी गई। हत्या के इस षड्यंत्र के सूत्रधार सेनापति ने शुंग वंशीय शासन 100 वर्ष से अधिक चलाया। इसके बाद कण्व वंश का शासन था। इस काल में काशी से श्रीलंका, ब्रह्मदेश और दक्षिण अरब और यूनानी क्षेत्र

अध्याय-2 (क) प्राचीन काल से 15वीं शताब्दी तक/55

के देशों तक गरम मसाले रत्न, हाथी दांत के सामान, तरह-तरह की लकड़ियाँ, सूती और रेशमी वस्त्र और जरी का तो निर्यात होता ही था, इस काल में काशी के संगीत जगत की मान्यता देश-देशांतर में थी। विशेष विवरण जातक कथा तथा तत्कालीन संस्कृत साहित्य में मिलता है। (पाणिनी कालीन भारत यथा दत्तिलकृत दत्तिलम), भरत का नाट्य शास्त्र, कौटिल्य का अर्थ शास्त्र आदि अन्य संस्कृत रचनाओं में, चीनी यात्रियों के विवरणों में यत्र-तत्र संगीत के उल्लेख मिलते हैं।

अश्वघोष : 200 वर्ष ई०पू० के “सौंदरानंद” में काशी की वेश्या का उल्लेख।¹ बुद्ध के काशी आने का उल्लेख।² मौर्य, शुंग, कण्व काल में दक्षिण भारत में केरल तक के राज्यों पाण्ड्य, चोल, चेर, सत्यपुत्र, केरल-पुत्र तक काशी से आवागमन के प्रमाण मिलते हैं। इसी प्रकार 4वीं शताब्दी ई०पू० के कात्यायन और उनके परवर्ती पतंजलि (दोनों व्याकरण के आचार्यों) के समय में काशी का दक्षिण भारत से सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा।

10. मौर्योत्तर काल :

इसका सबसे प्रसिद्ध और शक्तिशाली राज्य सातवाहन वंश का था। पुराणों के अनुसार इसका प्रारंभिक महत्वपूर्ण राजा शातकर्णी हुआ। इसके समय में काशी का वैभव और संस्कृति देश में प्रमुख स्थान प्राप्त कर चुकी थी। उस समय नगर सभ्यता और ग्रामीण सभ्यता दोनों में धार्मिक त्योहारों सहित सभी उत्सव सामुदायिक मनाये जाते थे जिसमें गायन, वादन और नृत्य भी सम्मिलित है। इस काल में गृहदास/दासी समुदाय का विवरण है, जिन्हें संगीत का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। प्रथम सहस्राब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर सातवाहन काल तक काशी तीर्थ विद्या संस्कृति, उद्योग व्यापार और संगीत का एक विख्यात केन्द्र बन चुका था। पतंजलि के भाष्य में वाराणसी नाम कई बार आया है। पतंजलि के व्याकरण में अभिनेता, रंगमंच, वाद्य

1. अश्वघोष- सौंदरानंद-सर्ग 7/30

2. अश्वघोष- सौंदरानंद-सर्ग 3/15

वादकों आदि के उल्लेख मिलते हैं। यह प्रमाणित करता है कि गुरुशिष्य परम्परा से कण्ठस्थ करने पर ही शिक्षा प्रणाली पीढ़ी दर पीढ़ी बनी रही। मेगस्थनीज एवं स्त्राबों के विवरण के अनुसार संगीत के साथ-साथ उस समय ग्रामानुग्राम और नगर से नगर तक घूमते इन्द्रजाल के विशेषज्ञों जिन्हें आज नट कहा जाता है मनोरंजन के लिये अस्तित्व में थे।

सारनाथ में मिले दो अभिलेखों से पता चलता है कि कनिष्क के शासन के तीसरे वर्ष में काशी उसके राज्य में सम्मिलित हो चुकी थी। 81 ई०स० में महाक्षत्रय खरपल्लन और क्षत्रप वनस्पर कनिष्क के द्वारा नियुक्त काशी के क्षेत्रपाल थे जो काशी नगर और पूरे प्रदेश का शासन संभालते थे।

भौगोलिक भारतीय उपमहाद्वीप में आज बहुत से देश अलग-अलग हैं। भारतीय संस्कृति का साम्राज्य इन दूरस्थ देशों तक कभी फैला था। बर्मा, बंगला देश, पाकिस्तान हमारे यह निकटस्थ देश तो इसके उदाहरण हैं ही पश्चिम में कभी भारतीय संस्कृति का विस्तार अफ़ग़ानिस्तान और उससे भी दूर तक रहा।

ऐतिहासिक प्रमाण है कि गांधार प्रदेश जिसे आज कंधहार कहते हैं वहाँ तक कभी मौर्य और गुप्त साम्राज्य प्रतिष्ठित था। यह भी सर्वविदित है कि कुषाण साम्राज्य ई० पूर्व से तीसरी ईस्वी तक अफ़ग़ानिस्तान, कश्मीर और सिंधु के साथ गंगा जमुना के प्रदेश तक बना रहा। कुषाणों ने देवपुत्र-शाही-शहानुशाही उपाधि धारण की थी। अल्बेरूनी के अनुसार काबुल घाटी के शाही तुर्क शाही (तुर्की शाही) कहलाते थे। चीनी यात्री श्वान चांग भी अपने यात्रा विवरण में एक समकालीन “तुर्की-शाही” शासक का उल्लेख किया है। इसने अरब के मुसलमानों से एक लम्बा संघर्ष किया था जो नवीं शताब्दी के मध्य तक चलता रहा। तुर्की शाही का अंतिम शासक लगतूरमान था।

एक कुशल ब्राह्मण मंत्री कल्लर ने लगतूरमान के शासन से प्रजा की असंतुष्टि देखकर उसे गद्दी से हटाकर स्वयं शासक बना बैठा। अल्बेरूनी इस शासक की परम्परा को हिन्दू या ब्राह्मण शाही लिखता है। लल्लियकल्लर हिन्दू शाही वंश का संस्थापक माना जाता है, जिसने काबुल और गांधार पर

अध्याय-2 (क) प्राचीन काल से 15वीं शताब्दी तक/57

शासन किया इसके बाद सामंत से लेकर भीमशाही तक 21 ईस्वी तक यह हिन्दू राज्य बना था। इसी समय वहाँ 25 ईस्वी के आस-पास नगर कोट में एक विष्णु मंदिर बना जिसमें ब्राह्मण पुजारी सेवा में नियुक्त थे। अल्बेरूनी के अनुसार इस विष्णु मंदिर में सभी दिशाओं से दर्शनार्थी आते थे।

इसी साम्राज्य के भीमशाही ने अपनी लड़की का विवाह कश्मीर के राजा सिंहराज से 27 ईस्वी में किया। इसी भीमशाही ने काश्मीर में 55 ईस्वी में भीमकेशव का मंदिर बनवाया। चीनी यात्री की-ये 60-61 ईस्वी में 300 भिक्षुओं के साथ गांधार की यात्रा की थी। उसके विवरण के अनुसार शाहीयों का साम्राज्य काबुल, नगरहाट, पेशावर चारसदा, उण्ड, लमगान और कांधार तक विस्तृत था। इस यात्री अल्बेरूनी के विवरण में समान रूप से इस साम्राज्य के शासकों की धार्मिक प्रवृत्ति, विद्या प्रेम और दानशीलता की प्रशंसा है। यह साम्राज्य महमूद गजनवी द्वारा नष्ट भ्रष्ट किया गया।¹ भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण परिवार इसी काल में पंजाब से जाकर वहाँ बसे थे। यह निष्कर्ष समीचीन होगा कि भारतीय संगीत, इस काल में भी, इस पूरे साम्राज्य में फैला रहा होगा।

दूसरी शती में कुषाण राजा वासुदेव प्रथम की मृत्यु के बाद काशी प्रसाद जायसवाल के अनुसार काशी भारशिव नरेशों के अधीन थी।

325-535 ई० तक निश्चित रूप से काशी गुप्त साम्राज्य के अधीन थी। 6ठीं शती में काशी पर कनौज के मौखरी वंश का शासन हो गया। 7वीं शताब्दी में काशी हर्ष के शासन में थी। हर्ष के बाद गुप्त सम्राट (जो केवल क्षेत्रीय राजा रह गये थे) (1) आदित्य सेन (2) देवगुप्त (3) विष्णुगुप्त (4) जीवीतगुप्त-2 के अधीन काशी जनपद था क्योंकि ऐसा प्रमाण मिलता है कि आदित्य सेना या उसके उत्तराधिकारी देवगुप्त ने पूरे उत्तरी प्रदेश के अधिपति चालुक्य नरेश विनयादित्य को पराजित कर दिया था।

7वीं शताब्दी में कन्नौज के राजा यशोवर्मन काशी, मगध और अंग,

1. भारद्वाज पूर्वज वंश- विश्वनाथ भारद्वाज

बंग जीतकर बंगाल की खाड़ी तक अपने साम्राज्य का विस्तार कर चुके थे। परन्तु 8वीं शताब्दी में कश्मीर के राजा ललितादित्य ने यशोवर्मन को पराजित करके इलाहाबाद के निकट बांदा तक अपना राज्य बना लिया।

कुछ समय बाद बंगाल के राजा धर्मपाल ने काशी पर अपना राज्य स्थापित कर दिया। धर्मपाल के पुत्र देवपाल का शासन भी काशी पर बना रहा परन्तु उसके बाद कन्नौज के प्रतीहारों ने लगभग 850 ई० सन् में काशी को अपने अधिकार में ले लिया।

816 ई० सन् राष्ट्रकूट राजा इन्द्र तृतीय के कन्नौज पर अधिकार कर लिया लेकिन काशी के प्रतीहारों का ही शासन बना रहा।

1015 से 1041 तक त्रिपुरी के राजा गांगेयदेव के अधिकार में काशी आ चुकी थी। इसी समय महमूद गजनी ने कन्नौज का विध्वंस किया।

महमूद गजनी के एक सेनापति 1034 ई०स० में नियल्लगीन गंगा के जलमार्ग से काशी तक पहुँच गया और उसने पूरे काशी को अच्छी तरह लूटा और यहाँ के वस्त्र, आभूषण, जवाहरात, सुगंध इत्र इत्यादि और सुंदरी नर्तकियों को उठा लिया। दोपहर होने के बाद काशीवासियों के प्रबल प्रतिरोध होने से उसे भागना पड़ा। गांगेयदेव के बाद उसके पुत्र कर्णदेव का शासन चला। कर्ण को चंदेलों ने 1055 ई० में पराजित किया। चन्देलों ने अपार हर्ष मनाया। इसी अवसर पर कृष्णामित्ररचित “प्रबोधचंद्रोदय” नामक संस्कृत नाटक सर्वप्रथम अभिनीत हुआ जिसकी घटना और चरित्र भूमि काशी है। कर्ण के पराक्रम का उल्लेख अनेक कवियों ने किया है।¹

कर्ण स्वयं शिव उपासक था धार्मिक एवं विद्या का भी उपासक था। विल्हण, नाचिराज, कर्पूर तथा विद्यापति अनेक कवियों ने अपने काव्यों में कर्ण के पराक्रम का यश उल्लिखित किया है। प्राकृत के कवियों ने की उसकी यशस्वी गाथा लिखी है।²

कर्ण ने 1052 ईस्वी तक पूरे भारत पर अपना प्रभाव बना लिया

1. मिराशी, कलचुरी नरेश और उनका राजत्वकाल

2. मिराशी, कलचुरी नरेश और उनका राजत्वकाल

था।¹ बिल्हण (महाकार्क) कर्ण के ही आश्रित थे। कर्ण ने वृद्धावस्था में अपने पुत्र यशःकर्ण को राजगद्दी दे दी (1073-1123 ईस्वी) परन्तु थोड़े ही समय बाद गाहड़वाल राजा चन्द्रदेव ने बनारस आदि से लेकर कन्नौज तक प्रदेश उससे छीन लिया।

चंदेल वंश का विकास 821 ईस्वी से आरम्भ होता है और इसी वंश में शाहिल का पुत्र हर्ष के बाद यशोवर्मन का साम्राज्य हिमालय से मालवा तक और कश्मीर से बंगाल तक विस्तृत था। महमूद गजनवी ने कालिंजर आक्रमण किया (1022 ईस्वी में) और उसी समय ग्वालियर पर भी आक्रमण किया। इन मुस्लिम आक्रमणों के प्रभाव से भारत में छोटे-छोटे स्थानीय राजाओं और सामंतों में बंट गया और आने वाली शताब्दियों में मुस्लिम साम्राज्य के अधीन रहने की पृष्ठभूमि बन गई।

बनारस में हिन्दू शासन के नष्ट होने के पहले 400 ई० से लेकर 1200 ई० क 8 सौ वर्ष का काल अत्यन्त गौरवशाली है। अलग-अलग शासन आते गये और जाते गये लेकिन काशी (वाराणसी) की धार्मिक, शैक्षणिक, औद्योगिक, व्यापारिक, कला कौशल (योगाभ्यास, कसरत और अखाड़े, शस्त्र विद्या आदि), सांस्कृतिक समृद्धि विश्वविख्यात हो चुकी थी। कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। संगीत के क्षेत्र में यहाँ के गायक, वादक तथा नृत्यांगनाएँ पूरे देश में शीर्षस्थ स्थान बना चुकी थीं। काशी में वैशिक परम्परा ज्ञात इतिहास के सभी कालों में पूरी समृद्ध रही और गाने, बजाने, नाचने में प्रवीण गणिकाएँ इतिहास प्रसिद्ध रही हैं। ऐसी कुशल गणिकाओं को संगीत का प्रशिक्षण देने वाले विशेषज्ञ शिक्षक भी उस समय में होना एक अनिवार्यता मानना ही पड़ेगा।

हूणों के आक्रमण तक नालंदा नष्ट हो चुकी थी, मुस्लिम आक्रमणों ने तक्षशिला को श्रीहीन कर दिया था। ऐसी परिस्थिति में काशी शैक्षणिक जगत् में एक अकेला प्रकाश केन्द्र बना रहा। 7वीं शताब्दी के युवानच्चांग के यात्रा विवरण में स्पष्ट उल्लेख है कि यहाँ की शैक्षणिक व्यवस्था से वह

1. डॉ० हीरालाल मध्यप्रदेश का इतिहास

आश्चर्यचकित हो गया था। भगवतपाद आद्यशंकर की काशी यात्रा को भी इतिहासकार 8वीं शताब्दी का बताते हैं। उस समय भी काशी पूरी तरह समृद्ध थी, 11वीं शताब्दी में पंजाब पर मुसलमानों का शासन हो जाने से वहाँ के विद्वान, शिल्पकार संगीतज्ञ, नर्तकी आदि सभी अल्बीरूनी के कथनानुसार बनारस में शरणागत हो गये। बनारस में गुरु शिष्य की प्राचीन परम्परा का निर्वाह गाहड़वाल शासन तक प्रमाणित रूप से चलता ही रहा। इसे प्रमाणित करने वाले गाहड़वाल वंश के कुछ अभिलेख हैं जो तत्कालीन गुरु शिष्य परम्परा के पंडित परिवारों को दिये गये थे। इसके अतिरिक्त तत्कालीन विद्वत् समाज बनारस में निःशुल्क शिक्षा भोजन आवास की सुविधा भी देता रहता था। कृष्णमिश्र के नाटक प्रबोधचन्द्रोदय के अनुसार इस समय का बनारस सर्वमान्य धर्म शिक्षा और संस्कृति का केन्द्र पूरे देश में था। इसी काल में बनारस में मूर्तिकला अपनी अति उच्च अवस्था में जो मथुरा, बिहार और बंगाल तीनों के प्रभाव से विकसित हुई। युवॉनच्वांग काशी की समृद्धि का भी विशेष उल्लेख करता है। युवॉनच्वांग के बाद चीनी यात्री फांगची भी काशी के गौरव को प्रमाणित करता है। 6वीं शताब्दी के एक अभिलेख से पता लगता है¹ कि तत्कालीन काशी में मुण्डमाला पहने, हाथ में परशु और सर्पों से लिपटी हुई मूर्ति का चण्डी मन्दिर था।

गाहड़वाल वंश के दानपत्रों से पता लगता है कि वह गुप्त राजाओं के समान वैष्णव थे। चन्द्रदेव से जयचन्द्र तक के सभी गाहड़वाल राजाओं ने आदि केशव और केशव घाट, वेदेश्वर घाट, त्रिलोचन घाट, अघोresh्वर मन्दिर, स्वप्नेश्वर घाट, लोलार्क मन्दिर, कृत्तिवासेश्वर मन्दिर, पंचोंकार बिन्दुमाधव, लौदेश्वर आदि को इन्होंने दान दिया था। गोविन्दचन्द्र ने कोटितीर्थ में स्नान किया था और वहाँ भी दान किया था। साथ ही विश्वनाथ मंदिर में पूजा करने के बाद भी दिया जाने वाला दानपत्र मिला है। (उक्ति व्यक्ति प्रकरण)

उपर्युक्त ऐतिहासिक विवरण प्रमाणित करता है कि ईसा पूर्व 800 से

1. एपिग्राफिका इण्डिका 9, पृ० 69

लेकर 12वीं शताब्दी तक काशी की गाथा सर्वगुण सम्पन्न रही है। यहाँ हिन्दू, जैन और बौद्ध सहित अपने सभी धार्मिक अनुष्ठान और रीति-रिवाजों का पालन करने चले आये। 8वीं शताब्दी के राजतरंगिणी के अनुसार कल्हण के पिता चंपक के भाई, आचार्य कनक ने काश्मीर के राजा हर्ष को गान विद्या से प्रसन्न किया।¹ कनक राजा हर्ष की मृत्यु के बाद बनारस चले आये।² ये शैव ब्राह्मण थे। आचार्य कनक कुशल संगीतज्ञ थे।

महाराज गोविन्दचन्द्रदेव के समय ही उनके महामात्य लक्ष्मीधर कृत्यकल्पतरु नामक 14 खण्डों का विशाल धर्म संबंधी निबंध प्रस्तुत किया जिसमें धार्मिक कृत्यों का विशद विवेचन है। गोविन्दचन्द्र देव के ही आमात्य दामोदर शर्मा ने “उक्तिव्यक्ति प्रकरण” लिखा जिसमें जीवन शैली के सभी पक्षों का विशद विवरण है।

विगत शताब्दियों में पाणिनी, पंतजलि वात्स्यायन आदि की रचनाओं के साथ भरत का नाट्यशास्त्र, भारतीय सामाजिक जीवन को प्रभावित करता रहा। फलतः सामाजिक जीवन में संगीत पूरी तरह विकसित रहा।

काशी का भी धार्मिक जीवन संगीत के बिना परिपूर्ण नहीं होता। वैशिक परम्परा का उल्लेख सभी कलाकौशलों का इतिहास प्रामाणिक रूप से करता ही है। भगवान श्रीकृष्ण के अवतार के बाद से शैव, शाक्त और वैष्णव परम्पराओं में संगीत का स्थान अनिवार्य रहा ही है। बौद्ध और जैन परम्परार्यें भी संगीत के इतिहास को प्रमाणित करती हैं। अतएवं जिस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति का विस्तार देश-देशांतर तक प्रमाणित हुआ उसी प्रकार काशी में भी अन्य कला कौशलों के साथ संगीत सामाजिक जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। यह निष्कर्ष भी उचित प्रतीत होता है कि समाज के उच्च वर्ग में भी संगीत का उतना ही महत्व था, जितना इतर वर्ग में। धनिकों के परिवार की कुमारियाँ, राजकन्याओं और वैशिक परम्परा में संगीत की शिक्षा अनिवार्य थी ऐसा प्रमाण विशिष्ट ग्रंथों में उपलब्ध है।³

1. राजतरंगिणी 7/11/17

2. वही, 8/12

3. वात्स्यायन का कामसूत्र.

सिद्धार्थ गौतम स्वयं संगीत में कुशल थे और सम्राट समुद्रगुप्त वीणा वादन में कुशल थे। भगवान श्रीकृष्ण वंशीवादन और नृत्य में कुशल थे और काशीपुराधीश्वर नटराज और उनकी अर्धांगिनी तो संगीत की आदि गुरु हैं। जन साधारण के लिये और सामूहिक जीवन में अनेक उत्सवों का संगीतमय आयोजन देशी और लोकसंगीत दोनों को प्रमाणित करता है। यही परम्परा आगे मुस्लिम और ब्रिटिश काल में भी चलती रही।

संस्कृत के नाटकों की परम्परा से भी काशी का संबंध रहा है। संस्कृत के नाटकों में संगीत के विवरण एक स्वतंत्र ग्रंथ का विषय है। फलतः पूर्वरंग के विधान के अनुसार काशी में भी संगीत के सभी विधाओं के विद्वान विभिन्न कालों में रहे हैं, यही निष्कर्ष उचित है।

11. सल्तनत युग :

उत्तर पश्चिमी भारत में अपना पैर जमाने के बाद से अरब और तुर्क देशों के लोग गंगा की घाटी में कब्जा करने के लिये प्रयत्नशील थे। राबी नदी पार करके वह बाकी क्षेत्र में भी अपना शासन करने के लोभी थे। अहमद नियाल्तगीन ने बनारस तक छापा मारकर जो लूट की थी, उसने इनके साम्राज्य विस्तार के लोभ को और बढ़ा दिया था।¹

इस समय तक झाँसी पर मसूद का अधिकार हो चुका था। मसूद तृतीय के फौजदार, पंजाब के गवर्नर हाजिब तुबाल्तगीन ने हमलाकर गंगा पार कर उस जगह तक बढ़ गया जहाँ मसूद के अलावा कोई नहीं पहुँचा था।² मसूद साद सलमान के दीवान से पता लगता है कि बदाइन, डहगन, कन्नौज मालवा, कालिंजर और काशी तक गजनवी के हमले हुये थे।³

सैयद हसन, मसूद साद सालमान, रुमी तथा सनाई जैसे उत्तरकालीन गजनवी कवियों की रचनाओं से पता लगता है कि उनके देश में भारत के बारे में विशद् चर्चाएँ होती थी। गजनवी के उत्तरकालीन शासकों के लिये

-
1. बयहाकी (गनि तथा फैयाज का अनुवाद)
 2. मिनहाज पृ० 22
 3. दीवान, मसूद साद सालमान, संपादित रशीद यासीमी

भारत को अपना साम्राज्य बनाना एक बड़ा आकर्षण बना चुका था। 12वीं शताब्दी तक काशी उद्योग, व्यापार, विद्या, कला-कौशल, संगीत इत्यादि सभी क्षेत्रों में पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर चुकी थी। 1193 में महमूद गोरी ने पुनः कन्नौज को नष्ट कर दिया और उसके सेनापति कुतुबद्दीन ऐबक ने 1194 में काशी पर हमला करके मुस्लिम शासन का सूत्रपात किया। इतिहास बताता है कि उसने 1000 मंदिरों को तुड़वाकर उनके स्थान पर मस्जिदें बनायीं और 1400 ऊँटों पर लादकर यहाँ से लूटी हुई सम्पदा को ले गया।¹ मुस्लिम इतिहासकारों के विवरण से यह भी पता लगता है कि बनारस से हजारों दास-दासियों, नर्तकियों और गाने-बजाने वालों को दास बनाकर ले गया।

कुतुबुद्दीन ऐबक के जाने के बाद भी काशी का अंतिम हिन्दू राजा हरिश्चन्द्र हुआ जिसने पूर्व में आधुनिक राजगिरी (बिहार), से लेकर इलाहाबाद, मिर्जापुर, जौनपुर तक अपना अधिकार बना रखा। 1197 ई० में चन्द्रदेव मदनपाल गोविन्द चन्द्र, जयित्रचन्द्र और हरिश्चन्द्र के काल की समृद्ध सुसंस्कृत काशी की परम्परा और राजकीय परम्परा पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी थी। साथ ही पूरे भारत में मुस्लिम शासन का उदय हो गया।

फलतः 12वीं और 13वीं शताब्दी के अंत में गोरियों द्वारा जो बड़े-बड़े आक्रमण भारत पर किये गये वह पूर्ववर्ती आक्रमणों के फलस्वरूप ही हुये। 12शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत दूर-दराज स्थानों पर मुस्लिम व्यापारी और शांतिपूर्ण जीवन के लिये मुस्लिम देशों से आये शरणार्थियों की बहुत सी बस्तियाँ आबाद हो चुकी थी। काशी की नगर सीमा के बाहर की इन बस्तियों का उल्लेख मिलता है। इसी काल में काशी और कन्नौज के राजा गोविन्दचन्द्र (1114-1115 ईस्वी) की रानी कुमारदेवी का एक अभिलेख सारनाथ में मिला है जिसके अनुसार “गोविन्दचन्द्र ने दुष्ट तुरुष्क योद्धा से काशी की रक्षा की” साथ इस प्रकार गोविन्दचन्द्र की यह प्रशस्ति है।² गोविन्दचन्द्र के पौत्र जयचन्द्र का जन्म उसी दिन हुआ था जिस दिन

1. इलियट अण्ड डॉसन-2 पृ० 222

2. एपिग्राफिका इन्डिका पृ० 19, पृ० 319

गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण पर विजय प्राप्त की थी इसी से उसका नाम जयचन्द्र पड़ा था। रम्भा मंजरी के अनुसार जयचन्द्र की माता का नाम चन्द्रलेखा था।¹ पिता विजय चन्द्र ने अपने जीवन काल में ही उसे युवराज का पत्र और राजकीय अधिकार रविवार 16 जून 1168 को दे दिये। इसी अवसर पर जयचन्द्र ने बनारस में गंगा स्नान करके महापुरोहित प्रहराजशर्मन को हरिपुर नामक गाँव दान में दिया।² रविवार 21 जून 1170 को जयचन्द्र गहड़वालों की राजगद्दी पर बैठा।³ इब्नेअसीर के अनुसार “बनारस का राजा भारत के राजाओं में महानतम् था। इस राज्य का विस्तार चीन की सीमा मालवा के सूबे तक लम्बा था। और चौड़ाई 10 दिन यात्रा में लाहौर में समय पर समाप्त होती थी। “फरश्ता” के अनुसार भी जयचन्द्र बनारस और कन्नौज का राजा था। मोइजुद्दीन गोरी के सिपहसालार सेनापति और प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली में अपना अधिकार जमा लिया। मोइजुद्दीन गोरी ने 50 हजार घुड़सवारों की फौज लेकर ऐबक और सेनापति इज्जुद्दीन हुसैन बिन खारमिल के साथ जयचन्द्र पर हमला किया।⁴

बनारस और कन्नौज के राजा जयचन्द्र और मोइजुद्दीन का यह युद्ध यमुना किनारे चंदावर नामक स्थान पर, जो कन्नौज और एटा के बीच में है हुआ था। इसमें वीरोचित नेतृत्व करते हुए भी जयचन्द्र मारा गया। वहाँ से बढ़ते हुए, मंदिरों को ध्वस्त करते हुए खजाने और संपत्ति को लूटते हुए मोइजुद्दीन की फौज ने बनारस तथा असनी के किले पर अपना अधिकार शीघ्रताशीघ्र बनारस और असनी के गाहड़वाल खजाने की लालच में किया।⁵

मालिक हुसामुद्दीन उगुलाजाक नामक व्यक्ति को इस क्षेत्र पर मुफ्त

1. रम्भामंजरी अंक-1, पृष्ठ 23
2. एपि0 इन्डिका 4, पृ0 118-129
3. वही 4 पृ0 120-121
4. ताजुलमासिर, तारीखअल्फी, फरिश्ता, फखरेमुरछरि, इब्नेउलमसीर
5. लाजुलमासीर

और सैनिक शासक बनाया गया।¹ और बनारस चन्द्रावती तक मुस्लिम साम्राज्य कायम हुआ।

1198-1199 ईस्वी में काशी और कन्नौज की सत्ता स्थापित तो हो गई किन्तु गाहड़वाल राज लगभग ई0 1200 तक मिर्जापुर, मछलीशहर (जौनपुर जिला में) और जफराबाद को राजधानी बनाकर बने रहे।

गाहड़वाल वंश ने संभवतः पुनः कन्नौज पर अधिकार कर लिया होगा क्योंकि इल्तुतमिश से हमला कर कन्नौज को जीतना पड़ा और उसने जीत की खुशी में नये सिक्के चलाये। बनारस के बहुत से विद्वान शिल्पी और गाने-बजाने, नाचने वाले इसी समय जौनपुर जफराबाद, मछलीशहर, मिर्जापुर, बदायूं और कन्नौज तक भागकर बस गये। फरवरे मुछबीर और मिन्हाज ऐसा विवरण देते हैं कि गंगा यमुना के दोआबे में अगले 6 वर्ष तक मुस्लिमों का पूरा नियंत्रण नहीं था और ऐबक को फिर से हमला करके इन क्षेत्रों को अपना अधिकार में लेना पड़ा।

गर्मसीर का मूल निवासी इखियारउद्दीन मुहम्मद बख्तियार खल्जी ने भारत में आकर दिल्ली वगैरह कई जगह नौकरी खोजी परन्तु उसे बदायूं के मुत्ता सिपहसालार हिजबुद्दीन हसनअदीद के यहाँ ही पहली नौकरी मिली।² अलीनगौरी के यहाँ जाकर उसे कसमण्डी का भी इत्ता मिला परन्तु वह वहाँ रुका नहीं और अवध और बनारस के सेनापति मालिक हुसामुद्दीन आकलबेर्गस मिल गया। आबुल ने भगवत तथा भीडली के इक्के प्रदान किये।³ ये दोनों परगने आधुनिक जिला मिर्जापुर के दक्षिणी कोने में हैं। भिऊली का नाम आजकल भुइली हो गया है। बख्तियार को एक ऐसा मौका और स्थान मिल गया जहाँ वह अपने लड़ाकू सिपाहियों को एकत्रित कर अपना साम्राज्य बना सके। फलतः 1270 ईस्वी के लगभग कर्मनासा नदी पार कर पटना के पास मनेर और बिहार के नाम पर उसके चारों ओर के प्रदेश को बिहार कहने लगे। ओदन्तपुरी के बिहार के साथ-साथ विक्रमशिला तथा नालंदा में

1. हबीबुल्ला दि स्ट्रगल फॉर एम्पायर

2. कैटलाग ऑफ कॉयन्स इन इण्डियन म्यूज़ियम

3. तबकाने नासीरी पृ0 146

भी अधिकार किया। वहाँ के पुस्तकालय जला दिये गये। सिर मुड़े हुए सारे हिन्दुओं को मार डाला गया और पूरी रास्ते की लूटी हुई अपार सम्पत्ति लेकर बख्तियार ऐबक के पास पहुँचा। इस अपार संपत्ति को ऐबक को भेंट कर दिया और उसका विश्वस्त सिपहसालार की तरह बन गया। 1206 ईस्वी के लगभग हरिश्चन्द्र गहड़वाल ने बनारस से फर्रुखाबाद और बदायूँ के जिलों तक अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी।¹ परन्तु यहाँ हिन्दू शासन कुछ ही वर्षों में समाप्त हो गया।

लगभग 20 वर्षों के लिए 1246 से 1265 इल्तुतमिश के सबसे छोटे लड़के नासिरउद्दीन को गद्दी पर बैठाया गया परन्तु शासन सत्ता उसके कुशल सलाहकार गयासुद्दीन बलबन के हाथ में चली गई।

जलालुद्दीन के भतीजे और दामाद अलाउद्दीन खिल्जी ने देवगिरि के यादव वंशीय राजा रामचन्द्र को हराया और वहाँ की लूट की संपत्ति लेकर राजधानी दिल्ली लौटा। दिल्ली के पास आते-आते उसने अपने ससुर की हत्या कर दी और 1296 से 1316 ई० तक दिल्ली सल्तनत का निर्मम सेना नायक, प्रतिभाशाली और दृढ़संकल्प प्रशासक बन बैठा।

इसी समय उसके सिपहसालार मलिक काफूर ने ई० 1307 में एक बार फिर देवगिरि में काकतीय राज्य की राजधानी वारंगल को ई० 1311 में जीत लिया। उसने होयसल राज्य की राजधानी द्वारसमुद्र और पाण्ड्योँ के केन्द्र मथुरा को जीता। इस तरह कुमारी अंतरीप तक अलाउद्दीन के अधीन भारत हो गया। 1316 में जलोदर होने से अलाउद्दीन खिल्जी की मृत्यु हुई। इसके दरबाद में प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरों थे जो संगीतज्ञ भी था।

खिल्जी वंश की समाप्ति के बाद पंजाबी सरहद के पास के सिपहसालार मलिक गाजी ने 1320 ई० में सल्तनत को दखल कर लिया और उसने गद्दी पर बैठने के समय गयासुद्दीन तुगलक का नाम धारण किया। गयासुद्दीन तुगलक के लड़के जूना खाँ ने बंगाल से दिल्ली पहुँचते ही एक नकली दुर्घटना में उसकी हत्या कर दी और मुहम्मदशाह तुगलक बनकर

1. हिस्ट्री ऑफ द राठौर (आशुतोष सिल्वर ज्युबिली बाल्युम-3)

दिल्ली का सुल्तान बना (ई० 1325-1351)। इसी ने अपनी सनक में देवगिरि को दौलताबाद नाम देकर दिल्ली की पूरी आबादी को वहाँ जाने पर मजबूर किया। 1351 ई० सिंध में बुखार से मर गया। संगीत चित्रकला से गहरी रूचि रखता था इसके शासनकाल में विभिन्न कलाओं की उन्नति हुई थी। अमीर उमर ने उसके चचेरे भाई फीरोज शाह को सुल्तान बनाया। फीरोज ने शिया और दूसरे मुसलमानों और हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किया। हिन्दु राजाओं खासकर कटेहर के राजा के ऊपर आक्रमण करके बड़ी संख्या में इन्हें गुलाम बनाया। 'बरनी-1' के अनुसार भारत में उस समय 1 लाख 80 हजार गुलाम थे। फीरोजशाह तुगलक के आखिरी समय में बंगाल सिंध और उड़ीसा अलग हो चुके थे। इसके मरते ही अमीर उमरा आपस में गद्दी के लिये लड़ने लगे।

12. जौनपुर की शर्की सल्तनत- 1402-1436 ईस्वी :

शर्की सल्तनत के पहले 1194 से बनारस जनपद से कन्नौज तक का क्षेत्र मुसलमानों के अधिपत्य का काल है। 1321 ईस्वी तक जौनपुर मोहम्मद गोरी के बाद उनके सरदार की तरह मनहेच शक्ति सिंह के अधीन था। "मार्कब दरवासी" के आलेख से पता लगता है 1321 में ही "गयासुद्दीन तुगलक" ने अपने लड़के "जफरखाँ" को मनहेच सिंह को हटाने के लिए भेजा। गयासुद्दीन के सूबेदार की हैसियत से जफरखाँ ने जफराबाद में (जौनपुर के निकटस्थ नगर) अपना शासन केन्द्र बनाया। उसके बाद "तातारखा" और "ऐनुलमुल्क" सूबेदार की तरह शासन करते रहे।

ई० 1394 के लगभग "ख्वाजा जहाँ" या "मलिकसरवर" द्वारा शर्की सल्तनत की नींव पड़ी। उसका उत्तक पुत्र मुबारक शहा ई० 1399 शर्की सुल्तान हुआ। ईस्वी 1405 में मुबारक शहा का छोटा भाई इब्राहिम शहा सुल्तान हुआ। इब्राहिम शहा ने ई० 1407 ई० से 1431 के बीच उत्तर बुलंदशहर और संभल, पूर्व में बंगाल, पश्चिम में काल्पि और ग्वालियर तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। सन् 1440 ई० तक का शर्की सल्तनत विस्तृत क्षेत्र पर हुकुमत कर रही थी और इस क्षेत्र की हिन्दू इमारतों/

मन्दिर आदि ध्वस्त होते रहे, साथ ही हिन्दुओं का बलात् धर्मपरिवर्तन भी चलता रहा। इन ध्वस्त होने वाले नगरों में बनारस का ध्वंस भी महत्वपूर्ण रहा। इब्राहिम शहा ने हिन्दू संस्कृति को ध्वस्त करने के साथ फारसी शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र जौनपुर को बनाया। फलतः फारसी शिक्षा और संस्कृति के क्षेत्र में जौनपुर हिन्दुस्तान का सिरताज कहलाने लगा। इब्राहिम शहा के बाद 20 वर्ष के लिए महमूद शाह सुल्तान बना और उसने भी उड़ीसा के सीमावर्ती प्रदेश तक शर्की सल्तनत की हुकुमत बनाकर रखा। इस काल में जौनपुर में कई मस्जिदें भी बनी।

1460 ईस्वी में शर्की सल्तनत मुहम्मद शाह के अधीन रही। पांच साल बाद ही इसकी मौत के बाद ई० 1465 में हुसैन शाह शर्की सुल्तान हुआ।

दिल्ली के सुल्तान बहलोल लोदी ने हुसैन शाह के कारनामों से नाराज होकर शर्की सल्तनत को जीत कर ई० 1480 के आस-पास अपने मुसाहिब मुबारक शाह लोहनी को सुबेदारी देकर शर्की सल्तनत समाप्त कर दी। बाबर के आक्रमण के समय जौनपुर का शासक नसीर खाँ लोहानी था। लोदी शासकों ने जौनपुर को ध्वस्त करके इसके स्थापत्य और वैभव को नष्ट कर दिया।

देश के अनेक क्षेत्रीय राजदरबारों जैसे गुजरात, ग्वालियर, कृष्णनगर आदि के समान जौनपुर में भी संगीत एवं वैशिक परम्परा को पूरा प्रोत्साहन और राज्याश्रय मिला। संगीत के क्षेत्र में जौनपुर के सुल्तानों में हुसैन शाह शर्की का नाम उल्लेखनीय है। नाचने गाने वालियों के साथ इसमें संगीतज्ञों और साहित्यकारों को भी राजकीय संरक्षण दिया और खुद भी संगीत का पूरा अध्ययन/अभ्यास कर परिपक्व संगीतज्ञ हो गया। परन्तु कट्टर धार्मिकता के नाम पर हुसैन शाह शर्की ने बहुत से कलाकारों को जबरदस्ती मुसलमान भी बना दिया। बनारस के हिन्दू स्थापत्य को नष्ट करने के साथ यह सुल्तान बनारस में अपने मनोविनोद के लिये भी आता था। अतः तत्कालीन बहुत से गाने, बजाने, नाचने वालों को यह अपने साथ जौनपुर ले जाता था, पूरी सुख सुविधा देता था और मुसलमान भी बना देता था।

अध्याय-2 (क) प्राचीन काल से 15वीं शताब्दी तक/69

दूर-दूर तक बिखरी विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों के विस्तृत अध्ययन के बाद हो सकता है कि उस काल के संगीतज्ञों/गाने, बजाने, नाचने वालों/वाली के नाम मिले, परन्तु अभी प्रमाणिक नाम उपलब्ध नहीं हुआ है। बनारस और जौनपुर की जनश्रुतियों के आधार पर बनारस की ही एक रूप सी गणिका इसकी प्रेयसी हो गई थी और उसका मुस्लिम नाम “मुबारक बांदी” था जो गाने के साथ चमत्कारी भावनृत्य भी करती थी।

ऐसा विवरण मिलता है कि इसी हुसैन शाह शर्की ने भारतीय संगीत में खयाल गायकी शुरू की। खयाल-कल्पना से विकसित करके, भावपूर्ण गायकी को खयाल कहते हैं। किसी काव्य की विषय वस्तु और भाव को कल्पना से अधिकाधिक व्यक्त किया जाय, इसे भी खयाल कहते हैं। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि गायन की और एक शैली “चौतकल” भी इसी हुसैन शाह शर्की की खोज है। चौतकल के स्थाई अंतरा, संचारी और आभोग में 12 ताल एक के बाद एक निश्चित क्रम से प्रयोग किये जाते हैं।

इसी ने सूफी गायकी के 12 समाँ भी बनाये जिनके नाम हैं-

(1) गौर समाँ, (2) मलार समाँ, (3) भोपाल समाँ, (4) गम्भीर समाँ, (5) हुहुसमाँ, (6) पूर्वी समाँ, (7) राम समाँ, (8) मेघ समाँ, (9) बसन्त समाँ, (10) बरारी समाँ, (11) किबराई समाँ, (12) गोंड समाँ।

इस पद्धति प्रयुक्त ‘समाँ’ आदि शब्द के ये अर्थ हैं-

समाँ- मंजर, नज्जारा या दृश्य

समाअ- सुनना (गाना, बजाना) वज्द करना- झूमना

मंजर- देखने की जहाँ तक सीमा (राग का दृश्य या सैरगाह बने वह समाँ)

हुसैन शर्की ने नये राग भी बनाये जिन्हें तोड़ी के प्रकार मानते हैं-

(1) आसावरी तोड़ी जो हुसैनी और आसावरी के नाम से प्रसिद्ध (2) रामातोड़ी (3) रसुली तोड़ी, (4) बहमली तोड़ी

जौनपुरी, जौनपुरी तोड़ी, सिंधु भैरवी, सिन्दूरा, हुसैनी तोड़ी, हुसैनी कान्हडा आदि। माना जाता है कि जौनपुर में संगीत के विकास में सूफी

रहस्यवादियों का भी प्रभाव रहा। ख्वाजा मोइनदीन चिश्ती का एक कथन प्रसिद्ध है “संगीत आत्मा का भोजन है।”¹

भारतीय संगीत में अमीर खुसरो के साथ हुसैन शाह शर्की का ऐतिहासिक महत्व है। साथ ही शेख बहाउद्दीन जकारिया का नाम भी महत्वपूर्ण है। बताते हैं कि उन्होंने मुल्तानी, पूरिया धनाश्री बनाने का श्रेय है। यह भी सूफी सम्प्रदाय के समाँ गायकी के विशेषज्ञ थे।

सूफी सम्प्रदाय की चिश्ती शाखा और प्रारम्भिक सुहरावर्दी शाखा दोनों जौनपुर समाँ और कव्वाली के विकास के लिए उल्लेख्य है। जौनपुर सल्तनत के जफराबाद में सुहरावर्दी रहस्यवादियों/सूफियों के मकदूम असद-उद्दीन आफताब-ए-हिन्द एवं सद्र-उद्-दीन चिराग-ए-हिन्द दोनों ने भारत में प्रारंभिक सूफी गायकी खास तौर से समाँ गाने की परम्परा को जौनपुर में दृढ़तापूर्वक जमा दिया। ये दोनों शेख-रूकन-उद्-दन के चेला तो थे ही साथ ही गुणी संगीतज्ञ भी थे। शेख-रूकन-उद्-दीन मुल्तानी शेख बहा-उद्-दीन जकारिया के पौत्र थे।²

जफराबाद (जौनपुर सल्तनत) में इसी काल में सुहरावर्दी शाखा के सूफियों का केन्द्र तो था ही। चिश्ती शाखा के सैयद अशरफ समनानी, हुसाम-उद्-दीन मानिकपुरी शेख बरि-हक्-कामी, शेख-उद्-दीन चिश्ती और आधन चिश्ती ने भी तत्कालीन संगीत में अपना प्रभाव स्थापित किया। फलतः बनारस में संगीतज्ञों में भी यह प्रभाव आया।

जौनपुर से बनारस में कव्वाली गाने का जो परम्परा आई वह कालांतर में बनारस के दो-तीन अलग-अलग मुहल्लों में अखाड़े के रूप में जम गयी। जैसे-

- (1) आज का मदनपुरा
- (2) रेवड़ी तालाब
- (3) कोयला बाजार

-
1. हबीबुल्ला हि स्ट्रगल फॉर एम्पायर
 2. जिल्द 1 पृष्ठ 8, 11, 12 तजल्लि-ए-नूर

अध्याय-2 (क) प्राचीन काल से 15वीं शताब्दी तक/71

(4) काशीपुरा

(5) चाहमामा

इन सभी ने सुहरावर्दी और चिश्ती दोनों शैलियों का निर्वाह करते हुए कौवाली, नात या नातिया, द्रुत खयाल गाने के साथ-साथ रूबाइयात, गजल और खमसा गायकी भी बनारसी रंग में ढाल दी। कुछ लोग ऐसा भी बताते हैं कि उनके साथ सादरा भी गाने का रिवाज आया।

जौनपुर सल्तनत के इतिहास में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि मिथिला के सुप्रसिद्ध कवि और गायक विद्यापति भी कुछ काल के लिए वहाँ रहे।

सन् 1950 के बाद से जौनपुर की वैशिक परम्परा, भाँडो की परम्परा और कवालों की परम्परा दुर्बल होती-होती अब लुप्त प्रायः है।

दिल्ली सल्तनत के इस काल में भारत से स्थल मार्ग से दूर-दूर तक व्यापारिक आवागमन होता रहा। इसका प्रमाण दिल्ली के सुल्तानों के ढेर के ढेर सिक्के फारस आदि मुस्लिम देशों में ही नहीं रूस की वोल्गा नदी के तट तक पाये गये। जलमार्ग से भी भारत से सूती कपड़े, रेशम, हथियार, आभूषण, सोने-चाँदी, ताँबा और पीतल के बर्तनों के साथ चीनी और नमक भी जल और स्थल मार्ग से विदेश भेजा जाता। नारियल और उसकी जंटाओं से बनी रस्सियाँ और दास-दासियों का भी व्यापार होता था। इन दास-दासियों में गाने, बजाने नाचने वाली दास-दासिया दूसरे देशों में जाकर बहुत महंगे दामों में बिकती। भारतीय दस्ताकारी का भी निर्यात अलग-अलग देशों से होता था।

इसी मध्य काल को कुट्टनीमतम्, क्षेमेन्द्र की रचना, समय मातृका का देवदासी और वैशिक विवरणों को प्रस्तुत करते हैं। तत्कालीन सुंदरियों और नर्तकियों का विवरण अन्य स्थानों की साथ काशी के अंतःपुरों की शोभा थी।¹ वैजयंती के अनुसार राजगृह में विभिन्न कलाओं में प्रवीण गणिकाओं का राजाओं की प्रिया होने का उल्लेख है।² वेश्याओं की गलियों में घूमते

1. स्वयंभू पउमचरित, संपा0 एच0सी भयाणी, सिंधी और जैन ग्रंथमाला, 49, 8

2. भारतीय विद्या खण्ड 17 भाग-3, पृष्ठ 130-146, 106, 31, 34, 3

सामंत इन सुसंस्कृत गाणिकाओं की गान विद्या, वाक्पटुता इत्यादि का रसावादन करते थे।¹ वेश्याओं तथा नगर वधुओं के निवासों का जीवन अनेक संस्कृत ग्रंथों में वर्णित है।²

प्राचीन काल से 1540 ई० तक संगीत की स्थिति निगमागम काल में संगीत की स्थिति पर विचार करें स्वरों की योजना उदात्त अनुदात्त स्वारित स्वरों से सात स्वरों की नींव पड़ चुकी थी। मार्गी संगीत के साथ देशी संगीत के अंतर्गत लौकिक संगीत को भी प्राधान्य मिलने लगा था पौराणिक काल तक देशी संगीत का रूप और अधिक विकसित हो चुका था। बौद्ध जैन काल में संगीत जीवन का आवश्यक अंग मनोरंजन के लिये था ही साथ-साथ वैशिक परम्परा भी सुदृढ़ रूप धारण कर चुकी थी। उस समय बनारस में भी यह लौकिक परम्परा वैशिक परम्परा के रूप में विकसित थी। अश्वघोष के सौंदरानन्द में काशी की वेश्या का उल्लेख इसे प्रमाणित करता है।

परवर्ती काल में राजा महाराजाओं ने इस विद्या का प्रश्रय देकर इसके उत्थान में सहयोग दिया। कल्हण की राजतरंगिणी में उल्लेख है कल्हण के चाचा आचार्य कनक राजा हर्ष की मृत्यु के बाद बनारस में आकर रहे जिन्होंने राजा हर्ष को अपनी गान विद्या से प्रसन्न किया था अर्थात् वे गुणी, गान विद्या में कुशल गायक थे। बनारस में उनके रहने से यह प्रतीत होता है कि उस समय बनारस अपने संगीत के लिये अवश्य प्रसिद्ध रहा होगा।

संगीत के क्रियापक्ष और शास्त्र पक्ष दोनों का विकास उस समय तक अवश्य रहा होगा।

रनिवासों में संगीत गूंजता था। उस समय का संगीतज्ञ क्रिया पक्ष और शास्त्र पक्ष दोनों में प्रकांड पंडित था। उस समय तक संगीत के ग्रंथ भरत नाट्य शास्त्र, दत्तिल का दत्तिलम्, मतंग का बृहदेशी, शारंगदेव का संगीत

1. पुष्पनन्दन, नायकुमार- चरित, संपादित हीरालाल जैन (कारजा जैन सीरीज) पृ० 48-49

2. चतुरभांगि (शृंगार हार) संपादित वासुदेव शरण अग्रवाल तथा मोनीचंद बंबई- 1959

रत्नाकर आदि अनेक शास्त्र ग्रंथों की रचनायें हो चुकी थी। अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में अमीर खुसरों भारतीय संगीत से बहुत प्रभावित थे। उनके लिए कहा जाता है ईरानी भारतीय संगीत के मिश्रण से उन्होंने नये राग, नये तालों की रचना की, नई शैलियों कव्वाली जैसे उसको प्रचलित किया। इसी काल से सूफी विचारों को लोकभाषा में व्यक्त करने वाले शेख मुइनउद्दीन चिस्ती जैसे भक्त गायकों ने भी भारतीय संगीत को अपनाया। तुगलक काल में भी संगीत की प्रगति हुई। मुहम्मद तुगलक कलाकारों का आदर करता था। कहा जाता है उसके दरबार में बारह सौ गायक थे। लोदी शासन में भी मुसलमान कलाकारों द्वारा संगीत की प्रगति हुई। इन सबका बनारस में समय-समय पर आगमन होता था अतः बनारस का संगीत भी उससे प्रभावित हुये बिना नहीं रहा लेकिन बनारस की यह विशेषता कि बनारस ने कलाकार, साहित्यकार सबको बनारसी रंग में रंगकर पूरे विश्व में बनारसीपन का झंडा फहराया।



(ख) 16वीं शताब्दी से स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनारस

विश्व की प्राचीनतम नगरी होने के साथ व्यापारिक केन्द्र होने के कारण बनारस में राजनैतिक अस्थिरता हमेशा बनी रही। मुगल बादशाहों, अवध के सूबदारों, ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी सभी ने बनारस को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। इसके प्रमाण हमें इतिहास की पुस्तकों एवं यात्रियों के विवरण द्वारा प्राप्त होते हैं।

मुगल बादशाह बाबर 1526 से 1530 ई. तक मुगल सल्तनत का दिल्ली में पहला बादशाह हुआ। 1528-29 ईस्वी में अवध पर अधिकार करने के साथ बनारस पर कब्जा करके जलालुद्दीन खाँ शर्की को यहाँ का प्रशासक नियुक्त किया।

1529 ईस्वी में बिहार में स्थित शाहबाद की तरफ से शेर खाँ अफगान ने बनारस पर हमला किया जिससे जलालुद्दीन बनारस छोड़ कर भाग गया। अफगान फौज चुनार तक पहुँच गई लेकिन बाबर ने उन्हें भगाकर 5 मार्च, 1529 ईस्वी को बनारस और 23 मार्च को चुनार पर पुनः अपना कब्जा कायम किया।

1530 ईस्वी में बाबर के बाद हुमायूँ दिल्ली का बादशाह बना। हुमायूँ फारसी साहित्य का विद्वान और प्रेमी था। लड़ाई के मैदान में बहादुर, नेतृत्व करने में प्रवीण था। उसने अपने दरबारियों को तीन भागों में बाँटा था।

(1) वजीर

(2) उलेमा

(3) कलाकार, शायर, गायक, वादक, नर्तक आदि। इसके समय में साहित्य, ललित कला और संगीत को राज्याश्रय मिला था और इन क्षेत्रों में उन्नति हुई थी।

हुमायूँ ने बंगाल पर भी धावा बोला था। बंगाल में हुमायूँ आमोद-प्रमोद में व्यस्त था तभी शेरशाह ने बनारस पर हमला करके मुगल सिपाहियों का कत्ल करना शुरू किया। उस समय बनारस का फौजदार मीर फजली था।¹ वह इस हमले से भाग गया। लगभग 16 वर्ष बनारस शहर व जनपद शेरशाह व उसके पुत्र के अधीन रहा।

शेरशाह के बनारस और कनौज के कब्जे की खबर सुनकर हुमायूँ अपनी फौज के साथ बनारस जीतने के लिये लौट आया। बनारस में सारनाथ के पास एक स्मारक बना है, कहते हैं कि हारे हुये हुमायूँ ने अकेले एक रात वहीं किसी कुटिया में बिताई थी।

शेरशाह ने हुमायूँ को परास्त किया। उसी के समय आज की ग्रैंड ट्रंक रोड का जीर्णोद्धार हुआ और पूरे बनारस जनपद में भी ग्रैंड ट्रंक रोड के किनारे सराँय, और पीने के लिये पानी के कुएँ बनवाये गये। इस 16 वर्ष के काल में बनारस में शांति बनी रही।

1556 ईस्वी में बनारस आदिलशाह के कब्जे में था। अकबर को भी खानजमा से 1559 ईस्वी में युद्ध जीतकर बनारस को मुगल सल्तनत में मिलाना पड़ा। 1564 तक आदिलशाह के फौजी यहाँ आतंक फैलाते रहे। 1567 ईस्वी में खानजमा को मारने के बाद बनारस में शांति हुई। अकबर फिर यहाँ आया और उसने अफगानों का साथ देने के कारण बनारस को लूट लेने का फरमान जारी किया। लूटने के बाद बनारस को जौनपुर, गाजीपुर और मिर्जापुर का एक सूबा बनाकर खानखाना मुनीम खाँ के सुपुर्द कर दिया।

1. ईलियट, भाग 4, पृ. 19.

अकबर स्थापत्य, साहित्य, संगीत सभी का पोषक और चतुर राजनीतिज्ञ था। इसके काल में साहित्य व संगीत को पूरा प्रोत्साहन मिला था। उसके दरबार के नवरत्नों में तानसेन का नाम मिलता है। लेखक सुशील कुमार चौबे के अनुसार तानसेन बनारस के मिश्र परिवार के थे।¹ इसी काल में बनारस में महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी का प्रभाव व्याप्त हो गया था। संगीत को भक्ति मार्ग का प्रश्रय मिला था। राग-रागिनियों में पद गाने की परम्परा पुष्ट हो गई थी। अकबर की तानसेन के साथ स्वामी हरिदास से मुलाकात इतिहास प्रसिद्ध घटना है।

अकबर के बनारस आने के उल्लेख मिलते हैं। 1574 ईस्वी में बंगाल जीतने की नीयत से अकबर ने फिर मार्ग में तीन दिन बनारस में विश्राम किया।² जौनपुर, बनारस और चुनार के प्रबंध की व्यवस्था भी अकबर ने स्वयं संभाली थी।³ इसी कालखण्ड में बनारस के विख्यात पंडित नारायण भट्ट ने राजा टोडरमल के पुत्र गोवर्धन के सहयोग से शिवुपर में दौपदी कुण्ड का निर्माण करवाया था। 1528 ईस्वी के आसपास विश्वनाथ मन्दिर का भी पुनर्निर्माण हुआ था। टोडरमल और गोवर्धन के प्रयास से बनारस में मंदिरों की पुनर्स्थापना की शृंखला चल पड़ी वह जहांगीर तक चली। अकबर के ही शासनकाल में बनारस में प्राचीन श्मशान घाट 'हरिश्चन्द्र घाट' के पास कुमारस्वामी मठ की स्थापना हुई।

अकबर की मृत्यु के बाद 1605 ईस्वी में जहांगीर मुगल सम्राट हुआ। इकबाल-नाम-ए-जहांगीरी में उसके दरबार के छः प्रसिद्ध गायक जहांगीर दाद, छत्र, खां, परवेजद, खुर्रमदाद भक्खू और महजद नाम मिलते हैं। गोस्वामी श्री विठ्ठलनाथ जी का नाम भी जहांगीर के समय मिलता है। अष्टछाप के गोविन्द स्वामी उच्चकोटि के गायक थे। तानसेन इनका गाना सुनने जाते थे। तानसेन ने कुछ पद भी इनसे सीखे थे।⁴

-
1. संगीत घरानों की चर्चा, सुशील कुमार चौबे.
 2. ईलियट, भाग 5, पृ. 375.
 3. बंदायुनी, भाग 4, पृ. 185.
 4. वैष्णवन की वार्ता साहित्य.

जहांगीर जब मुगल सम्राट हुआ उस समय उसने अपने दरबारी आगानूर को बनारस भेजा। आगानूर ने बनारस और जौनपुर में बहुत अत्याचार किये। अतः उस समय अनेक व्यापारी विद्वान, पंडित, संगीतज्ञ, कोठेवालिवाँ, बनारस और जौनपुर छोड़कर दूसरी जगह भाग गये।

अंग्रेज यात्री राल फिंच 1583-91 के बीच भारत आया था। उसने तत्कालीन बनारस का प्रामाणिक एवं सचित्र चित्रण किया है। उस समय बनारस का विश्वनाथ मंदिर प्रमुख धार्मिक स्थल था। बनारस के विद्वान वरदराज 1600-1660 ई. तक रहे। गीर्वाण-पद-मंजरी नामक इनके ग्रंथ में दूधविनायक, भैरवनाथ, पंचगंगा, मानसरोवर आदि मुहल्लों का और 25 पक्के घाटों का उल्लेख मिलता है।

शाहजहाँ के समय बनारस के राजनीतिक इतिहास के बारे में अधिक जानकारी नहीं मिलती इनके दरबार में भी निपुण संगीतज्ञ एवं नर्तकियाँ थी। लाल खाँ को गुणसमुन्दर की उपाधि मिली थी।

शाहजहाँ ने बनारस के पंडित कवीन्द्राचार्य के प्रभाव से बनारस आने वाले यात्रियों का कर हटा दिया था। बनारस के तत्कालीन पंडितराज जगन्नाथ से तो सभी लोग सुपरिचित हैं।

औरंगजेब अपने पिता शाहजहाँ को गद्दी से हटाकर मुगल बादशाह बना। औरंगजेब के समय मुगल दरबार में नाच-गाना वर्जित था लेकिन अमीर उमरा और रईसों के यहाँ गान-बजाने की महफिलें सजती रहीं। बहुत से मुसलमानों ने अरबी, फारसी, उर्दू में संगीत पर पुस्तकें लिखी। औरंगजेब का काश्मीर का सुबेदार फकीरुल्लाह के लेख के अनुसार औरंगजेब के दरबार से संगीत बहिष्कृत नहीं हुआ था। फकीरुल्लाह ने 'मानकुतूहल' का फारसी अनुवाद किया उसका नाम 'रागदर्पण' है। रागदर्पण में बहुत से गाने-बजाने वालों का दरबार में होने का विवरण मिलता है। उनके अनुसार पुरुषनयन और सुखीसेन औरंगजेब के कृपा पात्र थे। फकीरुल्लाह के ही अनुसार मानसिंह तोमर आधुनिक ध्रुपद गायकी का जन्मदाता माना जाता है।

औरंगजेब के समय बनारस काफी तहस-नहस हुआ था। उसी समय

टोडरमल का बनवाया विश्वनाथ मंदिर का कुछ भाग गिराकर ज्ञानवापी की मस्जिद बनी थी। पंचगंगा घाट का बिन्धुमाधव का मन्दिर गिराकर मस्जिदें बनी। बनारस में पाठशाला गिराने और संस्कृत शिक्षा पर रोक लगाने के फरमान जारी किये थे।¹

शाहजहाँ का बड़ा लड़का दाराशिकोह बनारस के ख्याति प्राप्त विद्वान औरंगाबाद निवासी त्रिपाठी से संस्कृत पढ़ता था। संस्कृत के प्रेम ने बनारस में जो कुछ सांस्कृतिक वातावरण बनाया था वह औरंगजेब के समय बिगड़ गया। दारा का लड़का सुलेमान बनारस में दारा नगर मुहल्ले में रहता था। दारा की पराजय के बाद उसे बनारस छोड़ना पड़ा। मौका देखकर औरंगजेब के दूसरे भाई शूजा ने बनारस पर कब्जा कर लिया। बनारस के किलेदार को भगा दिया और बनारस के साहुकारों और व्यापारियों से उधार के नाम पर 3 लाख रुपया वसूल लिया। यह घटना बनारस के उस समय के वैभव को बताती है।

तावर्नियर और बर्नियर के विवरण से मुगल अधिकारियों की कर वसूली और बदइंतजामी के बारे में जानकारी मिलती है। दोनों ही यात्री अलग-अलग आये थे। उनके समय में भी बनारस शहर सुव्यवस्थित और पक्के भवनों से परिपूर्ण था। यहाँ पुस्तकालय और बहुत सारी पाठशालायें भी थीं जिनमें विद्यार्थी निःशुल्क विधोपार्जन करते थे। नगर के धनाढ्यों द्वारा नित्य भोजन मिलता था। हौज साहब ने भी 18वीं शती के बनारस का सुन्दर वर्णन किया है।² औरंगजेब की कुदृष्टि से बनारस में बहुत थोड़े से मन्दिर और पाठशालायें ध्वस्त होने से बच गई जिसमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पास कंदवा गाँव का कर्दमेश्वर मंदिर और पुष्करिणी है। औरंगजेब ने संगीत और वेश्यावृत्ति पर रोक लगा दी थी।

जहांदार शाह के 10 महीने की बादशाहत उसके रागरंग और ऐयाशी की कहानी है। उसके शासनकाल में व्याभिचार और हिंसा व्यापक थी। इसके दरबार में भांडू, नट, गाने नाचनेवालियाँ का ही बोलबाला था। बेगमों

1. सरकार औरंगजेब, भाग 3, पृ. 289.

2. हौज ट्रेवल्स इन इण्डिया-1780-83 ई., पृ. 61.

से भी अधिक 51 वर्षी जहांदार शाह लालकुमारी नामक एक तवायफ पर आशिक था।

28 सितंबर, 1719 के दिन सैयद भाइयों की इच्छा के अनुसार मोहम्मद शाह रौशन अख्तर मुगल बादशाह बना। इतिहास इसको “मोहम्मद शाह रंगीले” के नाम से जानता है। इसके 29 साल के इतिहास में महफिलें, शराब के साथ रंगरेलियाँ ही इसकी जिंदगी थी। फलतः इसके दरबार में गाने, बजाने, नाचने को पूरा प्रश्रय मिला और उसकी तरक्की भी हुई। इस बीच दिखाने के लिये मुगल सल्तनत बनी रही। अवध अजमेर, जोधपुर दक्षिण के निजाम-उल-मुल्क आदि सुबेदार और राजा बादशाह मोहम्मद शाह को बख्त बेवख्त नजराना भेंट करते रहे और बादशाह की तरह इसकी इज्जत करते रहे।

21 साल की उम्र में आदमशाह दिल्ली की मुगल तख्त पर बैठा। इसने अपनी जिन्दगी हरम और ऐयाशी में गुजार दी। बीच-बीच में अनेक छोटे-बड़े बादशाह बनते गये और ऐयाशी में नष्ट होते गये।

1758 व 1761 में दिल्ली में नजीबुद्दौला की तानाशाही चल रही थी। कलकत्ते को केन्द्र बनाकर अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी भारत में फैलती जा रही थी। 20 मार्च 1761 को अहमदशाह अब्दाली ने शाहआलम द्वितीय को मुगल बादशाह घोषित किया। इसकी जिन्दगी तकलीफों से गुजरी। 1836 में वह मर गया। शाहआलम द्वितीय का लड़का बहादुरशाह जफर द्वितीय नाममात्र का मुगल बादशाह बना। 1857 के गदर के बाद अंग्रेजों ने इसे रंगून भेज दिया। इसी के साथ मुगल सल्तनत समाप्त हुई।

मुगल काल में संगीत की प्रगति

मुगल काल में करीब-करीब सभी बादशाह संगीतप्रेमी थें। वे ऐयाशी थे। अतः अपने दरबार में मनोरंजन हेतु गायन, वादन और नृत्य का प्रदर्शन करवाते थे। बाबर के लिये प्रसिद्ध है कि वह अपनी यात्राओं में गान गोष्ठियों का आयोजन करता था। अबुल फजल ने अपने आइने अकबरी में लिखा है- “बादशाह सलामत संगीत पर बहुत ध्यान देते हैं, उन सभी लोगों को संरक्षण देते हैं जो संगीत में निष्णात होते हैं। उनके दरबार में सैकड़ों

गायक हैं जो हिन्दू, ईरानी, तुरानी, काश्मीरी आदि जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों ही सम्मिलित हैं। उनके दरबार में गायकों को सात भागों में विभाजित किया था जिनमें सप्ताह का एक दिन प्रत्येक के लिये विभाजित किया था।¹ खैराबाद के जुड़वा भाई दिवाकर और सुधाकर थे। 16वीं शताब्दी के आसपास यह सुप्रसिद्ध ख्वाल गायक थे। उनकी गायन-शैली खैराबादी नाम से जानी जाती थी। ग्वालियर दरबार में पहुँचने तक इनका मुसलमानी नाम चांद खाँ और सूरज खाँ हो गया। आइने अकबरी में अकबर के दरबारी गवैयों के रूप में इनका उल्लेख है। अबुल फजल ने अकबर के दरबार में छत्तीस प्रमुख संगीतकारों की सूची भी दी है और साथ में उनकी विशेषता भी बताई है।² छत्तीस गायकों में तानसेन, रामदास, सुभान खाँ, सुरजान खाँ, मिया चांद, विचित्र खाँ, वीरमंदर खाँ, सरोद खाँ, मिया लाल खाँ, चांद खाँ, शहाब खाँ काफी लोकप्रिय संगीतज्ञ थे। अबुल फजल ने आइने अकबरी में कहा है कि हजार वर्षों में तानसेन जैसा कोई गायक नहीं हुआ।³ अकबर के दरबार में आने के पूर्व तानसेन रीवा नरेश राजा रामचन्द्र के दरबार में था। अकबर ने उसे अपने दरबार के लिए माँग लिया। अकबर ने तानसेन को “कण्ठाभरण वाणी विलास” की उपाधि दी थी। मिया की टोड़ी, मिया की मल्हार, मिया की सारंग, दरबारी कान्हड़ा के रचयिता तानसेन, रामदासी मल्हार, के रामदास चरजू की मल्हार के चरजू, सूरदासी मल्हार के सूरदास, बख्शु ध्रुपद शैली के गायक तथा बहादुरी तोड़ी, नायकी कल्याण, नायकी कान्हड़ा इन सब रागों की रचना अकबर कालीन संगीतज्ञों द्वारा हुई। अबुल फजल ने लिखा है सोलहवीं शताब्दी में सुजात खाँ के पुत्र बायजीद (बाजबहादुर) कुशल संगीतकार की 1571 ई. में अपने दरबार में प्रमुख कलाकारों में गणना थी। अकबर के दरबार में ग्रंथ “रागसागर” का निर्माण हुआ था उसमें मेल पद्धति व रागों के ध्यान दिये हैं।⁴ अकबर के

-
1. अबुल फजल की आइने अकबरी, पृ. 681.
 2. वही, पृ. 681-682.
 3. वही, पृ. 681.
 4. मुगल कालीन भारत, हरिश्चन्द्र वर्मा, पृ. 527.

अध्याय-2 (ख) 16वीं शताब्दी से स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनारस/81

काल में वृन्दावन में स्वामी हरिदास भी भगवान की संगीत द्वारा उपासना करते थे जिनका गायन सुनने अकबर तानसेन के साथ इनकी कुटिया पर गये थे ऐसा उल्लेख भी पुस्तकों में मिलता है।

जहांगीर संगीत प्रेमी था। इसके दरबार में गुणियों को मान-सम्मान व उपाधियाँ प्रदान की गई थी। तानसेन के छोटे पुत्र विलास खाँ तथा अन्य छत्तर खाँ, खुर्रमदार, मक्खु, हमजान इनके दरबार के प्रसिद्ध कलाकारों में थे। शौकी नामक गज़ल गायक को “आनन्द खाँ” की उपाधि दी थी।¹ विलियम फिच ने लिखा है- “सैकड़ों गायक एवं नर्तकियाँ रात-दिन दरबार में उपस्थित रहते थे क्योंकि अपनी बारी के अनुसार वे सप्ताह में कई बार नाचा, गाया करते थे। वे सम्राट या बेगमों को गाना सुनाने के लिये सदैव तैयार रहते थे। चाहे उन्हें किसी भी समय गाना सुनाने के लिए महल में बुला लिया जाय।” जहांगीर ने बख्तावर कलावन्त को मुक्तामाला, दस हजार रुपये इनाम में दिये थे। बख्तावर इब्राहिम आदिलशाह के बनाये ध्रुपद जिसके ग्रंथ नाम ‘नवरस’ है, बादशाह को सुनाया करता था।² उस्ताद मुहम्मद नाई को रुपयों से तुलवाया था, हौदे सहित हाथी दिया था जिस पर बैठकर रुपये दायें-बायें लुटाता अपने डेरा चला जाये।³ इसने बादशाह के नाम कई राग-रागिनियों में गज़लें बनाई भी तथा गाई भी। जहांगीर के समय में वैष्णव संप्रदाय के गो. विठ्ठलनाथ जी के अष्टछाप के गोविन्द स्वामी बहुत उच्चकोटि के गायक थे जिनका गाना सुनने कभी-कभी तानसेन भी जाते थे।

शाहजहाँ अत्यन्त रसिक, संगीत मर्मज्ञ एवं संगीत प्रेमी बादशाह था। प्रतिदिन अंतःपुर में साढ़े आठ से दस बजे तक संगीत का आनन्द लेता था। इनके दरबार में भी निपुण संगीतज्ञ एवं नर्तकियाँ थीं। तानसेन के पुत्र विलास खाँ के दामाद लाल खाँ को “गुणसमुन्दर” की उपाधि दी थी। अपने दीवाने खास और शयनकक्ष में उच्चकोटि के संगीतज्ञों के संगीत का

1. जहांगीर नामा, पृ. 396.

2. जहांगीर नामा मुंशीदेवी प्रसाद कृत संपादक.

संशोधक डॉ. रघुवीर सिंह, पृ. 129 जलूली सन् नवाँ.

3. वही जलूली सन् बारहवाँ.

रसास्वादन करता था। इनके दरबार में खुशहाल खाँ, विसराम खाँ, जगन्नाथ पंडित इन संगीतज्ञों के नाम मिलते हैं। जगन्नाथ पंडित के लिये कहा जाता है कि काशी में उस समय एक व्यक्ति पंडितराज था जिसे पंडितराज जगन्नाथ कहा जाता है।

पंडितराज जगन्नाथ मुगलदरबार में शाहजहाँ के द्वारा अपने काव्यपाठ और संगीत के चमत्कार से पूरी तरह समाहित हुये थे। इन्हें धन सम्पत्ति और सम्मान के साथ शाहजहाँ ने मुगल शहजादी को भी पत्नी के रूप में दिया था। संस्कृत के अद्वितीय विद्वान होने के साथ-साथ उच्चकोटि के संगीतज्ञ भी थे। बनारस में ही पंचगंगा घाट की सीढ़ियों के ऊपर इनके और इनकी यवनी पत्नी के महाप्रयाण की कथा इतिहास प्रसिद्ध मर्मस्पर्शी घटना है। बनारस में पाण्डित्य और संगीत साथ-साथ रहने की परम्परा निरन्तर रही है और आज भी है।

औरंगजेब के लिये यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने संगीत को वाद्य यन्त्रों को दफनाने का आदेश दिया था। औरंगजेब के लिये मुस्ताइद खाँ ने लिखा है कि- “सम्राट के दरबार में अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ थे और कभी-कभी वह उनका गाना-बजाना सुनता था।” सम्राट बनने के प्रारंभिक काल में उसे संगीत से प्रेम रहा हो लेकिन संभवतः प्रजा ऐयाश न बने इसके लिये उसने मना किया हो। अंतःपुर में गाना-बजाना चलता ही था। फकीरुल्लाह ने औरंगजेब को ही समर्पित करने के लिये ‘रागदर्पण’ नामक ग्रन्थ मानकुतूहल के अनुवाद के रूप में किया था। इनके समय में खुशहाल खाँ, पुरूसनैन, (पुष्पनैन) विसराम खाँ, रसबैन खाँ, हयात सरससैन, सुखीसेन इन कलाकारों के नाम मिलते हैं। इनके काल में अनेक पुस्तकों की रचनायें हुईं जिनकी पाण्डुलिपि अभी विभिन्न पुस्तकालयों में मिलती है।

मुगल दरबार और तत्कालीन भारत के अनेक सामंत और राजाओं के यहाँ भारतीय संगीत की समृद्धि बनी रही। मन्दिर, महलों और हवेलियों के द्वार पर नौबतखाने की प्राचीन परम्परा चलती रही। उत्तर भारत में नौबतखानों में शहनाई और दक्षिण भारत में नागस्वरम् समान रूप से बजते रहे। महाराष्ट्र और गुजरात में सुन्दरी वादन की परम्परा बनी। मुसलमानों की विशेष

अभिरूचि नक्कारे में रही है और नक्कार खाने भी संगीत की विधा से सुशोभित किया। प्रादेशिक लोक संगीत का भी अस्तित्व पूरे देश में बना रहा। इसी कालखण्ड में पूरे देश में अलग-अलग सम्प्रदायों की कीर्तन परम्परा बहुत पुष्ट और लोकप्रिय हुई।

सूफियों की शाखाओं में भी नात और कव्वाली के साथ भारतीय संगीत का रंग चढ़ गया। अकबर के विश्वस्त अबुल फजल के अनुसार उस समय के विभिन्न गायकों, वादकों के प्रामाणिक नाम और विवरण मिलते हैं।

सत्रहवीं ईस्वी में बीजापुर का सुल्तान आदिलशाह द्वितीय स्वयं काव्य और संगीत में रुचि रखता था। इसकी रचनायें किताब-ए-नवरस में संकलित हैं। यह सभी रचनायें विभिन्न रागों में निबद्ध हैं और उसके दरबार में संगीत फूलता-फलता रहा।

इतिहास के कुछ जानकार बाज बहादुर को बहादुरी तोड़ी का जनक मानते हैं।

तन्ना मिश्र या तानसेन की बहुत रचनायें आज भी उपलब्ध हैं। जिनका “हियहुलास” नाम का ग्रंथ बम्बई के व्यंकटेश्वर छापाखाना द्वारा राग रत्नाकर नामक ग्रंथ में प्रकाशित है। हरिदास स्वामी के भी कुछ ग्रंथ मिलते हैं। अष्टयाम कीर्तनकारों की रचनायें तो सहज सुलभ हैं हीं। हित हरिवंश आदि दूसरे संगीतज्ञों के रचनाओं के संग्रह यत्र-तत्र उपलब्ध हैं अन्य सन्तों की रचनाओं के बारे में विवरण संतों के अध्याय में दिया गया है।

पंजाब से अफ़ग़ानिस्तान तक फैले फकीरों की एक जमात शाह तखल्लुस के साथ और दूसरी साई के नाम से रही है। यह सभी भारतीय संगीत के विद्वान थे और इनकी रचनाओं को गाने की परम्परा बनारस में रही है। बनारस के संगीतज्ञों के कथानुसार और वैष्णवन् की वार्ता के उल्लेख के अनुसार अकबर के काल में टप्पा एक स्वतंत्र अविकसित गायन शैली थी। बनारस में इसका श्रेय गुलाबनबी शाह नामक फकीर को देते हैं जिन्होंने अपनी प्रेयसी शोरी के लिये अपनी रचनायें गाईं। अलग-अलग राग-रागनियों में बनारस में टप्पा गाने की परम्परा आज भी सुरक्षित है।

ख्याल, राजस्थान और आसपास के प्रदेश का लोकगीत भी रहा है। अमीर खुसरो के साथ जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की को भी ख्याल गायकी का जनक मानते हैं। बैजू बावरा, तानसेन आदि की सभी रचनाओं में 'तान' शब्द का उल्लेख बहुलता से मिलता है। इससे ऐसा निष्कर्ष उचित होगा कि गाने-बजाने में तान पहले से अस्तित्व में रही। उसकी प्रयोग कैसे करते थे यह आज ज्ञात नहीं है।

मुगल सम्राट महम्मशाह रंगीले के समय तो तान, तुर्की, खटका, जमजमा, गिटकिड़ी गमक इत्यादि से सजे हुये ख्याल गायन के विशेषज्ञ संस्थापक सदारंग और अदारंग का ऐतिहासिक उल्लेख है ही। सदारंग और अदारंग के नाम के साथ बनारस के विख्यात संगीतकार प्रसिद्ध जी और मनोहर जी का भी नाम जुड़ा है। पं. कुबेरनाथ सुकुल के बनारस का इतिहास ग्रंथ में सदारंग और अदारंग को बनारस का ही बताया गया है।

उस समय के दरबारी गाने-बजाने वालों के नाम नूर खाँ, लाद खाँ, प्यारे खाँ, जानी, गुलाम रसूल, शकूर, मक्खन, मिठु, महम्मद खाँ, छज्जू खाँ, उमराव खाँ, मेढ़ोबाई, खुशाल खाँ आदि मिलते हैं।

प्राचीन ऐतिहासिक काल से बनारस सगीत, वीणावादन एवं वैशिक परम्परा का केन्द्र रहा है। अल्वरूनी ने भी बनारस के वैभव और प्रमुख विद्या केन्द्र की खुले दिल से प्रशंसा की है। बनारस की परम्परा में सारंगी के आदि आचार्य के रूप में रावण को मानते हैं और सितार को नारदीय वीणा का परिष्कृत रूप मानते हैं। प्राचीन परम्परा के अनुसार सितार पर कृति और गति बजाकर वीणा के समान रागदारी बजाने की परम्परा रही है। उत्तर मुगलकाल में उस्ताद मसीत खाँ ने मसीत खानी और रजा खाँ ने इनका नामकरण 'गत' किया। आज भी सभी सितारिया मसीत खानी और रजाखानी गत बजाने वाले ही हैं। बनारस में भी इस परम्परा का निर्वाह होता है प्राचीन शैली की कृति और गति तालानुसार अलग-अलग छन्दों में बजाने की परम्परा अभी भी बची है।

नादविनोद नाम का एक ग्रंथ 1893 ई. में प्रकाशित हुआ जिसके लेखक गोस्वामी पन्नालाल जी ने अपनी पूर्वजों की प्राचीन परम्परा का

अध्याय-2 (ख) 16वीं शताब्दी से स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनारस/85

विवरण दिया है। हुमायूँ के काल से ब्रिटिश हुकुमत के समय तक इस घराने के संगीतज्ञ वैष्णव भक्ति से और मुगल दरबार से समाहित हैं।

अवध के नवाब

छिन्न-भिन्न हो रही मुगल सल्तनत के प्रादेशिक सूबेदारों ने कुछ हद तक सत्ता अपने हाथ में कर लिया था। दिल्ली के आखिरी मुगलबादशाहों को सालाना नजराना इत्यादि यह प्रादेशिक शासक देते रहते थे, परन्तु इनका अपना प्रादेशिक प्रभाव पूरी प्रभुसत्ता के समान ही बन गया था। इसके साथ ही इनके दरबार की शान-ओ-शौकत शाही दरबार से कम नहीं रह गई थी। इतिहास के इसी सिलसिले में मुगलों के आगरा और दिल्ली दरबार के मुकाबले लखनऊ में अवध के नवाबों के संरक्षण में एक नई संस्कृति, तहजीब और रियासत का जन्म हुआ।

लखनऊ आने के पहले कुछ समय तक अयोध्या और फैजाबाद में नवाब लोग रहे। अयोध्या से लक्ष्मण घाट से थोड़ी दूर, पहले नवाब ने कच्चा किला बनवाया, इतिहास में इसका नाम “किला मुबारक” मिलता है। 1775 से 1778 तक अयोध्या से फैजाबाद के क्षेत्र में रहकर ही नवाब साहब सआदत खाँ पूरे सूबे का शासन करते रहे। इनके समय में अवध की आमदनी 70 लाख रुपये से 1 करोड़ 7 लाख हो गई थी। साथ ही पूरे सूबे में इन्होंने सुव्यवस्था और शान्ति कायम की। फलतः दिल्ली दरबार से इन्हें “बुरहान मुल्क” की उपाधि प्राप्त हुई।¹

नवाब सआदत अली के बाद मिर्जा अबुल मंसूर अली ने अवध की सूबेदारी की। मंसूर अली को मुगल बादशाह ने बहुत लम्बा खिताब्बी नाम दिया जिसके बाद से लोग इन्हें नवाब सफदरजंग कहने लगे। अयोध्या के पास अपने ससुर द्वारा बनवाई आबादी जिसका नाम बंगला था, उसी का नाम इन्होंने “फैजाबाद” रक्खा। फैजाबाद से बनारस आकर इसने हाथियों पर पुल बाँधकर गंगा पार की और चुनार पहुँच गया।

बनारस के राजा बलवंत सिंह आज के पूरे बनारस जनपद को अपनी

1. फैजाबाद गजेटियर, पृ. 45.

पूरी रियासत बनाना चाहते थे। इसी क्रम में उन्होंने अपने गाँव थुथुरिया का नाम बदलकर गंगापुर रक्खा और वहाँ पर एक मिट्टी का परकोटा भी बनवाया। तत्कालीन घटनाक्रम में अपनी स्वतंत्र रियासत बनाने की इच्छा से बलवंत सिंह ने सालाना मालगुजारी नवाब के यहाँ भेजना बन्द कर दिया था। दुबारा ऐसी घटना होने पर सफदरजंग बलवंत सिंह पर हमला करने के लिये चल पड़ा। फलतः 1 लाख रुपया नज़राना और मालगुजारी दुगुनी करने का वादा नवाब से बलवंत सिंह को करना पड़ा और बलवंत सिंह की जमींदारी बनी रही।

नवाब सफदरजंग गरीब परवर और बहादुर नेतृत्व की क्षमता वाले व्यक्ति थे। शेरों-शायरी और अच्छे खाने के शौकिन थे।

1754 ईस्वी में सफरजंग की मौत के बाद शुजाउद्दौला अपनी पश्चिमी सीमा कायम रखने में ही फँस गया। इस मौके का फायदा उठाते हुये बनारस में बलवंत सिंह ने रामनगर में एक मजबूत किला बनावाया और लतीफपूर, विजयगढ़ और अगोरी के किले को भी जीत लिया। इसके बाद महाराज बलवंत सिंह ने चुनार के बादशाही फौजदारी को 1 लाख रुपया देकर चुनार और उसके किले पर कब्जा करने की कोशिश की। इन खबरों को सुनकर शुजाउद्दौला ने बनारस के राजा बलवंत सिंह पर हमला कर दिया। महाराज बलवंत सिंह को 5 लाख रुपया नज़राना देना पड़ा और सालाना मालगुजारी में 6 लाख रुपया बढ़ाना पड़ा और माफी भी माँगना पड़ा। नवाब शुजाउद्दौला ने बलवंत सिंह को माफ करते हुये उसे पुनः बनारस की जमींदारी दे दिया।

बनारस पहुँचने पर बलवंत सिंह पहली बार शुजाउद्दौला के सामने गया। इसके पहले वह केवल सालाना मालगुजारी भेजता रहता था। बलवंत सिंह ने अंग्रेजों पर हमला न करने की सलाह दी। बलवंत सिंह की सलाह न मानकर शुजाउद्दौला और बादशाह शहआलम अंग्रेजों के खिलाफ फौज लेकर बिहार की ओर बढ़े। बेमन से बलवंत सिंह भी 13 मई 1764 ईस्वी को बनारस से रवाना हो गये। मगर शुजाउद्दौला के तथाकथित वफादार राजा बेनी बहादुर, राजा बलवंत सिंह, गुलाम कादिर और गालिब खाँ लड़ाई

से भाग खड़े हुये। इनको भागते देखकर मुगलिया फौज भी भागने लगी। नवाब के पास 2 करोड़ का खजाना भी साथ था। इसे लेकर वह भी बक्सर से भागकर बनारस के किनारे आकर रुक गया।

यहीं बनारस में अंग्रेजों ने शाहआलम से समझौता किया। जिसके अनुसार बनारस जनपद के अधिकतर हिस्से पर अंग्रेजों का वर्चस्व बन गया। लार्ड कैनिंग ने शुजाउद्दौला से एक संधि कर ली। इलाहाबाद के किले में अंग्रेज सेना की रखवाली में बादशाह रहेगा। अंग्रेजों के दबाव में नवाब शुजाउद्दौला ने बलवंत सिंह को बनारस का जमींदार मान लिया। इसी के बाद 21 अगस्त, 1770 ईस्वी को जौनपुर से लौटते समय बलवंत सिंह की रास्ते में ही मौत हो गयी। घटना क्रम के बाद नवाब शुजाउद्दौला बनारस आया। रामनगर किले में गया और चेतसिंह से भारी रकम नजराने में पाकर और मालगुजारी ढाई लाख की बढ़त कराकर चेतसिंह को बनारस की जमींदारी दे दिया। चेतसिंह ने इतनी अधिक सामग्री नवाब को भेंट में दिया और इतनी खातिर की कि शुजाउद्दौला ने अपने लड़के मिर्जा अमानी से राजा चेतसिंह की पगड़ी बदलवा कर दोनों में भाई चारे का संबंध स्थापित किया।

1773 ईस्वी में वारेन हेस्टिंग्स नया गवर्नर नियुक्त होकर हिन्दुस्तान में आया और नवाब शुजाउद्दौला को बनारस बुलाकर उनसे नई संधि कर लिया। इस नई संधि से अंग्रेजों ने फैजाबाद में भी अपना एक रेजिडेंट मुकरर कर दिया। नवाब शुजाउद्दौला ने अपनी मृत्यु के कुछ पूर्व ही अपने बड़े बेटे मिर्जा याहिया उर्फ अमानी को अपनी गद्दी दी जो आसफउद्दौला के नमा से मशहूर हुआ।

सन् 1775 ईस्वी में 21 मई को अंग्रेजों के दबाव से नई सन्धि रेजिमेन्ट विस्ट्रो के साथ फैजाबाद में हुई। इस संधि के अनुसार अंग्रेजों को बनारस, जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, चुनार की मालगुजारी आदि वसूलने का अधिकार मिल गया।¹

1. अवध की लूट मेज वर्ड (अनुवादक राजेन्द्र पाण्डेय).

अपनी माँ बहु बेगम और दादी नवाब बेगम के बीच घरेलू खिंचातानी के चलते आसफउद्दौला ने अपनी राजधानी लखनपुर अथवा लखनऊ बना लिया।¹

वारेन हेस्टिंग्स ने नवाब आसफउद्दौला पर जबरदस्ती करके फौज लेकर फैजाबाद में बेगमों के महलों को घेर लिया। उनके ऊपर जुल्म किये बनारस के राजा चेतसिंह, अवध की बेगमों पर वारेन हेस्टिंग्स द्वारा किये गये बर्बर अत्याचार इतिहास की घोर लज्जा जनक घटनायें हैं।

लखनऊ को दुनिया में सबसे खूबसूरत और प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में विकसित करनेवाले आसिफ खाँ के नाम से शायरी करने वाले, करीब 3 लाख पुस्तकों का पुस्तकालय में संग्रह करने वाले मुलायमदिल आसफउद्दौला विशेष कम्पनी के गवर्नर जनरल के दुर्व्यवहार की चोट से जलोदर की बीमारी झेलता हुआ 20 सितम्बर, 1797 को दुनिया से बिदा हो गया।²

इनके लड़के के विवाह के अवसर पर लखनऊ में इतनी धूमधाम मची जो अपने में एक ऐतिहासिक घटना है। नवाब आसफउद्दौला का पुत्र वजीरअली की बरात के समय दूल्हा जो चोंगा पहने था उसमें 20 लाख के जवाहरात लगे हुए थे। विवाह का पूरा खर्च नवाब की ओर से नगद 20 लाख रुपये था। इस विवाह के मौके पर 1200 फुट लम्बी, 600 फुट चौड़ी और 60 फुट ऊँची महफिलें सजी थीं। जिसको बनाने के कपड़े का दाम सल्तनत के खजाने से 10 लाख रुपये था। इन्हीं दोनों विराट महफिलों में रात-दिन गाना, बजाना, नाचना होता रहा। इस काल में लखनऊ में हर तरह के सांस्कृतिक क्रियाकलापों को पूरा संरक्षण मिला और साहित्य और संगीत की पूरी तरक्की किया। वजीर अली अंग्रेजों की हुकुमत हटाना चाहता था और उसने चुपचाप इसकी फौजी तैयारी शुरू कर दिया था। अंग्रेजों को इसकी जानकारी हुई। अंग्रेजों ने भी इसे गद्दी पर से हटाने के लिए आसफउद्दौला के भाई सआदत अली का पता लगा लिया। सआदत अली

1. फैजाबाद गजेटियर, पृ. 60.

2. गार्डन आफ इण्डिया, मि. इराविन, पृ. 86.

उस समय बनारस में दुर्गाकुण्ड पर रहता था।

गर्वनर सर जॉन शोर इस योजना के साथ चटपट बनारस पहुँचे। सआदत अली को अवध की नवाबी सौंपने का लालच दिया। तरह-तरह के बहाने बनाकर अंग्रेजों ने 21 जनवरी 1798 ईस्वी को नवाब वजीर अली को बाईज्जत कैद करके बनारस भेज दिया।

बनारस में वजीर अली को शहर के बाहर बाग माधोदास समिया में (वर्तमान कबीरचौरा अस्पताल के पास) आबाद कर दिया। अंग्रेजों के पहले में वो जब भी बाहर निकलते थे तो उनके आगे नवाबी प्रथा के अनुसार बजता नक्कारा चलता रहा। परन्तु नाममात्र के नवाब अली अंग्रेजों के कैद में ही 1799 ईस्वी में किसी तरह आजमगढ़ की ओर निकल भागे।

1751-1814 ईस्वी में शुजाउद्दौला की दूसरी बेगम से नवाब अमीनउद्दौला मिर्जा सआदत अली खाँ उर्फ मिर्जा मंगली को विश्वास था कि नवाब शुजाउद्दौला के बाद यही नवाब होगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ तो मिर्जा मंगली ने वसन्त अली की मदद से वजीर मुख्तारउद्दौला और नवाब आसफउद्दौला को मारने का कुचक्र रचा। घटनाक्रम में जान बचा कर सआदत अली उर्फ मिर्जा मंगली अकबराबाद (आगरा) भाग कर लखनऊ आकर नवाब आसफउद्दौला से मिला। माफी नामे के साथ नवाब आसफउद्दौला ने इसे 3 लाख रुपया सालाना गुजारा दिया। गुजारे की रकम के साथ यह बनारस में आकर रहने लगा।

बनारस में रहते अपनी गुजारे की रकम से यह व्यापार भी करने लगा था। अपने बड़े लड़के रफतउद्दौला उर्फ गाजीउद्दीन का विवाह यहीं बनारस में मुशव्वीर खाँ या मुशीव्वर खाँ की लड़की से किया था।

47 साल की उम्र में जब ये नवाबी मिलने की उम्मीद छोड़ चुके थे तब कम्पनी के रेजिडेंट चेरी ने बनारस आकर 17 शर्तों के साथ इकरारनामा पर इनसे दस्तखत कराकर इन्हें अवध की नवाबी का आश्वासन दे दिया।

कलकत्ता से सर जॉन शोर भी बनारस आ गया और अंग्रेजों के साथ

1. अमजद अली मुहम्मद नकवी.

मिर्जा मंगली लखनऊ पहुँच गया। लखनऊ में नवाब आसफउद्दौला की बहुबेगम की गद्दीनशीन करने के लिये राजा टिकैत राय ने बहुत कोशिश की परन्तु वजीर अली को गद्दी से उतार कर 21 जनवरी, 1758 को कम्पनी के गवर्नर जनरल ने उन्हें अवध का नवाब बना दिया।

नवाब होने के बाद नवाबी खजाने में नवाब मंगली को एक रुपया भी नहीं मिला। नवाब मंगली अपने साथ बनारस से 4 लाख रुपये लेकर लखनऊ पहुँचे थे। नवाबी चलाने में होशियार मिर्जा मंगली ने इस थोड़ी सी पूँजी से भी अवध के सूबे का इंतजाम बहुत अच्छी तरह से किया। लार्ड वेलेजली के दबाव से बनारस, गाजीपुर, बलिया, चुनार से लेकर रूहेलखण्ड इटावा से गोरखपुर तक अंग्रेजों के कब्जे में हो गया।

1805-1813 नवाब मंगली उर्फ सआदत अली ने लखनऊ में बहुत ही खूबसूरत अनेक इमारतों को बनवाया। उनके दरबार में व्यापारियों दुकानदारों, कवियों, शायरों नाचने-गाने, बजाने वाले विद्वान सभी को प्रोत्साहन मिला और एक बार फिर लखनऊ में तरह-तरह के फनकार दिल्ली, आगरा और दूर-दूर से आकर बस गये।¹

लखनऊ को हर तरह से खूबसूरत और समृद्ध बनाने के साथ-साथ नवाब मंगली ने भवन निर्माण, साहित्य, कला और संगीत को भी संरक्षण देकर लखनऊ को इन सभी का प्रमुख केन्द्र बना दिया।

सन् 1774-1827 ईस्वी में नवाब मिर्जा रफतउद्दौला की एक पढ़ी-लिखी धार्मिक और ज्योतिष की जानकार लड़की से इनकी शादी हुई। बनारस में रहते ही रहते ही इनके खास मददगार खानसामा आगामीर ने इनको उछुंखलता और ऐयाशी के रास्ते पर लगा दिया था।

1826-27 ईस्वी में रफतउद्दौला गाजीउद्दीन हैदर ने शौक और ऐयाशी के साथ-साथ दरबार में शायरों और संगीतज्ञों को और ज्यादा इज्जत दे दिया।² रफतउद्दौला गाजीउद्दीन हैदर के बादशाह नासीरउद्दीन हैदर नवाब

1. गुजिस्ता लखनऊ-अब्दुल हलीम शरर (अनु. नूर अब्बासी) पृ. 33-34.

2. अवध की लूट, पृ. 130-131.

बना। साथ के लोगों ने उन्हें ऐयाश बना दिया। सुरा सुन्दरी के आशिक नवाब नसीरुद्दीन ने नवाबी पोशाक को छोड़कर कोट-पैंट बूट पहनना शुरू किया और एक साल में दरबारे अवध अंग्रेजीयत में डूब गया।¹ नसीरुद्दीन हैदर की मौत के बाद बादशाह बेगम ने मुन्नाजान को नवाब बनाने की पहल की। बादशाहत की तख्त पर मुन्नाजान को बैठा दिया। इसके साथ ही वहाँ कोठेवालियों का नाच, गाना, मुजरा जोर-शोर से शुरू हो गया। अल्लाह वाले “नूर भाँड़” के बेटे ने अपना तमाशा दिखलाना शुरू कर दिया और ताजपोशीकी रस्म पूरी हुई।

नवाब मुन्नाजान के बाद मिर्जा शाह मोहम्मद अली और नवाब सुरैया शाह अमजद अली दोनों ने शासन किया। नवाब अमजद अली ने अवध में बहुत निर्माण कार्य करवाये। अंग्रेज कम्पनी के कई रेजिडेंट आये और गये। अमजद अली के बाद इनके बेटे वाजिद अली शाह ने 10 लाख रुपये खर्च करने हजरतगंज में जहाँ अमजद अली को दफन किया था वहाँ पर सुन्दर इमामबाड़ा बनवाया। अमजद अली दीन-ओ-इमाम वाला आदमी था। इसके समय में लखनऊ की आर्थिक सम्पन्नता ने तत्कालीन संगीतज्ञों और कोठेवालियों को शान-औ-शौकत की जिंदगी दे दिया था।

1822-1887 में नवाब वाजिद अली शाह की नवाबी का समय गाने, बजाने, नाटक और शेरों-शायरी की उन्नति का सुविख्यात समय था। यह नवाब साहब शायरी के उस्ताद आतिश के शागीर्द भी थे और ‘अख्तर’ के नाम से लिखते भी थे। इश्क, मोहब्बत, शायरी, नाटक और संगीत के पारखी और शौकीन थे। अभी भी “अख्तरपिया” के नाम से इनकी बन्दिशें गायी जाती हैं। अंग्रेज रेजिडेन्टो ने वाजिद अली शाह के हर अच्छे काम में काफी रूकावटें पैदा कर उन्हें बेकार करने की कोशिशें की।

अंग्रेजों की इन्हीं हरकतों के बीच शाह-ए-अवध की नवाबी के दिन बीतते गये। नवम्बर 1848 में कर्नल रिचमंड की जगह कर्नल स्लीमैन रेजिडेंट होकर लखनऊ आ गया। उधर कलकत्ते में लार्ड हार्डिंग की जगह

1. मुरवनसर तारीखे अवध.

लार्ड डलहौजी कम्पनी सरकार के गवर्नर जनरल बनकर आ गये और दिल्ली के मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर और अवध के वाजिद अली शाह की पूरी सल्तनत को अंग्रेजों ने हड़प लेने का मन बनाया। इस कारनामों को पूरा करने के लिये कर्नल स्लीमैन ने लखनऊ के रेजिडेंट को अपना मददगार बना लिया।

सन् 1849 ईस्वी में अंग्रेजों का चक्कर बढ़ता गया और नवाब के खिलाफ हर तरह की कारगुजारियाँ चलती रही। नवाब वाजिद अली शाह इस वेबसी में शायर, कौव्वालों, वेश्याओं और संगीतज्ञों के जमघट के बीच वख्त गुजारता रहा। अपनी उदासियों को दूर करने के लिये उसने कई दर्जन खूबसूरत नई औरतों को भी अपने पास रख लिया था। इसी समय नवाबी दरबार में टुमरी, नाटक और रासलीलायें और रहस की भी पूरी जगह बन गई। राग रंग में वख्त गुजारते नवाब वाजिद अली शाह ने 1884 में कैसर बाग की इमारत जिसे “चाँदी वाली बारादरी” कहते हैं इसे बनवाने का काम शुरू किया था। कैसर बाग के भीतर की ओर चौलक्खी कोठी तक बहुत सी इमारतें बनी जिसमें नवाब की बेगमों, रखैलों और वेश्याओं को जगह दे दी गई। इन खूबसूरत इमारतों को बनाने में केवल 80 लाख रुपये खर्च हुये।¹

1851 से 1854 तक कर्नल स्लीमैन अवध के नवाब के खिलाफ सच-झूठ करते हुये बीमारियों से ग्रस्त हो गये। लखनऊ से कलकत्ता जाते हुये गवर्नर जनरल आउट्रम को अवध में स्थायी रेजिडेंट बनाया गया।

हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े की शिकायत लेकर मुसलमान लखनऊ में नवाब के दरबार में हाजिर हुये। बार-बार दबाव पड़ने के बाद यह कहते हुये बिना पूरी जाँच के गुनहगार किसी को भी नहीं माना जा सकता हैं, मुसलमानों की अर्जी पर नवाब वाजिद अली शाह ने लिखा-

हम इश्क के बंदे हैं मज़हब से नहीं वाक्रिफ।

गर काबां हुआ तो क्या, बुतखाना हुआ तो क्या?

इस घटना की जाँच के लिये कमीशन बनवा दिया गया जिससे

1. वाजिद अलीशाह, डॉ. मोहम्मद तकी, पृ. 68.

मुसलमान को जिम्मेदार मानते हुये हिन्दुओं को बरी कर दिया।¹

परन्तु भारत में गदर शुरू हुई और नवाब वाजिद अलीशाह को फोर्ट विलियम में कैद कर लिया गया। सन् 1857-1888 ईस्वी तक नवाब वाजिद अलीशाह कलकत्ते में ही रहा। फोर्ट विलियम में कैद से छूटने के बाद नवाब को रहने के लिये मटिया बुर्ज में आबाद कर दिया गया। वजीर अली नकी खाँ बराबर उसके साथ था। नवाब की 4-6 बेगमें भी साथ ही कलकत्ते आ गई थी। मटिया बुर्ज में नवाब एक बार फिर अपनी शौक और ऐयाशी में डूब गया। उसमें नीचे के तबके की बहुत सी औरतों से मुत्त-आ-निकाह करके उन्हें महल में रख लिया। इन औरतों को बह खुद गाना, बजाना, नाचना सिखाने लगा था। इनमें जो बच्चों की माँ हो जाती उन्हें महल का खिताब दे देता था। धीरे-धीरे कलकत्ते में भी नवाब का हरम बेगमों की गितनी से बढ़ने लगा था।

इसी तरह अपना दिल बहलाते हुये जिन्दगी गुजारकर 68 साल की उम्र में 21 सितम्बर, 1887 ईस्वी को नवाब वाजिद अली शाह मटिया बुर्ज में ही गुजर गये। मरने से पहले अख्तर के नाम से उनकी लिखी बहुत सी उर्दू शायरी की किताबें हैं।² इस तरह लखनऊ से अवध के नवाब की सल्तनत हमेशा के लिये समाप्त हो गई।

अवध के नवाब धर्म सहिष्णु थे। शिया सुन्नी में परस्पर मेल था। नवाबी शासक धार्मिक दृष्टि से उदार थे। हिन्दू-मुसलमान दोनों त्योहार प्रसन्नता से मनाते थे। शाह गाजीउद्दीन हैदर के समय की खास बेगम बादशाह बेगम ने कृष्ण जन्माष्टमी की तरह इमामी जन्माष्टमी का नया उत्सव शुरू किया था जिसमें पुरुष व स्त्रियाँ दोनों शरीक होते थे। हिन्दुओं के त्योहार दिवाली, होली तथा वसंत मनाने में नवाबों की ओर से विशेष रूचि ली जाती थी। शाही दरबार से रोशनी आदि का प्रबन्ध होता था। वाजिद अलीशाह की रहस लीला हिन्दुओं के कृष्ण की लीला की अनुकृति थी।

1. अयोध्या का इतिहास, लाला सीताराम, पृ. 162.

2. गुजिस्तां लखनऊ, पृ. 58-60.

इसमें नवाब कृष्ण बनते, उनकी बेगमें गोपियाँ बनकर 'रहस' करती।

वाजिद अलीशाह के समय शानो शौकत इतनी बढ़ गई थी कि सभी उस समय अवध में रहना पसन्द करते थे। बनारस का मलमल जिस पर लखनऊ की कशीदाकारी प्रसिद्ध थी। जिस प्रकार अवध अपने मेले उत्सव के लिये प्रसिद्ध था। बनारस भी अपने मेले उत्सव खान-पान, रहन-सहन, मनोरंजन, वेश-भूषा, धार्मिक उदारता के लिये प्रसिद्ध था।

नवाबी शासन में साहित्य में उर्दू साहित्य की प्रगति हुई, उसी समय बनारस में, प्रयाग में संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान थे- जिन्होंने कई ग्रन्थ भी लिखे।

नवाबी शासन में संगीत का विकास

नवाबी शासन में फारसी और भारतीय संगीत का समन्वय हो चुका था। वाजिद अलीशाह के समय में संगीत में हल्कापन आ गया था। लेकिन ठुमरी और ख्याल का काफी विकास हुआ। भारतीय वाद्य, सितार, बाँसुरी, ढोल, ताशे, रौशन चौकी, नौबत, तुरही, विगुल आदि अपने साथ लाये थे। नवाबों के समय ही अंग्रेजी वाद्य 'आर्गन' बाजा आ गया था लेकिन महत्व नहीं प्राप्त कर सका। ढोल, ताशा और झांझ मुहर्रम में ताजियों के जुलुस के साथ बजते थे। रौशन चौकी में कई एक वाद्य यंत्र होते थे जिनमें शहनाई भी शामिल है। यह खास दरबारी वाद्य जो नवाबों और बड़े-बड़े रईसों के खाने के समय बजता था। बनारस के अधिकतर मन्दिरों में सुबह के समय रौशन चौकी बजाने का प्रचलन हो गया था। शादी-विवाह के अवसर पर भी यह वाद्य बजाया जाता था। नौबत में एक नक्कारा, दो, तीन शहनाई और एक झांझ होती थी जो जुलुस या लश्कर के साथ बजाई जाती थी। शाही महलों में नौबत बजने के लिये नौबत खाना बनवा दिया जाता था। तुरही और करना फारसी वाद्य जिसका प्रयोग फौजी दस्तों या पल्टनो, कवायद या युद्ध भूमि के प्रयाण के समय होता था।

गायन के क्षेत्र में जिन गीत विधाओं का विकास हुआ। जिनमें ठुमरी, गज़ल, कौवाली प्रमुख है। ठुमरी का विकास नवाब वाजिद अलीशाह के समय से हुआ और इसी ठुमरी गाने में बनारस की गायिकाओं ने सम्पूर्ण

अध्याय-2 (ख) 16वीं शताब्दी से स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनारस/95

भारतवर्ष में तुमरी को बनारसी रंग में रंगकर गायन प्रस्तुत करके यश संपादन किया।

नृत्य की दृष्टि से पुरुष व स्त्रियाँ दोनों में नृत्य कला का विकास हुआ। स्त्रियों में मुजरा करने वाली वेश्याओं से नृत्य प्रारंभ हुआ। शुजाउद्दौला से लेकर वाजिद अलीशाह तक वेश्याओं का पूरा प्रभाव नवाबी दरबार में बना रहा। 60/70 वेश्याओं का एक गिरोह सजधजकर कैसरबाग में जमा होता था जहाँ नवाब साहब कृष्ण बनते और गोपियाँ वेश्यायें बनती और उनके साथ 'रहस लीला' करती। मुंसरिम वाली गौहर, जौहर, मुस्तरी उस समय की मशहूर वेश्यायें हैं। पुरुषों में नृत्य कला का जो विकास हुआ वह कथक, रहसधारी व भांडों का नृत्य था। कथक में खुशी महाराज, हिलालजी, प्रकाश जी, दयालु जी, दुर्गा प्रसाद, ठाकुर प्रसाद, कालका, बिंदादीन इनका नाम प्रसिद्ध है। इन्हीं की परम्परा से बनारस में भी कथक नृत्य का विकास हुआ जिसमें सुखदेव (सुकरे महाराज), सितारा अलकनंदा, गोपी कृष्ण इन्होंने कथक में बनारस का नाम रौशन किया। भाँड़ों की कला का विकास बनारस में भी हुआ। भाँड़ अपने नृत्य के लिये नहीं बल्कि लतीफे, नोंक-झोंक के वाक्यों, दूसरे की नकल करना इनके लिये प्रसिद्ध थे। बनारस का अजूबा भाँड़ का नाम प्रसिद्ध है।

मुगलों और अवध की संस्कृति का प्रभाव बनारस पर भी पड़ा और मुस्लिम तहजीब वैशिक वृत्ति यहाँ भी समाज में घुलमिल गई लेकिन बनारस में इन वृत्तियाँ का बनारसी रंग ढंग बना रहा। कितने राजनैतिक उलटफेर होने के बावजूद बनारसियों ने अपना बनारसीपन, अपनी मौज-मस्ती नहीं छोड़ी और पूरे देश में बनारस की एक विशेष छाप छोड़ी।



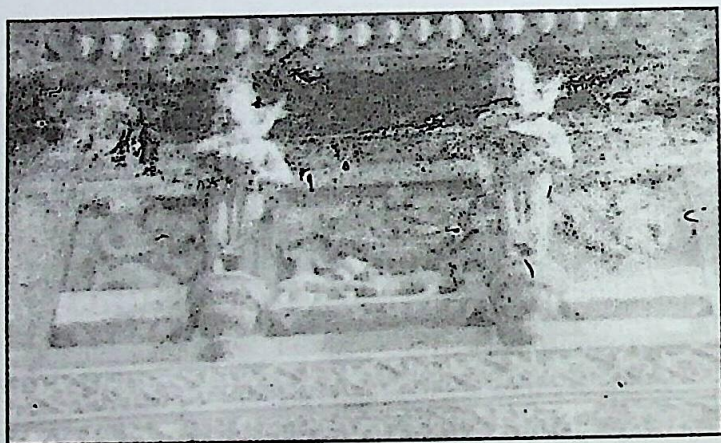
(ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान

बनारस के इतिहास में मंसाराम नाम उल्लेखनीय है। मंसाराम के सुपुत्र बनारस के पहले राजा बलवंत सिंह का नाम आता है। मंसाराम मीर रुस्तम अली के अधीन मालगुजारी वसूल करते थे। उस समय बनारस के गवर्नर मीर रुस्तम अली थे। मीर रुस्तम अली एक सुसंस्कृत व्यक्ति थे जिनको बनारस की संस्कृति के प्रति बहुत लगाव था, विशेषकर संगीत से। वे स्वयं कुशल संगीतकार थे। बनारस में वे हमेशा हिन्दुओं के उत्सवों में सम्मिलित होकर अपना सक्रिय योगदान देते रहे। इसीलिये जब वे चले गये तो उस वर्ष “कहाँ गयो मेरो होली को खैवया रुस्तम” ऐसा कहते हुये बनारस में उस वर्ष होली नहीं मनाई गई।

मंसाराम ने अवध के नवाबों से और दिल्ली के बादशाहों से अपने लड़के बलवंत सिंह को राजा की पदवी और जागीर दिलाने का प्रयत्न किया। मंसाराम के दिवंगत होने के बाद बलवंत सिंह ने आसपास के बहुत जागीरदारों के साथ मिलकर एकजूट होकर मंसूर अलीखाँ सफदरजंग के खिलाफ पठानों का साथ दिया।

लखनऊ के नवाबों ने पठानों को परास्त कर दिया तो अवसर देखकर बलवंत सिंह ने अवध के नवाबों से संपर्क बना लिया। बलवंत सिंह ने बनारस से इलाहाबाद जाकर बंगश पठान को 1 लाख रुपया नजराना देकर

अपनी जागीर प्राप्त कर तत्कालीन परिस्थितियों का लाभ उठाते हुये जिला जौनपुर से मडियाहू तक का क्षेत्र अपने अधीन कर लिया। फलतः बलवंत सिंह की राजधानी बनारस से गंगापुर तक पहुँच गई। अंततोगत्वा सालाना वसूली निश्चित करके नवाब सफदरजंग ने बलवंत सिंह को बनारस की हुकूमत सौंप दी।



दुर्गामंदिर रामनगर (बनारस) के पुरातत्व में संगीत शिल्प 19वीं शताब्दी

दिल्ली की उथल-पुथल से खाली होने पर नवाब फिर बनारस फरवरी 1754 ई. में पहुँच गया। पहले तो बलवंत सिंह भागकर गंगा पार चन्दौली में जाकर छिप गये। फिर नवाब को नज़राना आदि देकर उनकी अधीनता मानकर बनारस की जागीर बचाने में सफल हो गये। फरवरी 1759 ई. में ही पेशवा ने राघोबा को नवाबों से काशी, प्रयाग, अयोध्या अपने अधिकार में लेने के लिये बात की। पेशवा लोगों को यह अधिकार मिल जाता यदि राघोबा को मध्यस्थता करना आता और कूटनीति का ज्ञान होता।

1768 ईस्वी के बाद अंग्रेज कंपनी ने बनारस में एक बार पुनः नवाब-ए-अवध आसफउद्दौला को बुलाकर संधि की। इसी के कुछ महिनों बाद 21/22 अगस्त, 1770 ईस्वी को काशीराज बलवंत सिंह का देहांत हो गया।

हिन्दी के विद्वानों और कवियों के साथ-साथ सुड़िया के वैद्यजी के परिवार की घनिष्ठता महाराज बलवंत सिंह के परिवार से बनी रही। इन्हीं के शासन काल में फारस के प्रसिद्ध फ़कीर “शेख-अली-हजी” बनारस में आकर बस गये। इनका लिखा बनारस की प्रशंसा करता फारसी काव्य उत्कृष्ट रचना है। शेख साहब की मज़ार यहीं काशी में है। इनके दरबार में चतुरबिहारी मिश्र, जगराज सुकुल, खुशहाल खाँ, भूपत खाँ ठाकुर प्रसाद जी के पूर्वज दरबारी संगीतज्ञ थे। नत्थु मिश्र सारंगिया का भी उल्लेख पीलीकोठी निवासी मौलाना साहब ने अपने उर्दू पुस्तक में किया है।

उस समय बनारस का बहुत अच्छा विवरण मिसेस किंडरस्ले ने (1767 ई.), उनके बाद विलियम होजेज (1781-85 ई.) और दूसरे एक यात्री फॉस्टर ने भी (1782-83 ई.) में लिखा है। इन तीनों यात्रियों के विवरण से पता चलता है कि बनारस के रहने वाले स्त्री-पुरुष सुरुचिपूर्ण वेशभूषा सौन्दर्य प्रसाधन, खानपान और अपने धार्मिक कृत्यों को अपनाये हुये थे और बहुत ही उदारमना थे।

बनारस में उस समय रामलीला और दूसरी लीलाओं के आयोजनों की धूम रहती थी। बुढ़वा मंगल पूरे उत्साह से होता था। घर में बैठकर लोग चौपड़, शतरंज, गंजीफा और सुरबग्घी खेलते थे। गलियों और खुली जगहों

अध्याय-2 (ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान/99

पर मदारी, सपेरे, जादूगर, नट, बाजीगर, बहुरूपिये और कठपुतली के तमाशे होते रहे। कुछ लोग मेढ़ा लड़ाते थे, साँड़ लड़ाते थे और संपन्न लोग हाथी और भैंसा भी लड़ाते थे। लाल और बुलबुल की लड़ैया भी होती थी। कुछ हिन्दू-मुसलमान बाज भी पालते थे और गुड्डी बाजी (पतंग या कनकौवा) और कबतूरबाजी भी होती रहती थी। गाय पालने के साथ नाना प्रकार के पशु-पक्षियों को पालना भी व्यापक था। इक्के की गहरे बाजी को उस समय दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त थी और गंगा में नाव की दौड़ भी होती थी। गाना, बजाना, नाचना तीनों उस समय भी जनजीवन की प्रमुख अंग था।

मणिकर्णिका के श्मशान पर जब बलवंत सिंह की चिता को बाबू मनियार सिंह (बलवंत सिंह के भतीजे) मुखाग्नि देने की तैयारी कर रहे थे, उसी समय तोप छूटने की आवाज रामनगर के किले से आई। कुछ देर बाद पता लगा कि बलवंत सिंह की राजपूत पत्नी के लड़के चेतसिंह ने राजगद्दी दखल कर ली है। उसमें वर्तमान औसानगंज बसाने वाले बाबू औसानसिंह ने चेतसिंह की सहायता की थी।

अवध के नवाब भी इस घटना को सुनकर फैजाबाद से बनारस के लिये चल पड़े। सुलझे सलाहकारों की मदद से चेतसिंह ने जौनपुर पहुँचकर अवध के नवाब की अगवानी की।

इस शिष्टाचार से नवाब साहब प्रसन्न हो गये और बनारस में प्रवास के बीच एक दिन रामनगर किले भी गये। चेतसिंह ने सवा लाख रुपये बिछाकर नवाब को आसन पर बैठाया। फिर नवाब साहब ने बनारस के बेशकीमती कपड़े, 2 किशती में भरकर नायाब जवाहिरात, उमदा किस्म के चुनिंदे 15 घोड़े और साधे सिखाये हुये पाँच हाथी नवाब साहब को नजराने में पेश किए।

इस अदब तहजीब से खुश होकर नवाब साहब ने अपने नवाबजादे से चेतसिंह की पगड़ी बदलवा दी। मतलब दोनों में भाई-भाई का रिश्ता हो गया। उधर अंग्रेज कम्पनी ने भी मनियार सिंह के नेपाल भाग जाने के बाद अपना फायदा देखते हुये चेतसिंह को ही बनारस की गद्दी का हकदार बनाने में अपनी हामी भर दी।

इधर चेतसिंह समय से कंपनी को रुपया नहीं भेज पाये। उसी समय गर्वनर जनरल वारेन हेस्टिंग्स शहर बनारस में आकर वर्तमान कबीरचौरा अस्पताल के पास बाग माधोदास (वर्तमान राधा स्वामी भवन) में रुक गया। 16 अगस्त को सबेरे शिवाला घाट के महल में सो रहे चेतसिंह को जगाकर रेजिडेंट मार्कहम ने गर्वनर जनरल का आदेश सुनाया कि चेतसिंह को नजरबंद किया जाता है। राजा बनारस के सिपाहियों ने अंग्रेजी फौजों को मार काट दिया। इसी के साथ बनारस शहर में अंग्रेजों के साथ विद्रोह खड़ा हो गया।

शिवाला महल घाट के ऊपर बनी खिड़की से बढ़ी हुई गंगा में उतराती नाव के ऊपर बैठकर अपने रनिवास के साथ चेतसिंह बनारस से निकल भाग और रामनगर होते हुये, अपना खजाना और रनिवास साथ में लेकर हमेशा के लिये बनारस से चल गये। रातों रात बनारस से भाग चुनार किले में पहुँचकर जान बचाने में सफल हुये। चेतसिंह के दरबार में बलवंत सिंह के समय के ही कलाकार मौजूद थे। दुलारी वेश्या का नाम इनके समय इनके दरबार में होने का उल्लेख मिलता है।

वारेन हेस्टिंग्स ने पुनः बनारस रियासत पर अपना कब्जा कायम किया और बलवंत सिंह के नाती महीपनारायण सिंह जी को गद्दी पर बैठा दिया। 14 सितंबर सन् 1781 में रियासत बनारस का जो पट्टा लिखा गया उसमें 40 लाख रुपया साल कंपनी की वसूली थी। कंपनी ने बनारस में अपनी दीवानी और फौजदारी कचहरी स्थापित की। बनारस में अंग्रेजों का बनाया पहला मैजिस्ट्रेट अली इब्राहिम खाँ था।

काशीराज महीपनारायण सिंह ने काशीराज संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। इसकी आर्थिक सुव्यवस्था के लिये जिला मिर्जापुर का 87 परगना दान में दिया। आज इसी भवन संस्कृत विद्यालय है। विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों का इनके दरबार में परंपरानुसार आदर रहा है। आपके दरबार में मुगलदरबार से बनारस आये हुए तानसेन की लड़की के वंशज भूपतखाँ के पुत्र जीवनखाँ, छज्जू खाँ और प्यारे खाँ आदि थे। क्षत्रिय बीनकार भी थे।

सन् 1795 ई. में महाराज महीपनारायण सिंह के बड़े लड़के उदित

अध्याय-2 (ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान/101

नारायण सिंह गद्दी पर बैठे। इसी समय अंग्रेजों के आश्रित पेशवा राघोबा के दत्तक पुत्र अमृतराव और पुत्र विनायकराव बनारस आ गये। यहाँ उनका रहन-सहन राजसी बना रहा। शाम को उनके यहाँ संगीत महफिल सजती थी और बनारस की कुशल गणिकायें उसमें शिकरत करती थीं।

महाराज उदित नारायण सिंह जी ने भी अपने पुरुखों की परंपरा को और पुष्ट करते हुये अपने दरबार में धर्म, अनेक विषयों के विद्वानों और गौ ब्राह्मण की सेवा को अपनाया। यह स्वयं उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। निर्मोल शाह इतिहास प्रसिद्ध वीणावादक इनके दरबारी वादक थे। सदाशिव मिश्र उर्फ सादे खाँ सिद्ध टप्पा गायक और रवाब वादक जाफरा खाँ भी इनके दरबार में थे। इन्हीं जाफर खाँ ने सुरसिंगार नाम का एक नया बाजा बनाया और पहली बार उसे महाराज उदित नारायण सिंह जी के सामने ही बजाया। इस वाद्य का दूसरा नाम सुरबहार भी मिलता है।

श्रेष्ठ कवि पंडित गोकुल नाथ भट्ट ने महाराज चेतसिंह, महाराज महीपनारायण सिंह, महाराज उदित नारायण सिंह तीनों का शासन काल देखा था। गोकुलनाथ के पुत्र गोपीनाथ और शिष्य मणिदेव ने महाभारत एवं हरिवंश पुराण का हिन्दी पद्यानुवाद किया था। जिस बृहद्-ग्रंथ को महाराज उदित नारायण सिंह ने प्रकाशित भी कराया। पं. गोकुलनाथ भट्ट संगीत के निष्णात् विद्वान एवं मधुरतम गायकों में से थे। नित्य प्रातः राजाओं को अपने पदों को गाकर जगाते थे। महाराज उदित नारायण सिंह जी के एक और दरबारी गायक रामनगर निवासी मधुसुदन मिश्र या मक्कूजी थे। जिनके एक मात्र पुत्र थे पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र। श्री मक्कू जी चारों अंग की गायकी गाने के साथ स्वामी देवतीर्थ की रचनाओं को भी गाने वाले दरबार के प्रिय गायक थे साथ ही सारंगी, सारंगा, सारंगबीन, वीणा, कौमुदकी वीणा और सितार वादक थे। इनका देहांत सौ वर्षों से अधिक की आयु 1866 ई. के लगभग हुआ। उदित नारायण सिंह के समय चित्रा इमामबांदी गणिकायें इनके दरबार में थी।

महाराज उदित नारायण सिंह जी ने अपने छोटे भाई प्रसिद्ध नारायण सिंह के पुत्र ईश्वरी नारायण प्रसाद सिंह को अपना दत्तक पुत्र बना लिया था।

महाराज ईश्वरी नारायण सिंह ने पुराने बनारसी जीवन को बल प्रदान किया। इनकी लोकप्रियता का पता एक बहुत ही साधारण बात से लगता है कि बनारस के कुम्हार उनके जीवनकाल में ही उनकी मिट्टी की मूर्ति बनाकर बेचते थे, जिसे बनारस के निवासी आदरपूर्वक अपने घर में रखते थे। इन्होंने रामचरित मानस की एक टीका भी लिखी थी। अपने पुस्तकालय को भी समृद्ध किया था। इनके समय में बनारस में सभी कला कौशल, दस्तकारी और उद्योगों ने बहुत उन्नति की। इन्होंने हाथी दांत की बहुत सी दुर्लभ सामग्रियाँ बनवाई जो आज भी रामनगर के किले में हैं। इन्होंने चित्रकारों को भी पूरा प्रश्रय दिया। इन्हीं के काल में कंपनी शैली का बनारस घराना (चित्रकारी का) शुरू हुआ।

1852 ई. में बनारस का लोकप्रिय भंगड़ भिक्षु के शिष्य दाताराम नागर को काले पानी की सजा हुई। नागर जी भुतही इमली बुलानाला और ठठेरी बाजार से गुजरनेवाले दुलदुल के जुलुस का रास्ता बदलवाना चाहते थे और इसी के विरोध में हमला करने वाले अनेक मुसलमानों को तलवार से काट दिया था। उनको काले पानी की सजा हुई है, इस खबर के विरोध में कई दिनों तक शहर बनारस बंद कर दिया गया। दाताराम नागर खाँटी बनारसी मिर्जाज के आदमी थे और काव्य-संगीत के प्रेमी थे। उनकी याद में बनारस में निम्नलिखित कजली गायी गयी थी कुछ अंश—

अरे रामा, नागर नैया जाला कालेपनियाँ रे हरी।

सबकर नैया जाला कासी हो बिसेसर राम,

नागर नैया जाला कालेपनियाँ रे हरी!

घरवा में रोवें नागर भाई और बहनियाँ रामा,

सेजिया पै रोवें बारी धेनियाँ रे हरी!...

दिल्ली में हुये पहले दरबार में लार्ड लिटन ने ईश्वरी नारायण सिंह को 13 तोपों की सलामी के साथ महाराज की उपाधि भी दी थी। महाराज ईश्वरी नारायण सिंह के समय संगीतज्ञों को दरबार में पूरा सम्मान मिला। इन्हीं के समय में बनारस का रामनगर का संगीत घराना पूरी तरह से विकसित हुआ। बनारस की रियासत एक बहुत छोटी रियासत थी परन्तु महाराज ईश्वरी

अध्याय-2 (ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान/103

नारायण सिंह ने सीमित संसाधनों के रहते विक्रमादित्य के नवरत्नों के समान दरबार को विद्वान और गुणीजनों से समृद्ध बना दिया। अपने गुरु “काष्ठजिह्वास्वामी” देवतीर्थ जी की प्रेरणा से इनका जीवन राजा-महाराजाओं के बीच आदर्श जीवन का उदाहरण हो गया। बनारस के बड़े-बूढ़े धनाढ्य और जनसाधारण सभी के बीच इनकी लोकप्रियता अपने में आदर्श है। महाराज उदित नारायण सिंह जी के दरबार के साथ पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र इनके दरबारी संगीतज्ञ और संगीत शिक्षक हो गये। वल्लभकुल के काशीपीठ के प्रति भी इनका मधुर संबंध रहा जिसका निर्वाह इन्होंने अपने जीवन काल में किया।

इनके समय में बासतअलि खाँ, प्यारे खाँ, जाफर खाँ, हनू सिंह, छज्जू सारंगिया, जीवनशाह ध्रुपदिया, निर्मोल शाह बीनकार, गामू गवैया, कल्लू सारंगिया, फिज-उल्ल सारंगिया, बख्तावर नायक, शिवदास जी, प्रयाग जी, जयकरण जी, बनारस में तबला घराने के प्रमुख हस्ताक्षर उस्ताद राम सहाय जी के साथ तत्कालीन बनारस के सभी गुणी संगीतज्ञ, लखनऊ नवाबी दरबार से आये संगीतज्ञ और मुगल शाहजादाओं के साथ आये सभी संगीतज्ञों को इनका आश्रय प्राप्त था। गायिकाओं में हुस्ना बाई और आधुनिक हिन्दी के प्रथम पुरुष भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी आपके स्नेह भाजन रहे। इन्होंने अपने गुरु स्वामी देवतीर्थ जी का ग्रंथ ‘रामसुधा’ की महत्वपूर्ण टीका भी लिखी।

बनारस का प्रसिद्ध संगीत मेला बुढ़वा मंगल इनके समय में और अधिक उन्नत हुआ। इन्होंने दो खास तरह की बड़ी-बड़ी नौकायें बनवाई थीं, एक का नाम ‘घुड़दौड़’ जिसके सिरे पर दो घोड़े बने थे और दूसरे का नाम ‘मोरपंखी’ जिसके एक सिरे पर मोर का सिर और गर्दन और दूसरे सिरे पर मोर के पंख। तीसरी नाव ‘सरस्वती’ जिसके बीच में सीढ़ियों सहित खुला हुआ छोटा कुण्ड बनाया था जिससे गंगा की बीच धारा में उसी नाव के बीचों-बीच उसके कुण्ड में राजपरिवार स्नान कर सकता था। घुड़दौड़ और मोरपंखी का उपयोग बुढ़वा मंगल में होता था।

महाराज ईश्वरी नारायण सिंह ने अपने भाई नरनारायण सिंह के पुत्र

प्रभुनारायण सिंह को धर्मशास्त्रनुसार तो गोद लिया ही था, वाइसराय लार्ड केनिंग से लिखा-पढ़ी करके कानूनी कारवाई भी पूरी कर रखी थी। 13 जून, 1889 को महाराज ईश्वरी नारायण सिंह वृद्धावस्था में दिवंगत हो गये।

महाराज ईश्वरी नारायण सिंह राजनीतिक खेल और कूटनीति के विशेषज्ञ थे। सन् 1857 की गदर में इन्होंने अंग्रेजों से निगाह बचाकर विप्लवी लोगों की पूरी तरह से आर्थिक मदद की। इनका एक काम बहुत ही विचित्र थी जिसका निर्वाह उनके उत्तराधिकारी प्रभुनारायण सिंह ने भी किया। किसी भी गोरी चमड़ी वाले से हाथ मिलाने के बाद यह लोग उसी के सामने चाँदी की परात में रखी हुई गोबर और गंगाजी की मिट्टी लगाकर चाँदी के गडुवे से गिरते गंगाजल से हाथ धोते थे। अपने मन की विद्रोही भावना को धार्मिक रीति की आड़ में व्यक्त करने का यह कौशल इनकी विशेषता थी।

20 जून, 1889 ईस्वी को महाराज बनारस की नदेसर की कोठी में (आज उसके बगीचे में ताज गैंगेज, 5 सितारा होटल भी है) एक भव्य दरबार में महाराज प्रभुनारायण सिंह बनारस की राजगद्दी पर बैठे। इनका पहला विवाह सन् 1870 में हुआ था जिसका स्मारक एक घंटाघर सुड़िया के वैद्यजी के आवास के ठीक सामने बनवाया गया था जो आज भी है सुड़िया के वैद्यजी का परिवार वंशपरंपरा से महाराज बनारस का राजवैद्य होता रहा है।

महाराज प्रभुनारायण सिंह का जन्म सिंह लग्न में हुआ था और इस तरह से यह सिंह वृत्ति वाले व्यक्ति थे। फारसी, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी के ये विद्वान थे। इनके दरबार में और इनके राज्यकाल में भी बनारस हर तरह से समृद्ध होता गया। दरबार में गुणियों और संगीतज्ञों का आदर तो होता ही था, महाराज ईश्वरी नारायण सिंह जी की परम्परा के अनुसार भारतेन्दु मंडल के कवियों और लेखकों को भी राज्याश्रय प्राप्त था। इन्होंने पुराने भवनों, कुओं आदि की पूरी मरम्मत कराई और स्कूल, अस्पताल, गोशाला, धर्मशाला, थाना और सड़कें भी बनवाई। रामनगर में जलदल, बिजलीघर,

अध्याय-2 (ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान/105

लवेट अस्पताल, नेस्टन, हायस्कूल, मुख्य कचहरी तो बनवाया ही, बनारस स्टेट बैंक भी शुरू किया।

बनारस में मिसेस एनी बेसेंट को सेंट्रल हिन्दू कॉलेज बनवाने के लिए अपनी बहुत बड़ी जमीन और बड़े-बड़े भवन दान में दिये। सन् 1902 में इन्होंने बनारस में हिन्दी सेवा संस्था काशी नागरी प्रचारणी सभा भवन की नींव रखी थी और दो हजार रुपया नगद भी दिया था।

महाराज प्रभुनारायण सिंह महामना मालवीय जी के अनन्य भक्त थे। पं. मालवीय जी महाराज की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय योजना में इन्होंने, विश्वविद्यालय जिस भूमि पर बना है उसकी जमींदारी का हक छोड़ दिया और एक लाख रुपया भी दिया था।

महाराज प्रभुनारायण सिंह रामनगर की रामलीला और बनारस शहर में होने वाले चित्रकूट की रामलीला, संत तुलसीदास द्वारा चलाई तुलसीदास की कृष्ण लीला और अन्य सार्वजनिक क्रियाकलापों में बनारस के हर अमीर और गरीब के निकटस्थ राजा थे।

अंग्रेजों ने सन् 1891 ई. में आपको के.सी.आइ.ई. की उपाधि दी और पहली जनवरी सन् 1898 में जी.सी.एस.आय. की उपाधि भी दी। महामना मालवीय जी के सहयोग से 4 अप्रैल, 1911 को बनारस में एक दरबार आयोजित कर सर लेसली पोर्टर, गवर्नर ने आपको स्वतंत्र राज्याधिकार भी दे दिया। इसके बाद सन् 1921 में आपको जी.सी.आय.ई. की उपाधि मिली।

महाराजा प्रभुनारायण सिंह अपने पिता से भी अधिक लोकप्रिय विद्वान, विद्वानों और गुणियों के आश्रयदाता, सुकवि, स्वयं प्रकाण्ड विद्वान तो थे ही, संस्कृत नाटक के प्रेमी और संगीतज्ञ भी थे। महाराज प्रभुनारायण सिंह जी ने अनेक संस्कृत गीतों की रचना भी की है। नाटकों को मंचस्थ करने के लिये आपने रामनगर किले “शाकुंतलगृह” के नाम से शास्त्रोक्त विधानपूर्वक रंगशाला भी बनवाई थी। इस रंगशाला की दीवारों पर कालीदास के अभिज्ञान शाकुंतल के विभिन्न चित्र भी बने थे। यह रंगशाला अब कालकवलित हो चुकी है। आपके दरबार में पूर्वपत्नी सभी संगीतज्ञ तो

थे ही बासतअली के लड़के अली मोहम्मद खाँ, बड़कू मिया नेपाल महाराज के दरबार से इनके यहाँ आ गये। दौलत खाँ विख्यात ध्रुपदिया अली बख्श बड़कू मिया के छोटे भाई मोहम्मद अली खाँ, मंजूर खाँ, जगदीपजी, तबला वादक मौलवीराम, तबला जादूगर बलदेव सहाय, सुरसहाय सारंगिया और दूसरी रियासतों से आये संगीतज्ञ भी आपके दरबारी महफिलों की शोभावृद्धि करते रहते थे। इन्हीं के समय में संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी दरबार में समादृत हुये।

शारीरिक दृष्टि से वे इतने बलवान थे कि एक हाथ से नारियल का गोला तोड़ते थे एक हाथ की उँगली और अंगूठे के बीच चाँदी का एक सिक्का लेकर मसलते हुये वे रानी का ताज मिटा देते थे। मजबूत घोड़े को दौड़ाते हुये ये खिलवाड़ में घोड़े को जाँघों में दबाकर उछलकर पेड़ की डाल पकड़कर लटक जाते थे। साथ में जाँघों में लटका घोड़ा अपने पैरों को चलाता रहता था। तलवार के एक वार से रेशम की रूमाल भी काट देते थे और मोटी लोहे की सिंकड़ी भी। बन्दूक और पिस्तौल से इनका निशाना अचूक था। किसी शिकार पर इन्होंने दूसरी गोली नहीं चलाई।

उच्चकोटि के संगीत के जानकार और संगीत प्रेमी थे। बुढ़वा मंगल का आयोजन पूरी शान-ओ-शौकत से होता रहा। इनके समय में सुड़िया के पं. रघुनन्दन जी वैद्य राजवैद्य थे जिनके काशीवास के बाद राजवैद्य पं. रामशंकरजी वैद्य राजवैद्य थे। दालमंडी के हकीम मोहम्मद काजीम साहब इनके हकीम थे। राय बहादुर डॉ. विरेन्द्र नाथ मुकर्जी इनके डॉक्टर थे। ये सभी लोग संगीतज्ञ और संगीत प्रेमी थे। बनारस के विख्यात शहनाई वादक नन्दलाल इनके दरबारी शहनाई वादक थे जिनकी रागदारी और लयदारी का यशगान आज भी लोग करते हैं।

1921 ई. में प्रभुनारायण सिंह के देहांत के बाद उनके एकमात्र पुत्र महाराज आदित्य नारायण सिंह ने यथाशक्ति समय और परिस्थितियों के अनुसार दरबार की परंपरा का निर्वाह किया। इनके समय में रामनगर किले में सावन के झूले के आयोजन में संगीतज्ञ रामसेवक मिश्र 'छबीले' कजली झूला के गुणी कलाकार थे।

अध्याय-2 (ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान/107

महाराज आदित्य नारायण सिंह ने अपने ममेरे भाई के लड़के को 24 जून, 1934 ई. को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण किया था। महाराज आदित्य नारायण सिंह का देहान्त 4, 1939 को हो गया।

5.4.1939 से महाराज विभूति नारायण सिंह अल्पवय में ही गद्दीनशीन हुये। अल्पवयस्क महाराजा के लिये पीटर साहब को उनका संरक्षक बनाकर रेजिडेंट पॉलीटिकल एजेंट नियुक्त किया गया।

प्रिंसेस स्कूल अजमेर में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् और रेजिडेंट पीटर के अनेक दबावों और दुराग्रहों को झेलकर भी महाराज विभूतिनारायण सिंह जी हिन्दू संस्कृति और धार्मिक चेतना का निर्वाह करते रहे। अपने राजवैद्य पंडित रामशंकरजी वैद्यजी की प्रेरणा और अपने अंग्रेजी के अध्यापक बाबू विश्वेश्वर प्रसाद अग्रवाल, रईस के प्रोत्साहन और दरबारी चौधरी छुन्नी सिंह के परामर्श से यह अपने उत्तराधिकार का निर्वाह करते रहे। साथ ही इन्होंने एम.ए. और पी-एच.डी. की उच्च शिक्षा भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति पं. गोविन्द मालवीयजी के समय में प्राप्त किया। अपने पूर्वजों की तरह ये आजीवन हरिद्वार के ही गंगाजल का प्रयोग खानपान में करते रहे। निष्ठापूर्वक नित्य संध्या करना, अपने राजपंडित पंडितराज राजेश्वर शास्त्री द्रविड़ से नित्य स्वाध्याय करते रहना और अपने धार्मिक रीति का निष्ठापूर्वक पालन करना इनकी दिनचर्या थी। अपने रामनगर किले में इन्होंने पुराणों के प्रकाशन की पूरी योजना कार्यान्वित की साथ ही 'पुराण' नामक पत्रिका का प्रकाशन भी कराया। बुढ़वा मंगल मेला के प्रतीक के रूप में किले के भीतर यह संगीत की महफिल भी कराते रहे। संगीत को प्रोत्साहित करने के लिये इन्होंने अपने बनाये हुये काशीराज न्यास द्वारा तुलसीघाट पर आयोजित वार्षिक ध्रुपद मेले का आर्थिक प्रबंध करके उसे आरंभ कराया।

25 दिसम्बर, 2000 ई. को उनका देहांत हुआ। महाराज विभूति नारायण सिंह संपूर्णानन्द संस्कृत विद्यालय और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से किसी न किसी रूप से जुड़े रहे।

इनके गद्दीनशीनी के समय में मृत्युपर्यन्त तक इनके राजवैद्य पं.

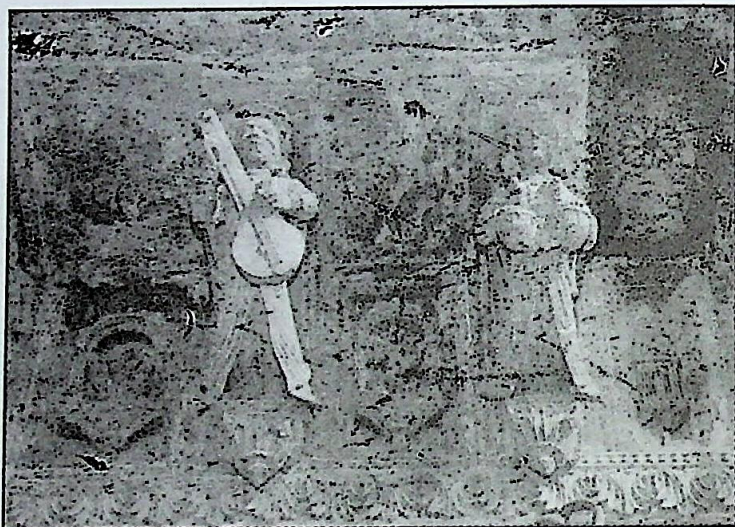
रामशंकरजी वैद्य और उनके बाद राजवैद्य पं. शिवकुमार शास्त्री ने उस पद को सुशोभित किया। महाराज विभूति नारायण सिंह रामलीला, रामचरितमानस और काष्ठजिह्वा स्वामी के साहित्य के साथ भक्ति-साहित्य के प्रेमी थे। इन्हें बनारसी संगीत से विशेष लगाव था। इन्हीं के विशेष आग्रह से सन् 1983 में विश्व संस्कृत सम्मेलन के अवसर पर आगत सभी देशी-विदेशी संस्कृत विद्वानों ने बनारसी क्लासिकल संगीत में आबद्ध संस्कृत के स्तोत्रों की गायन सुना था। इसकी संगीत रचना पं. शिवकुमार शास्त्री जी की थी जिसमें वाद्य वृन्द के साथ गायन की प्रस्तुत लेखिका ने भी की थी।

वर्तमान में इनके उत्तराधिकारी इनके पुत्र कुंवर अनंत नारायण सिंह हैं। आशा है काशी की संगीत परम्परा को बढ़ाने में इनका सहयोग मिलेगा।



बनारस के अमेठी मंदिर के पुरातत्व में संगीत शिल्प 19वीं शताब्दी

अध्याय-2 (ग) बनारस के उत्थान में काशी नरेशों का योगदान/109



बनारस के अमेठी मंदिर के पुरातत्व में संगीत शिल्प 19वीं शताब्दी



अध्याय- 3

क. सन्तों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव

भारतीय संगीत की परम्परा ऋषियों, मुनियों एवं सन्त महात्माओं से जुड़ी है। इसी क्रम में भगवान वेदव्यास तक को मानना उचित होगा। आचार्य दत्तिल, भरत आदि संगीत के आचार्यगण भी इसी परम्परा के पोषक, संस्कर्ता और प्रतिसंस्कर्ता के रूप में ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। प्राचीन काल के वैष्णव, शैव, शाक्त आदि मतों के और अन्य मतों के आचार्यों ने भी भारतीय संगीत के प्रवाह को पुष्ट किया है। पौराणिक विवरणों में भी सिद्ध, संत और भक्त लोगों का उल्लेख मिलता है। इन सन्तों और भक्तों ने भगवन्नास्मरण और संकीर्तन की परम्परा को सर्वजन सुलभ कराया। इनके पदों के गायन में मार्गी देशी संगीत और लोकसंगीत की परम्परा पुष्ट होती रही हैं।

मध्य एशिया के दरवेश परम्परा में अतिप्राचीन काल से इसी प्रकार के विवरण इतिहास में उपलब्ध हैं। कालांतर में यह परम्परा सूफीमत के साथ भारत में आयी।

भगवत्पाद आद्य शंकर की कृपा से प्राप्त ग्रंथ “सौन्दर्य लहरी” में एक श्लोक तत्कालीन संगीत का विवरण देता है-

अध्याय-3 (क) सन्तों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव/111

गले रेखास्तिस्त्रो गतिगमकगीतैक निपुणे।

विवाहव्यानद्धप्रगुणगुणसंख्याप्रतिभुवः॥

विराजन्ते नानाविधमधुररागाकर भुवां।

त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसीमान इव ते॥

उल्लेख्य है कि भगवद्पाद आद्य शंकर काशी आये थे। अतः तत्कालीन काशी में भी संगीत स्तुतिगान राग, ग्राम आदि गति गमक से युक्त रहे होंगे।¹

भारतीय परम्परा में ऋषि को मंत्रदृष्टा कहा जाता है। औलिया और संतों को एक ही श्रेणी में रखा जा सकता है। इसी प्रकार परमतत्व के द्रष्टा, निर्मल मत और समदर्शी लोकोपकारी संगीत से जुड़ी संत परम्परा में भाव और भक्ति के साथ योग और भागवद् धर्म, गुह्य साधना, नादोपासना और सुरति इन सभी का प्रभाव एवं व्यवहार इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होता है। समस्त संत काव्य का प्रधान विषय धार्मिक तथा दार्शनिक ही रहा है। इन सभी की रचनाओं में परमतत्व में लीन होने की प्रवृत्ति दीखती है और इसके लिये अधिकांश सन्तों ने सशक्त अनुभूति एवं भावाभिव्यक्ति के लिये संगीत का सहारा लिया है। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम तथा समर्पण भावना जिसे भक्ति कहते हैं, जिसके द्वारा सभी सन्त जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुये तथा जगत् को भी सत्य का संदेश देने में समर्थ रहे। नवधा भक्ति में गान को श्रेष्ठ माना गया है-

पूजा कोटि गुणं स्तोत्रं, स्तोत्रात्कोटि गुणो जपः।

जपात्कोटि गुणं गानं, गानात्परतरं नहि॥

उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक, पश्चिम में गुजरात से पूर्व में बंगाल तक सभी सन्तों ने अपनी अनुभवगम्य साधना को अपनी-अपनी क्षेत्रीय भाषा के द्वारा जनसमुदाय तक पहुँचाने का कार्य किया है। उन्होंने ईश्वर की सगुण और निर्गुण दोनों रूपों में साधना का मार्ग बताया है। सगुण उपासकों ने भगवद्स्मरण, दर्शन और कीर्तन तीनों का आश्रय

1. शंकर दिग्विजय

लिया। जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, चैतन्य महाप्रभु, नरसी मेहता, महाप्रभु वल्लभाचार्य जी, सूरदास, मीराबाई, तुलसीदास जी, पुरंदरदास, त्यागराज, मुत्थु स्वामी, दीक्षितार, श्यामा शास्त्री, दक्षिण के आलवार, अन्नमाचार्य, तुकाराम, ज्ञानेश्वर महाराज, स्वामी हरिदास, गुरुनानक, कबीर, रैदास पलटुदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, तुलसी साहब, सूफी चिश्ती संत आदि अनेक संतों ने स्वर और शब्द की चेतना शक्ति से भगवान का अनन्य प्रेम प्राप्त किया। इन संतों या भक्तों की रचनाओं को भजन, स्तुति, कृति, नामकीर्तन, पद, श्लोक, नामावली, संकीर्तन, पदावली कहते हैं। मुख्य रूप से इन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित कर सकते हैं।

1. पद - धार्मिक आख्यान, भक्ति और दार्शनिक तत्त्व

2. भजन - भगवान की स्तुति और याचना

3. कीर्तन- (1) नाम संकीर्तन

(क) भजोराधा कृष्ण गोविन्द गोपाल हरे...

(ख) रघुपति राघव राजा राम

(ग) हर हर बम बम हर हर बम बम

(2) कथा संकीर्तन- किसी घटना विशेष का वर्णन करने का आख्यान

(3) गाथा संकीर्तन- किसी देवी देवता या वीर पुरुष की गाथा का गायन

(4) बम लहरी- जैसे बंगाल के बाउल गाने वाले यायावर होते हैं वैसे ही बिहार, उत्तर प्रदेश से लेकर पंजाब, गुजरात तक बम लहरी गाने वाले होते थे। ये डिमिक डिमिक डिम, डिमिक डिमिक डिम बम लहरी गाते हुये घूमते थे ये लोग हाथ में छोटी सारंगी, कमर के फेंटे पर रखे सारंगी के गज में हाथ में पकड़ने की उलटी तरफ धुंधरू बांधकर बम लहरी गाते हुये घूमते रहते थे। इनके साथ खंजडी या ढोलक बजाने वाले और राजस्थान में चंग बजाने वाले रहते थे। संगीत के उत्थान में जिन सन्तों का योगदान मिलता है, उन सन्तों की परम्परा पर संक्षेप में प्रकाश डालना अनिवार्य प्रतीत होता है।

तामिलसन्त परम्परा

तामिल के सबसे प्राचीन कवियों में तिरुवल्लुर का स्थान महत्वपूर्ण है। विद्वानों की दृष्टि में इनका समय ई०पू० पहली शताब्दी से ४वीं शताब्दी के बीच का माना गया है। सिद्ध परम्परा के तमिल कवियों में १८ प्रमुख संत कवियों का नामोल्लेख है जिनमें अरब और चीन तक के संतों के नाम मिलते हैं।^१ तिरुवल्लुर की परम्परा, सिद्ध काव्य धारा में सिद्ध लोगों के नाम भी मिलते हैं। यह परम्परा ५वीं से १२वीं शताब्दी तक और तत्पश्चात् १४वीं शताब्दी में भी मिलती है। उत्तर भारत की नाथ और सरहपा परम्परा के समान यह परम्परा भी सिद्ध परम्परा है। ऐसा माना जाता है कि काश्मीर से तिरुवल्लुर आये और तिरुमुलर तामिल भाषी क्षेत्र में जा बसे।^२

आलवार परम्परा

संगीत से जुड़ी दूसरी परम्परा आलवार संत परम्परा है। इस परम्परा में विष्णु और नारायण के साथ परब्रह्म का माधुर्य, प्रेम और भक्तिपूर्ण रचनायें भारतीय संगीत परम्परा में जुड़ी हैं। दक्षिण भारत में प्रसिद्ध स्वामी रामानुजाचार्य के दादागुरु नाथमुनि (पृ०सं० १७७) ने सर्वप्रथम, “नाडायिर प्रबंधम्” अर्थात् ४००० भजनों का संग्रह के नाम से संग्रहित किया था जिनका पाठ वहां के मन्दिरों में अब तक होता आ रहा है।^३ ये भजन प्रसिद्ध आलवार भक्तों की रचनायें हैं। उक्त संग्रह कभी-कभी “तमिलदेव” कहकर भी पुकारा जाता है।^४ और दक्षिण भारत के मंदिरों में बड़ी श्रद्धा से गाया जाता है। विप्रनारायण आलवार आदि पुरुष भक्तों के साथ भक्तिमति अंदाल का स्थान भी उच्चतम है।

नायनार परम्परा

यह भी सन्तों की भक्ति प्रधान परम्परा है। नायनार सिद्ध परम्परा ५वीं

-
१. द राइटिंग आफ तमिल सिद्धान्त- द सन्त, कै. कैलाशपथी पृ० ३८८
 २. वही पृ० ३९०-९१
 ३. संत काव्य धारा- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, भूमिका पृ० १७
 ४. वही

शताब्दी तक बहुत प्रचारित हो चुकी थी। तिरुवल्लुर की परम्परा के समान ही इसमें भी जाति-पाति के भेद को स्थान नहीं था। यह संप्रदाय शिव भक्ति से ओत-प्रोत है। तामिल के प्रसिद्ध ग्रंथ “पेरीय पुराणम्” में 63 शैव सन्तों का उल्लेख मिलता है।

कर्नाटक की सन्त परम्परा

कर्नाटक और उससे दूर तक के क्षेत्रों में सन्त वसवेश्वर की वीर शैवमत की परम्परा ऊंच-नीच का भेद नहीं मानती। इस लिंगायत परम्परा में भक्ति ज्ञान और वैराग्य को सर्वसुलभ बना दिया है। वसवेश्वर का समय लगभग 12वीं शताब्दी माना जाता है। इस परम्परा में सिद्ध महात्मा, सिद्धराम अलंप्रभु, चेन्नवसक आदि वीर शैव भक्तों के साथ अक्क महादेवी भी वसव की समकालीन मानी जाती है।

तेलुगू संतपरंपरा

संत वेमना 1422-1480 ईस्वी के तेलुगू के अत्यन्त लोकप्रिय सन्त है। यह भी रूढ़िवाद और जाति-पाति भेद-भाव के विरोधी थे, बाह्याडम्बरों को तिरस्कृत करने वाले थे। यह भी शैव भक्त थे। अहिंसा, सदाचार, आत्मतृप्ति इनकी प्रमुख शिक्षा है।¹ दक्षिण भारत के एक और सन्त ताल्लपाक अन्नमाचार्य जिनका जन्म 1424 ईस्वी में आन्ध्र प्रदेश में हुआ था। ये व्यंकटेश्वर थे भक्त थे। इनके श्लोक संकीर्तन ही हैं।² ये मधुराभक्ति के श्रृंगार रस के उपासक थे। इनकी रचनाओं में 100 से अधिक रागों का प्रयोग मिलता है। कुछ उसमें से आज अप्रचलित हैं जैसे आबाली, सौराष्ट्र, गुर्जरी, अमर सिंधु। कुछ राग जैसे मुखारी, शंकराभरण, कांभोजी, देवगांधारी, अहीरी, श्री भैरवी आज भी प्रसिद्ध हैं। इन्होंने रागमालिका व तालमालिका की रचना की है। जो मालवगौला से शुरू होकर श्री से समाप्त है। इसके बीच इनसे संबंधित राग रामक्रीया, वराली, बौली, पादी और नाट इनका प्रयोग किया है। अन्नमैया को दक्षिण के लोग नारद या तुंबरू का अवतार

1. श्री बलशौरि रेड्डी- तेलुगू साहित्य का इतिहास- पृ० 109

2. आर०ए० जयंथ, तल्लपक अन्नमाचार्य, पृ० 1

मानते हैं।

स्वामी तिरूनाल

ये दक्षिण भारत के सन्त, इन्होंने गणेश, आंजनेय, शिव, कार्तिकेय, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती आदि देवी देवताओं पर कृतियाँ रची हैं। पद्मनाभ के प्रति इनकी भक्ति उल्लेखनीय है। इनकी भक्ति मंजरी में 1008 श्लोकों का संग्रह है। ये नवधा भक्ति द्वारा पद्मनाभ की भक्ति करते हैं।

कर्नाटक संगीत की त्रिमूर्ति

श्री श्यामा शास्त्री, सन्त त्यागराज, स्वामी मुत्थुस्वामी दीक्षितर इनकी कृतियाँ सब भक्ति रस से ओतप्रोत हैं और कर्नाटक संगीत का आधार हैं। वे सब भक्ति रस से परिपूर्ण हैं। ये कर्नाटक संगीत की त्रिमूर्ति कहलाते हैं। श्री मुत्तुस्वामी दीक्षितर ने श्री चिदम्बरनाथ योगी नामक एक विद्वान के साथ काशी आकर पांच साल तक हिन्दुस्तानी संगीत के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। अब भी काशी के हनुमान घाट, केदार घाट आदि स्थानों को देखने से हम दक्षिण भारत में हैं ऐसा प्रतीत होता है। कर्नाटक संगीत के सन्त पुरंदरदास की लगभग चार लाख पचहत्तर हजार कृतियाँ, जो वेद एवं उपनिषद का सार माना जाता है, “देवरनामा” एवं “दासर पदमलु” नाम से जानी जाती है। इनकी रचनायें कन्नड़ में हैं। सन्त त्यागराज स्वामी का नाम भी कर्नाटक शास्त्रीय संगीत में प्रसिद्ध है। ऐसी मान्यता है कि इन्होंने भक्ति रस से ओतप्रोत पांच लाख कृतियों की रचना की थी। पश्चात् भगवान राम भक्ति के महाश्रेष्ठ श्री त्यागराज जी ने चौबीस हजार कृतियाँ बनाईं। कर्नाटक संगीत में इन्हीं कृतियों को सर्वाधिक गाया बजाया जाता है। श्री त्यागराज स्वामी का जन्म सन् 1759 में दक्षिण के तंजौर जिले के तिरूवारूर नामक क्षेत्र में एक तेलगु ब्राह्मण के कुटुंब में हुआ था। ये राम भक्त थे। इनकी कृतियों में धन-राग-पंचरत्नम्, कोउर-पंचरत्नम् उत्सव संप्रदाय कृतियाँ, नौकाचरित्रम् आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें से पंचरत्नम् नामक पांच धन रागों (नाट, गौल, आरभी, वराली और, श्री) में बनाई कृतियों को आराधना महोत्सव के दिन गायन-वादन अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

महाराष्ट्रीय संतपरंपरा

महाराष्ट्र में भी भक्ति के अनेक सम्प्रदाय विकसित हुये। महानुभाव सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय, वारकरी सम्प्रदाय और समर्थ सम्प्रदाय। नाथ सम्प्रदाय संत ज्ञानेश्वर महाराज के बाद वारकरी सम्प्रदाय में अंतर्निहित हुआ। यह सम्प्रदाय महाराष्ट्र में नामस्मरण, कीर्तन, आराधना, सत्संग, हरि के स्थान की यात्रा के द्वारा जाति-पाति के भेद को, कुल वर्ण के भेद को भुलाकर श्री कृष्ण की बिठल के स्वरूप में पूजा उपासना रूप में पंढरपुर में विकसित हुआ। वस्तुतः यह वैष्णव भक्ति का ही संप्रदाय है। वारकरी सम्प्रदाय में नवधा भक्ति की मान्यता है। अखण्ड नाम स्मरण और हरिकीर्तन के गेय रूप का बहुत महत्व है जिसमें तानपूरी, झांझ, करताल, मंजीरा बजाकर विभिन्न रागों में कीर्तन गाने को विशेष महत्व दिया है। वारकरी सम्प्रदाय भागवत धर्म का विकसित रूप है। यह भागवत धर्म बहुत प्राचीन है। ज्ञानेश्वर महाराज से भी पहले का है। इस सम्प्रदाय के मुख्य प्रचारक ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम हुये।¹ निवृत्तिनाथ, मुक्ताबाई, सखुबाई भी इसी सम्प्रदाय के हैं। वारकरी सम्प्रदाय अद्वैतवादी होये हुये भी भक्ति प्रधान है।² वारकरी सम्प्रदाय के दूसरे प्रचारक नामदेव जिन्होंने ज्ञानेश्वर महाराज को अपना प्रेरणा श्रोत माना है। इनकी हिन्दी में भी रचनायें मिलती हैं। ये पंजाब तक पहुँचे थे। काशी के पंचगंगा घाट पर भी रहें और वहां उन्होंने एकनाथी भगवान का अधिकांश भाग लिखा है। तैलंगस्वामी के मठ में उनके द्वारा स्थापित विष्णु की मूर्ति आज भी है। संवत् 1347 के आसपास बनारस में मराठियों ने एक बहुत बड़ा यज्ञ कराया था जिसमें सन्त ज्ञानेश्वर महाराज पधारे थे। 1658 ईस्वी में समर्थ गुरु रामदास बनारस आये थे।

-
1. श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पागारकर : श्री तुकाराम चरित्र, अनु० लक्ष्मण नारायण गर्दे पृ० 269
 2. कृ० गो० बानरवेडे- संतनामदेव और उनका हिन्दी साहित्य। प्रकाशन विभाग भारत सरकार पृ० 56

गुजरात की संतपरम्परा

गुजरात की सन्त परम्परा में नरसी मेहता ने ज्ञानगर्भित रचनाओं के साथ भक्ति और शृंगार की रचनाओं से भी जनमानस पर अमिट छाप छोड़ी। नरसी मेहता श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके काव्य में शृंगार भक्ति के साथ ज्ञान और वैराग्य के भी दर्शन होते हैं। दूसरे संत-संतअखा अखण्ड संत कहे जाते थे।¹ (1630-1715 सं०) इन्होंने तत्त्वज्ञान की बातों को बहुत सरल तरीके से गेय पदों में समझाया है। इन संतों ने भी गेय रूप को महत्व प्रदान किया है। 17वीं शती में गुजराती में इन्द्रदेव, कवि रामचन्द्रजी, कृपाराम जी हुये जिनके भजन अभी भी गाये जाते हैं।

काश्मीरी संत परम्परा

काश्मीरी संतों की परम्परा में शैव संतों की प्रतिनिधि के रूप में संत लल्ला या लल्लेश्वरी का नाम उल्लेखनीय है (जन्म 1392 वि०सं०) इन्होंने भी बाह्याडम्बरो का निषेध किया है। इनका कहना है कि शिव प्रत्येक अणु में है। हिन्दु मुसलमान का भेद भूलकर उसकी शरण में जावों। बाहर की वस्तुओं की परवाह न करके अपने विचारों को अपने भीतर ही केन्द्रित करो जिससे तुम्हारा संदेह जाता रहे।² इस प्रकार अंतःस्साधना को महत्व दिया है। काश्मीर के अभिनवगुप्तपादाचार्य द्वारा प्रवर्तित प्रत्यभिज्ञादर्शन संतों की वाणी द्वारा जन सुलभ हुआ है। आगम प्रधान अभिनवगुप्तपादाचार्य गायक, वीणावादक, नर्तन गुरु थे। उत्पल देव शिवस्तुति गाते हुये पागल की तरह घूमते थे।

आसाम के सन्त

संत शंकरदेव ने भी भगवान को आधार मानकर रचनायें की। ये कायस्थ थे। इनका जन्म 1448 ई० में आसाम के नौगांव जिले के बरदोवा गांव में हुआ था। इनका संप्रदाय महापुरुषिया नाम से आसाम में प्रचलित है। श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म स्वीकार कर भक्ति नामस्मरण और नामकीर्तन

1. डॉ० अम्बाशंकर नागर-गुजराती संतों की हिन्दी वाणी पृ० 79
2. परशुराम चतुर्वेदी- उत्तरी भारत की संत परम्परा पृ० 101

प्रधान मानकर अन्य कर्म बाधक माने। श्री शंकरदेव के प्रतिपादित भागवत धर्म में मूर्तिपूजा, जाति-पाति, वर्ण भेद को कोई स्थान नहीं है। राम और कृष्ण दोनों की भक्ति से आत्मज्ञान कराने वाली परम्परा शंकरदेव के माध्यम से आसाम में विकसित हुई। इन्होंने गया, काशी, वृन्दावन, मथुरा आदि अनेक जगहों पर यात्रायें की थी। इनके सम्प्रदाय का नाम “एक शरण नाम धर्म” है। ये वैष्णव थे इन्होंने शास्त्रीय संगीत और नृत्य को जनसाधारण तक पहुँचाया। पद के साथ छः नाटक जिनमें अनेक गीत हैं उनकी इन्होंने रचना की।

बंगाल की संत परम्परा

आदिकालीन बंगला काव्य रचनाओं द्वारा वैष्णव सहजिया और गौड़ीय वैष्णव संप्रदायों का प्रचार और प्रसार हुआ। इसके प्रवर्तक वैष्णव कवि जयदेव, चंडीदास, विद्यापति और श्रीगौरचन्द्र चैतन्य महाप्रभु हुए। बंगला भाषा के कवि चंडीदास जिन्होंने राधा कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित काव्य रचना की। चैतन्य महाप्रभु ने राधाकृष्ण की रागानुगा भक्ति का प्रचार किया। जयदेव के पद प्रबंध गायन से बंगाल में पदावली कीर्तन का विकास हुआ और चैतन्य महाप्रभु ने बहिरंग में राधा रूप और अंतरंग में श्रीकृष्ण रूप इस प्रकार राधा कृष्ण के सम्मिलित रूप का बंगाल में नाम संकीर्तन का प्रचार किया। चण्डीदास के गीतों में भी राधाकृष्ण के विरह का वर्णन, श्रीकृष्ण की बांसुरी सुनकर राधा का विह्वल होना इत्यादि मार्मिक वर्णन गेय रूप में प्राप्त है। एक और सम्प्रदाय बाउल संप्रदाय बंगाल में विकसित हुआ। ये अधिकांशतः सूफियों से मिलते जुलते हैं। इनकी साधना प्रेम साधना है। वे ब्रह्मा या परमात्मा के प्रति सीधा प्रेम करने की चेष्टा करते हैं। बंगाल के इन सब संतों के पद गेय रूप में प्रसिद्ध हैं। चैतन्य मत में ब्रजलीला गान अभीष्ट है। इसमें परकीया भाव में रसोत्कर्ष स्वीकार किया है। बंगाल के संतों में जयदेव (12वीं शताब्दी का उत्तरार्ध) जो विद्यापति और चण्डीदास की परम्परा के प्रवर्तक माने जाते हैं, गीत गोविन्द के रचयिता यही जयदेव है, इसमें मतभेद है। ओडिसा के जगन्नाथ मंदिर में गाये जाने वाले गीत गोविन्द के पदों के राग और आज गाये जाने वाले रागों में भिन्नता

भी दीखती है। 24 गीतों को 12 राग और पांच तालों में पदगान मिलता है। गीतगोविन्द के राग मालवगौड़ा, गुर्जरी, बसन्त, रामक्री या रामकली, कर्नाट (कानड़ा), देशाख, देशवराड़ी, विभास, गोंडकीरी, मालव, भैरव, भैरवी, ताल-यति, एकताली, रूपक, निहसार और अष्टताल है।

बिहार के मैथिल संत विद्यापति

आप का जन्म 1360 ईस्वी में बिहार के दरभंगा जिले में हुआ। इनकी अधिकतर पदावलियाँ राधाकृष्ण के प्रेम के शृंगारिक वर्णन के रूप में हैं। इनकी पदावलियाँ आज भी बिहार में गेय रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका प्रभाव बंगाल के चैतन्य महाप्रभु (1486-1533), आसाम के शंकर देव और ओडिसा के रामानन्द राय के गीतों पर भी पड़ा जिनमें प्रेमगीत प्रमुख हैं। चण्डीदास ने भी विद्यापति की कई पंक्तियाँ उद्धृत की है। विद्यापति के पदों में शिव, गंगा, दुर्गा, कृष्ण, राधा, गोपियाँ, इनकी स्तुति और प्रेमगीत गेय रूप में बिहार में प्रचलित हैं। बंगदेश में भी वैष्णवों में विद्यापति एक महान् कवि के रूप में स्वीकृत हैं। गियार्सन ने 1882 ई० में प्रकाशित उनके मैथिल पद संग्रह में विद्यापति रचित केवल 76 राधाकृष्ण लीला पदों को उद्धृत किया है। “मैथिली कोकिल” होने पर भी बंग काव्य साहित्य को प्रभावित किया है। श्यामासंगीत के गायक राम प्रसाद भी बंगाल प्रसिद्ध संत है। काशी में इन सबकी परंपरा आज भी सुरक्षित है। दशाश्वमेध घाट पर आज से 25 वर्ष पूर्व तक कीर्तन होता था जिसमें कथानक का भी प्रयोग होता था। आज गौडीय सम्प्रदाय का मठ सोनारपुरा में है।

पंजाब की संत परम्परा

इस संत परम्परा का आरम्भ गुरूनानक जी से माना जाता है। ये मक्का, मदीना, बगदाद के साथ भारत में भी दिल्ली, हरिद्वार, पुरी, कामरूप के साथ काशी भी आये थे। इन यात्राओं में इनके साथ मरदाना नाम का एक मुसलमान साथी रवाब जैसा वाद्य लिये हमेशा साथ रहता था। जिनके साथ ये भजन करते थे। इनकी परम्परा गुरूओं की परम्परा कहलाती है। इस गुरू परम्परा में गुरू अर्जुन देव जी ने “गुरू ग्रंथ साहेब” नामक ग्रंथ संकलित किया जिनमें मध्यकालीन संतों की अमूल्यवाणी का संकलन है,

120/संगीतमय बनारस

इनका “गुरुग्रंथ साहेब” ही पूज्य ग्रंथ हैं। इस ग्रंथ में केवल सिक्ख गुरुओं की ही नहीं प्रत्युत नामदेव, रैदास, कबीर आदि कुछ अन्य संतों की भी रचनायें हैं। इन गुरुओं की वाणियों में कोई परिवर्तन मान्य नहीं है। सलोको में रचयिता के नाम दिये हैं। गुरुओं की रचनाओं को “महलों” के अन्तर्गत संग्रहित किया है। जैसे- गुरुनानक महला 1, गुरु अंगद महला 2, गुरु अमरदास महला 3, गुरुरामदास महला 4, गुरु अर्जुनदेव महला 5। रचनायें रागानुसार बद्ध है। इस ग्रंथ में जपुजी जिसका सिक्ख धर्म में प्रथम स्थान है उसका विशेष अवसरों पर पाठ किया जाता है। जपुजी के बाद भिन्न-भिन्न रागों के कुछ विशिष्ट पद दिये हैं। फिर 31 विभिन्न रागों के अन्तर्गत पदों की एक बहुत बड़ी संख्या है। रागमाला, रागबद्ध पदों के अन्तर्गत अष्टपदिया, सुखमनी थित्ती वार, बावन अक्खरी आदि हैं। किसी सन्त की सब रचनायें एक ही स्थल पर न देकर रागों के अनुसार बांटी है।¹ इनको गाने वाले रागीजी कहलाते हैं। इनकी बानियों (शब्द) को गाकर ही प्रस्तुत करते हैं। अतः इनके यहां संगीत को बहुत ही अधिक महत्व हैं। हर अध्याय राग के नाम से है। गुरु ग्रंथ साहित्य में “ततकरा रागों” संग्रह है। इसके भीतर रागों के नाम के आधार पर अध्याय बँटे हैं।²

गुरुग्रंथ साहिब जी में उल्लिखित “ततकरा रागों का”

1. जणु नीसाणु, 2. सोदरुमहला, 3. सुणि बड़ा महला, 4. सो पुरखु महला, 5. सोहिला महला, 6. सिरी रागु, 7. रागु माझ, 8. रागु गडड़ी, 9. रागु आसा, 10. रागु गुजरी 11. रागु देवगंधारी, 12. रागु बिहागड़ा, 13. रागु बडहंसु, 14. रागु सोरठि, 15. रागु धनासरी, 16. रागु जैतसरी, 17. रागु टोड़ी, 18. रागु बैराड़ी, 19. रागु तिलंग, 20. रागु सूही, 21. रागु विलावल, 22. रागु गौंड, 23. रागु रामकली, 24. रागु नट नाराइन, 25. रागुमाली गडड़ा, 26. रागु मारु, 27. रागु तुखारी, 28. रागु केदार, 29. रागु भैरउ, 30. रागु बसंत, 31. रागु सारंग, 32.

1. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास- खण्ड-2 पृ० 166

2. गुरुग्रंथ साहेब

रागु मलार, 33. रागु कानड़ा 34. रागु कलिआन, 35. रागु प्रभाती, 36.
रागु जैजावती, 37. रागमाला।

रागमाला

ओं सतिगुर प्रसादि॥ राग माला॥ राग एक संगि पंच बरंगन॥ संगि
आलापहि आठउ नन्दन॥ प्रथम राग भैरउ वै करही॥ पंच रागनी संगि
उचरही॥ प्रथम भैरवी बिलावली॥ पुनिआ की गावहि बंगली॥ पुनि
असलेखी की भई बारी॥ ए भैरउ की पाचउ नारी॥ पंचम हरख दिसाख
सुनावहि॥ बंगाल मधु माधव गावहि॥१॥ ललत बिलावल गावही अपुनी
अपुनी भांति॥ असट पुत्र भैरव के गावहि गाइन पात्र॥१॥ दुतीआ
मालकउसक आलापहि॥ संगि रागनी पाचउ थापहि॥ गोडकरी अरु देव
गंधारी॥ गंधारी सी हुती उधारी॥ धंनसरी ए पाचउ गाई॥ माल राग
कउसक संग लाई॥ मारु मसतअंग मेवारा॥ प्रवल चंड कउसक उभारा॥
खउ खट अउ भउरानद गाए॥ असट माल कउसक संग लाए॥१॥ पुनि
आइअउ हिंडोलु पंच नारि संगि असट सुत॥ उठहि तान कलोल गाइन तार
मिलावही॥११॥ तेलंगी देवकरी आई॥ बसंती संदूर सुहाई॥ सरस अहीरी
लै भारजा॥ संग लाई पांचउ आरजा॥ सुरमान्द भासकर आए॥ चन्द्र बिंब
मंगलन सुहाए॥ सरसबान अउ आहि बिनोदा॥ गावहि सरस बसंत कमोदा॥
असट पुत्र मै कहे सवारी॥ पुनि आई दीपक की बारी॥१॥ कछेली पट
मंजरी टोडी कही अलापि॥ कमोदी अउ गूजरी संग दीपक के थापि॥१॥
कालंका कुंतल अउ रामा॥ कमल कुसम चंपक के नामा॥ गउरा अउ कानरा
कल्याना॥ असट पुत्र दीप के जाना॥॥॥ सभी मिली सिरी राग वै
गावहि॥ पांचउ संग बरंगन लावहि॥ बैरारी करनाटी धरी॥ गवरी गावहि
आसावरी॥ तिह पाछै सिंधवी अलापी॥ सिरी राग सिउ पांचउ थापी॥१॥
सालू सागरा अउर गोड गंभीर॥ असट पुत्र स्त्री राग के गुंड कुंभ हमीर॥
१॥ खसटम मेघ राग वै गावहि॥ पांचउ संगि बरंगन लावहि॥ सोरठि गोड
मलारी धुनी॥ पुनि गावहि आसा गुन गुनी॥ ऊचै सुरि सूहउ पुनि कीनी॥
मेघ राग सिउ पाचउ चीनी॥१॥ बैराधर गजधर केदारा॥ जबली धर नट
अउ जलधारा॥ पुनि गावहि संकर अउ सिआमा॥ मेघ राग पुत्रन के

नामा॥१॥ खसट राग उनि गाए संगि रागनी तीस॥ सभै पुत्र रागन के
अठारह दस बीस॥१॥१॥१॥

गुरुपद प्राप्त पोथियों में सर्वगी, पंचबानी पोथियों में भी रचनाओं को अंगो, रागों, पद-पदी, चौतीसा, आखरी साथ ही गीतात्मक रूपों में ग्रंथ किया है। बीजक में 113 से 115 पद बिना राग के दार्शनिक क्रम में है। लेकिन चांचरि, देहलि, बिरहुलि, विप्रमतीसी, चौतीसा, कहरा इत्यादि 'लोक' राग या देशी राग कहे जा सकते हैं।

'रामजहाज' बावरीपंथ की गुरुपद प्राप्त पोथी में राग

गौरी, सोरठा, नट, धवलश्री, सोरठ, बंगला, बिहाग, बिलावल, रास (राग या रंग = अभिनय?) मंगल, जोडा (सोहर जिसमें हो! हो? संबोधन लगता है), दौड़ (राग-रंग दोनों में), सारंग, धनाश्री, काफी, ईराक (पचरा से मिलता), कन्हडा, विजयादशमी (त्योहार गीत?), रामकली, बिहागड़ा, जैश्री हमेज?, गौडसारंग, मलार, भीमपलास, अरपेध? कल्याण, गंधारगौड़? गुंड? पूर्वी शंकराभवनम्? (शंकराभरणम्), केदारा, सारंगा? अरिल? (छन्द भी, राग भी) गौरीसारंग (गौडसारंग) सई? सोहर? रेखता (छन्द, राग, भाषा), पहाड़ा? (राग छन्द शायद पहाड़ी), आरती (राग आरती करते समय), ईमन, टोडी, भैरवी, हिंडोला? (राग नाम), बसंत, मनोरा? शहाना, होरी (राग?), भूमर (राग), भरिताल?, खट, शंकराभरण चैतावनी, उधवा, खयाल, परज, ललित काफी, अखेदकाफी, बिलावलकामोद, बीजै? मारू, झूलना, षटपदी? (छन्दमारग) सप्रपदी? पंचपदी? (छन्द बद्ध या राग?) अखेद?, सोरठकाफी, कोहबर (रीती और राग), लचारी (किसी भी देवता के लिये) नचारी (शिववन्दना में), सोहाग, कामोद, मुरलीवसंत? चांचर (राग भी है, छन्द भी है) घाटो।

गोपालदास की सर्वगी में राग

राग गौडी, आसावरी, रामग्री, धनाश्री, टोडी, भैरू, बिलावल, सोरठि, मारू, गुंड, सारंग, कानडौ, बसंत, माली गौडा, जंगली गौडी, ललित, मलार, नटनाराइण, सूहौ, सीधूडौ, कल्याण, जैतश्री, काफी, देवगंधार, अडाणौ, गूजरी, भाणमली, परजियो, विभास, पंभाइची, कान्हरी,

हुसेनी बंगाली, षमाइची मारू जषडी (राम रामगरी), बिहाडू आसा।

सन्त पानप की रचनाओं में राग

बिलावल, पूर्वी, कल्याण, कान्ड़ा, सोरठा, भैरव, गौरी, बरवे, गूजरी, पूर्वी, रामकली, सारंग, नट सोरठा, मलार, असावरी, भैरो, देवगंधार, आसीकीवार? इकहरा? गोरो? वसंत, राग रैमनी, सूही फारसी? धनाश्री बिहाग, बलावल? जंगला

नाथ संत परम्परा

नाथ संत शैव है। इस सम्प्रदाय में प्रमुख गुरु आदिनाथ शिव माने जाते हैं। वैसे शैव मतके उत्तर में काश्मीर से लेकर दक्षिण में तामिल तक अलग नामों से संप्रदाय प्रचलित हुये। जैसे पाशुपात, कापालिक आदि। इन शैव संप्रदायों में प्रमुख अंतर उनकी उपासना विधि में तथा बाह्याचारों में ही है। नाथ मत में गोरखनाथ का मत प्रधान है। इस नाथ संप्रदाय में एक विशेष रीति से कान में पहनाये गये चिन्ह है इसे कनफटा' मत भी कहते हैं। नाथ संतों ने हठयोग को बहुत महत्व दिया है। जिसके द्वारा वह अनहद नाद की उपासना करते हैं। नाथ पंथी संतों के अनुसार काया ही परमात्मा का आवास है उसी काया को साधने से अनहद नाद सुनाई पड़ेगा और परमतत्त्व के दर्शन होंगे। यह अनहद नाद आहत के द्वारा संगीत में साध्य है- एक रचना संगीत में प्राप्त है-

बरसै राग महलिया गगन घहराये

शून्य महल में अमृत बरसे

शोभा बरनि न जाये।

इस संदर्भ में तानसेन की एक रचना इस प्रकार है-

“अनहत शब्द उपज्यो मो घट में, ताको ध्यान धरू अष्टयाम।

षड्ज रिषभ गंधार मध्यम पंचम धैवत, निषाद पावै जो अति अभिराम।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पदारथ, चारों पाये, जब प्रकटयो नाद,

1. नाथ और संत साहित्य- डॉ० नगेन्द्रनाथ उपाध्याय, पृ० 60

ब्रह्म सहज रूप और धन-धन ज्योति स्वरूप

अचरज कर परसे रस “तानसेन कंठ ठाम” (धाम)”

ऐसी अनेक रचनायें संगीत में गेय हैं जो इन्हीं योगी, नाथों, सिद्धों, संतों, द्वारा प्राप्त हैं। काशी में गोरखनाथ की टीला, गैबीनाथ का मंदिर है। ये नाथ, शून्य, शब्द और सूरति के साधक हैं। इनकी भाषा को सधुक्कड़ी की संज्ञा दी गई है। वे भी बाह्याडम्बरों को छोड़कर अंतस्साधना को महत्व देते हैं। नाथ संप्रदाय के अनुसार सर्वत्र शब्द ही व्याप्त है वही अनहत नाद है-

सबदहि ताला सबदहि कुंजी, सबदहि सबद जगाया।

सबदहि सबद सूं परचा हुआ, सबदहि सबद समाया॥¹

संत दादू दयाल और दादूपंथी संत परमात्मा

इनका पंथ दादूपंथ नाम से प्रसिद्ध है। ये जाति के मुसलमान धुनिया माने जाते हैं। दादू पंथ की विशेषता शास्त्राध्ययन तथा लिखित रूप में संत बानियों की रक्षा पर विशेष बल दिया है। इनके जन्म के अलग वृत्तांत प्राप्त होते हैं। भाषा की दृष्टि से ये राजस्थान के होने की संभावना है। इनके भी काशी² आने का उल्लेख मिलता है। इनकी साधना कबीर के ही समान रही होगी।³ दादूदयाल की कुछ रचनायें पंजाबी, फारसी में भी मिलती हैं। इन पर रागों के नाम भी उल्लिखित हैं। राग माली गौड़ी, 12, राग कानडो 5।⁴ अतः मानना पड़ता है कि दादूदयाल को भी संगीत का ज्ञान अवश्य था। दादूदयाल पंथ के संत रज्जब जी, सुंदरदास जिनके काशी आने का और अस्सीघाट पर (सं० 1661 से 1682 तक) रहने का उल्लेख⁵ मिलता है। सुन्दरदास को संत तुलसीदास का सत्संग मिला था। सुन्दरदास ने जहांगीर, शाहजहां और औरंगजेब का शासन काल देखा था। इन्होंने कुल 4 ग्रन्थ

1. गोरख वानी- पृ० 8/21

2. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास खंड 2 पृ० 182 संत दादूदयाल और दादू पंथी।

3. परशुराम चतुर्वेदी खंड-2 पृ० 187

4. परशुराम चतुर्वेदी खंड-2 पृ० 190

5. परशुराम चतुर्वेदी खंड-2 पृ० 199 पृ० 203

अध्याय-3 (क) सन्तों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव/125

लिखे। दादूदयाल के तीसरे शिष्य गरीब दास उच्चकोटि के संत, कवि संगीतज्ञ एवं वीणावादन में निपुण थे।¹ इसके अतिरिक्त वषना जो कवि के साथ संगीतकार भी थे। भीषजन और वाजिद ये नाम भी मिलते हैं। इस प्रकार दादूदयाल के 52 शिष्यों के नाम मिलते हैं। इनके उपलब्ध ग्रंथ में “ब्रह्मलीला” नामक लघु ग्रन्थ में 43 साखियाँ, 29 पद जिनमें राग गौड़ी, माली गौड़ी, कल्याण कान्हड़ौ, काफी केदारा, मारू एवं रामगिरी नामक शीर्षकों में दिये गये हैं।² दादूदयाल के शिष्यों में ननगोपाल की रचना दादू जनम लीला परची “बारहमांसा” चितावणी आरती अनेक रचनाओं में प्रकाशित पदों में जो राग हमीर कल्याण, शुद्ध कल्याण, कनरोनाइकी, दरबार कनरो, काफी, केदारो, रामकली, असावरी, जौनपुरी, सारंग, मलार, नटनारायण, सोरठा, बसंत भैरू, बिलावल, जैतश्री, धनाश्री आदि विभिन्न राग नाम मिलते हैं।³ अतः दादूदयाल पंथी संत संगीतानुरागी थे। इसमें संदेह नहीं है। यह बात इन रागों के उल्लेख से स्पष्ट सिद्ध है।

सरभंगी रज्जबदास- सरभंगी में राग

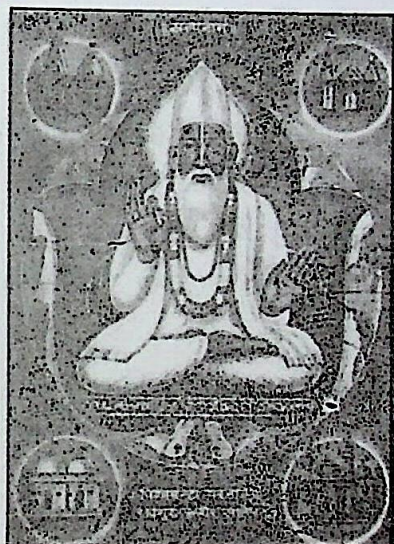
1. भैरू, सारंग, गौड़ी, ललित, कनडो, रामकली, आडाणौ, राग प्रजियौ?, केदारा, सोरठी, केदारौ, मारू, बिलावल, काफी, श्रीरागुमहला, धनाश्री, गुंड?, टौडी, सोरठि, रागटग? नट, मालीगौडा, बिलावल, खंभाइची, असावरी, गुंड?, जैतश्री, धनाश्री, रामग्री? (रामकली), कल्याणी, कल्याण, देवगंधार, राग सीघूडा? (सिंधुरा), सिंघूडी? रागकली? सीघूडा? राम रामग्री? राग भांझमली? परज्यो? गंधारी मलार।

सन्त कबीर

कबीरदास जी ने स्वयं को काशी का जुलाहा कहा है। कुछ विद्वान इन्हें जन्मना मुसलमान कुछ जन्मना हिन्दू मानते थे। इनकी रचनाओं में दोनों धर्मों का प्रभाव दिखता है। कबीर आत्माराम के भक्त थे। इनके गुरु का नाम

1. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास खंड 2 पृ0 203
2. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास खंड 2 पृ0 205
3. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास खंड 2 पृ0 207

रामानन्द बताया जाता है। गुरु और गोविन्द में गुरु की महत्ता अधिक बताई है। बीजक कबीर पंथियों का धर्मग्रंथ है। ग्रंथ साहेब में कबीरदास के पद हैं। कबीर ग्रन्थावली में साखियाँ सबद और रमैणियाँ हैं।



संत कबीरदास

कबीर की रचनाओं में नाथपंथ, वेदांत, वैष्णवमत, सूफीमत सबका मिला जुला रूप मिलता है इनकी भक्ति साधना में आत्मविचार, नामजप सतसंगति और उसके उपदेश का बहुत बड़ा महत्व है। कबीर के काव्य की भाषा उस समय की सामान्य जनभाषा है। उनके छंद मुख्यतः साखी, दोहा, शब्द विभिन्न रागों के गेय पदों में तथा रमैणियों, चौपाइयों के साथ दोहे हैं जिनमें मात्रा का बहुत ध्यान नहीं रखा गया है। इनके नाम पर काशी में कबीरचौरा में कबीर मठ है।

कबीर के सबद में राग- संकलन कर्ता ठाकुर जयदेव सिंह ये सबद पंचबानी पोथियों से संकलित हैं।

इसमें निम्नलिखित रागों के नामाल्लेख मिलते हैं। रामकली, भैरव, गौरी, सोरठ, आसावरी, भैरवी, काफी, बिहागड़ा, बिलावल, धनाश्री, कल्याण, बसन्त, केदार, मल्लार, कानड़ो, सारंग, ललित, काफी।

अध्याय-3 (क) सन्तों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव/127

गुरू ग्रंथ में संत कबीर के पदों में राग - संकलनकर्ता डॉ० रामकुमार वर्मा

सिरी-2 पद, गउडी-46 पद, आसा-19 पद, सोरठी- 3 पद,
तिलंग-3 पद, तिलंग-4 पद, गौड़-6 पद, रामकली-8 पद, केदारा-6 पद,
भैरउ-12 पद, विभास प्रभाती-5 पद

कबीरबानी- बानी पोथियों में राग

राग गौड़ी-150 पद, रामकली 46 पद, आसावरी-52 पद, सोरठी-
36 पद, केदारो-20 पद, मारू-3 पद, टोडी-2 पद, भैरू-35 पद,
बिलावल-10 पद, ललित-3 पद, वसंत-11 पद, माली गौड़ा-3 पद,
कल्याण-1 पद, सारंग-1 पद, मल्लार-2, धनाश्री-6, रमैणी-राग सुहा।

रैदास

ये उच्चकोटि के संत काशी के निवासी है। इनका जन्म सीरगोवर्धन
गांव में माघ पूर्णिमा को हुआ। (का०हि०वि०वि० के पास) ये भी निर्गुण



संत रैदास

के ध्यान में लगे थे। अपने को इन्होंने अपनी रचनाओं में “रविदास चमारा”¹ कहा है। ये अनपढ़ थे। मन चंगा तो कठौती में गंगा कहने वाला रैदास, इनकी रचनाओं में भी रागों के नामोल्लेख उदा० ग्रंथ साहेब पृ० 570 सोरठ ग्रंथ साहेब पृ० 422, आसा गौड़ा मिलते हैं। इसी प्रकार पीपा, सन्ना, कमाल, सब इसी सम्प्रदाय के सन्त हैं। इनकी रचनाओं में राग नाम का उल्लेख देखकर प्रतीत होता है कि ये सभी सन्त उस समय की राग परम्पराओं से अवश्य परिचित थे।

रैदास के पदों में राग

रामग्री, गौरी, जगलगौरी, असावरी, सोरठ, भैरू, बिलावल, टोडी, गुंड, सारंग, कनाड़, केदार, जैतश्री, धनासिरी।

आदिग्रंथ में उल्लिखित पदों में

भैरठ, रामकली, गौडी, सिरी, गुजरी, आसा, मलार, सोरठी, केदार, सूही मारू आदि ग्रन्थ के पद जो राजस्थानी हस्तलिखित में नहीं हैं उनमें उल्लिखित राग-गौरी, आसा, सोरठी, धनासिरी, सूही बिलावलू, गोडा, मारू, बसंत, मलार।

उड़ीसा संत परम्परा

इन कवियों में पंच सखा का पंचमहापुरुष प्रमुख है। इनमें निर्गुण, शून्य को महत्व दिया है। पंचसखा में अच्युतानन्द दास की “नित्यरास” रचना में श्रीकृष्ण एवं राधा के नित्य विहार के वर्णन उपलब्ध हैं। योग और तंत्रपरक साधना को महत्व दिया गया है।

सूफी सन्त परम्परा

“सूफी” शब्द की उत्पत्ति “सूफ” ऊनी कंबल से, या सफा (स्वच्छता) से वह धार्मिक एवं नैतिक जगत में एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी है। इनके अनुसार सांसारिक प्रेम (इश्क मजाजी) ईश्वरी प्रेम (इश्क हकीकी) का प्रथम सोपान है। इसी के द्वारा मनुष्य स्वयं को मिटाकर खुदा बनकर इश्क

1. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास खंड 2 कबीर और उनके समकालीन संत पृ० 144

मजाजी से इश्क हकीकी में परिणत होता है। सूफी ईश्वर के ध्यान में आत्म विस्मृत होकर गाता, बजाता, नाचता है और आत्मानन्द में लीन हो जाता है। इस मत का विकास प्रमुख रूप से ईरान में हुआ। भारतीय सूफी सन्तों को भी इसने प्रभावित किया। सूफी विचारधारा में परम प्रियतम परमात्मा के प्रति आत्मसमर्पण या शरणागति, आध्यात्मिक प्रेम, सांसारिक वैभव, पद प्रतिष्ठा आदि को तुच्छ मानते हुये अहंकार शून्य निर्मल हृदय से प्रियतम के गुण कीर्तन, नामस्मरण तथा उसके प्रेम में तल्लीन रहते हुये उसके साथ एकाकार होने में ही जीवन सार्थक मानते हैं। भारत में सूफी मत के चार संप्रदाय विकसित हुये।

1. चिश्ती सम्प्रदाय

सूफी सम्प्रदायों में संगीत की दृष्टि से चिश्ती सम्प्रदाय बहुत महत्वपूर्ण है। इसके प्रवर्तक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती थे। इनका जन्म अफगानिस्तान में सन् 1142 ई० (सं० 1199) में हुआ। इन्होंने पंजाब, दिल्ली में रहने के बाद बाद अजमेर में स्थाई निवास बनाया। आज भी उनकी दरगाह करोड़ों भारतीय और विदेशियों की श्रद्धा का केन्द्र है। ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती संगीत मर्मज्ञता में ऐसे कव्वाल थे कि वे हिन्दी में सूफी विचारधारा के प्रतिपादक माने जाते थे।¹ इस सम्प्रदाय में “चिल्ल” एक साधना की विशेष क्रिया है जिसमें चालीस दिन तक बंद कमरे में रहकर की जाती है। पूरा समय ध्यान, जप और प्रार्थना में बिताना होता है। भारत में संगीतज्ञ भी इस प्रकार का चिल्ला साधते हैं। उनका माध्यम स्वर और लय रहता है।

इस्लाम धर्म में संगीत निषिद्ध मानते हैं। लेकिन चिश्ती सम्प्रदाय में संगीत को ही महत्व दिया गया है। ख्वाजा मुईनुद्दीन ने संगीत को आवश्यक माना है। संगीत के द्वारा साधको भावाविष्टावस्था प्राप्त होती है। संगीत की मजलिसे इस संप्रदाय में कई दिनों तक चलती हैं।

इस संप्रदाय में भारतवर्ष में अनेक संत ख्वाजा मोईनुद्दीन चिश्ती, दिल्ली के ख्वाजा कुतुबुद्दीन, शेख फरीदुद्दीन शकरगंज (पाक पत्तन के

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास पृ० 44

सुप्रसिद्ध बाबा फरीद) हजरत मखदूस, हजरत निजामुद्दीन औलिया, शेख फरीदुद्दीन, बख्तियार काफी आदि नाम प्रमुख हैं। हजरत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य खिलजी कालीन अमीर खुसरों को साहित्य और संगीत से बहुत प्रेम था। इनका जन्म भारत में ही हुआ था। खुसरों ने खमसा की रचना की थी। बनारस में होली के अवसर पर मुसलमान लोग ढोलक के साथ खमसा गाते हुये टोलियों में निकालते थे। आज यह परम्परा लुप्त सी हो गई है। खुसरों ने कुछ नये राग और नये तालों का निर्माण किया था। शेख मुइनुद्दीन चिश्ती और उनके अनुयायियों ने भारतीय भाषा और लोकाचार को अपनाया। निजामुद्दीन चिश्ती के युग में उनकी परम्परा में वसंत भी मनाया जाने लगा और रंग भी इस परम्परा में आया।¹ मुसलमानों के घरों में भारतीय नारियों के प्रवेश से मिश्रित रक्त से मुसलमानों के घर में अनेक हिन्दू रीतियाँ घुस गईं। भारतीय गायिकाओं और नर्तकियों को दासी बनाये जाने के कारण भारतीय संगीत भी मुसलमानों के घर में आ गया। अतः खिलजी दरबार में गज़लों के साथ हिन्दी गाने भी गाये जाने लगे। सूफियों पर भी उनका प्रभाव पड़ा। चिश्ती परम्परा के सन्त भारत भर में फैल गये। शेख सलीम चिश्ती इस संप्रदाय के बहुत बड़े संत थे।

2. कादिरी सम्प्रदाय

ईरान के शेख अब्दुल कादिरी जिलानी इसके प्रवर्तक (1078-1166) थे। भारत में इसके प्रवर्तक मोहम्मद गौस मानते हैं। ये गुलाब का फूल पवित्र मानते हैं। इसमें बिना शब्द उच्चारण या जोर से अल्लाह कहना दोनों प्रकार प्रचलित हैं। इसमें संगीत का स्थान नहीं है। कादिरी के नौशाही संप्रदाय का चिश्ती संप्रदाय से सम्बन्ध होने के कारण केवल नौशाही सम्प्रदाय वाले संगीत परम्परा का सहारा लेते हैं।² उस मत के सन्तों में बुल्लाशाह की रचनायें भी संगीत में मिलती हैं।

3. सुहरावर्दी सम्प्रदाय

इसके भारत में प्रवर्तक बहाउद्दीन जकारिया हैं। ये लोग रंग बिरंगी

-
1. मुसलमान और भारतीय संगीत आचार्य बृहस्पति पृ० 13 विषय प्रवेश
 2. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, पं० परशुराम चतुर्वेदी पृ० 46

अध्याय-3 (क) सन्तों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव/131

कपड़े पहनते हैं। आचार्य बृहस्पति ने शेख बहाउद्दीन जकारिया को प्रसिद्ध विद्वान सूफी और संगीतज्ञ बताया है। लेकिन इस संप्रदाय में संगीत का स्थान नहीं है।

4. नक्शबंदी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय को भारत में लाने वाले ख्वाजा बाकी बिल्लाह “बैरंग” थे। इस सम्प्रदाय में भी संगीत, नाचना, पीर या बादशाह के सामने सिर झुकाना, सन्तों की समाधि पर दीप जलाना आदि को धर्म विरुद्ध बताया है। अतः इन सूफियों में चिश्ती सम्प्रदाय के सन्तों द्वारा संगीत का बीजारोपण, पल्लवन इन्हीं सूफी सन्तों का काम है।

बाबा फरीद

ये सूफी चिश्ती सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे इन्होंने यहां की “हिन्दी” का प्रयोग करके इसे जन सुलभ बनाया। लोग बाबा फरीद के सलोको (साखी) का पाठ करते और भावमय होकर गाने लगते आनन्द विभोर हो जाते।¹ बलवन्त सिंह के शब्दों में “फरीद ने भारतीय मानस के साथ अपना तादात्म्य ही नहीं किया, सूफीवाद का भी भारतीयकरण किया.....जैसा भक्ति सम्प्रदाय में होता है। प्रियतम के नाम धुन में विभोर हुये सूफी लोग भी गायन नर्तन करने लगे।”

सन्त बुल्लेशाह

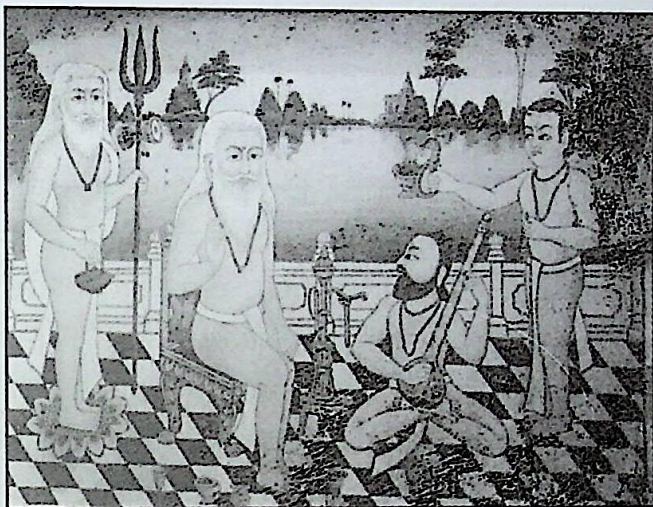
ये भी सन्त मत के थे। इनका जन्म भारत में (सन् 1773) लाहौर के पंडील गांव में हुआ था। बाह्यआडम्बर के कट्टर विरोधी थे। चिश्ती सम्प्रदाय के मिया मीर से भेंट करके फकीर हो गये थे। बुल्लेशाह की रचनायें ये संगीतज्ञ गाते थे।

अघोर सम्प्रदाय बाबा कीनाराम²

बाबा कीनाराम अघोर सम्प्रदाय के काशी के प्रमुख संत या औघड़ थे। इनका जनम 1658 में वि०सं० को चन्दौली के रामगढ़ गांव में व मृत्यु

1. बलवंत सिंह आनन्द- बाबा फरीद, पृ० 34

2. औघड़ भगवान राम- यज्ञनारायण चतुर्वेदी पृ० 99 और 103



औघड़ संत कीनाराम बाबा

वि०सं० 1826 काशी में हुई कुल 168 वर्ष तक दीर्घायु रहे। इन्होंने गिरिनार पर्वत पर जाकर साधना की थी। वहां से काशी आकर केदार घाट के निकट महात्मा काले राम से दीक्षा ली। (1740 सं०) प्रथम गुरु बाबा शिवराम की स्मृति में चार मठ और बाबा कालू राम की स्मृति में अन्य चार मठ विभिन्न स्थानों पर बनाये। प्रधान मठ काशी के क्रीमकुण्ड (कृमिकुण्ड) पर है। यहां रहते हुये इनका 1826 वि०सं० में देहान्त हुआ। इस स्थान पर इनके द्वारा प्रज्ज्वलित धूनी जो अभी भी जल रही है।

इनकी रचना विवेकसार, सं० 1812 में लिखी थी। इनकी लिखी रामगीता, गीतावली, रामरसाल, आदि छोटी पुस्तके भी प्रकाशित हैं। इनके औघड़ मत में और संतमत में प्रायः कुछ अन्तर नहीं है। इनके विचारों और कबीर द्वारा प्रचलित विचारों में साम्य दिखता है। इनकी भाषा सीधी सादी सरल, निज अनुभव पर आधारित है। बिहार का सरभंग सम्प्रदाय इन्हीं की प्रेरणा का फल है। ये संगीत प्रेमी थे। वे काशी के संगीतज्ञों के प्रेरणास्रोत भी थे। काशी के नामांकित संगीतज्ञ एवं वेश्यायें प्रतिवर्ष इनके आश्रम पर गायन का कार्यक्रम देकर इनसे आशीर्वाद लेती थी। इनके चित्र में इनके शिष्य के हाथ में वाद्य इनके संगीत प्रेमी होने का उदाहरण है।

काष्ठ जिह्वा स्वामी देवतीर्थ

श्री देवतीर्थ स्वामी (काष्ठ जिह्वा स्वामी) काशी के अलौकिक सन्त थे। काशी नरेश महाराज ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह के गुरु थे। उन्हीं के आग्रह से आप ने ग्रंथ की रचना की। महान विद्वान शास्त्रज्ञ, संगीत एवं साहित्य के क्षेत्र अद्भुत प्रतिभा थी। इनका पद, साहित्य बीस ग्रन्थों में बिखरा है। लगभग डेढ़-दो हजार पद होंगे। श्री स्वामी जी की सभी रचनायें “काशी राज सागर” नामक संग्रह के अंतर्गत है। “रामसुधा” के अन्तर्गत 113 पद हैं जिनमें उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत राम सेवा उपासना की दृष्टि से, सीता हनुमत संवाद सैद्धान्तिक दृष्टि से, षट्ऋतु वर्णन साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।



काष्ठ जिह्वा स्वामी देवतीर्थ

पूरे ग्रंथ में संगीतात्मक राग-रागिनियों के उल्लेख है। इनमें भैरव, ललित, सोरठ, बसंत, हिंडोल अलैया, धनासिरी, काफी झंझवरी, बिलावल, मेघमलार, देवोत्थापन, विभास, ललित, भैरवी, टोड़ी, सारंग, गौरी हमीर

कल्याण, कामोद, बिहाग (मलार कवित्त चौताला) होरी सिन्दूरा, होरी के अनेक पद “देव रामायण में 182 पद जिनमें ऊपर लिखित रागों के अतिरिक्त जंगला, इमन षमाइच (खमाज) ख्याल टोड़ी, मलार (धनाक्षरी चौताला) (कहरवा) आसावरी होरी के अनेक पद है। “देवरत्न जी” के देव साहित्य के वैविध्य को देखकर कुछ लोगों ने इनकी तुलना कबीर साहित्य से की। कुछ ग्रंथकार द्वितीय तुलसीदास के समान उदार भक्त के रूप में देखते हैं। इनके पदों में शाक्त पदावली, आगम साहित्य, वैदिक साहित्य के कर्मकाण्ड की व्याख्या, दार्शनिक विवेचन, संगीत के क्षेत्र में लोक गीतों में ऋतुगीत चैती, घाटो, बारहमासा, पावसगीत आदि से लेकर ख्याल और ध्रुपद पर्यन्त रचनायें हैं। रागों की विविधता, तालों के संकेत सब अपूर्व है। “देवरत्न” नामक ग्रन्थ में आनन्द भैरव, ध्यान भेद टोड़ी, अनेक रागों में होरी, घाटो, ठोमरी, सोहर, दीपक, श्रीराग, जाजवंती, षेमटा, षमाइच आदि रागों में इनके पद मिलते हैं।

काष्ठ जिह्वा स्वामी जी की रचनायें

इनके अनेक ग्रन्थों के नाम देवरामायण, रामसुधा, कृष्णसुधा, पंचकोशसुधा, विनयामृत, रामायण अभिनव-अवतरण, देवरत्न, देवसुधा, देवबिन्दु, देवसर्वस्व, रामायण, परिचर्या हिन्दी में- शिवचरण परिचर्या, रामचरण परिचर्या तथा विवृत्ति, कृष्णचरण परिचर्या तथा विवृत्ति (रामायण व्याख्यान परिशिष्ट तथा श्रीमद्भागवत व्याख्यानसहित) महाभाष्य परिचर्या, रामानुज परिचर्या, सहस्रनाम परिचर्या, रामरक्षा परिचर्या, पद्धति परिचर्या इत्यादि नीतितरंग, धर्म तरंग, योग तरंग, सांख्य तरंग, कलातरंग, छंदतरंग शब्दशक्ति तरंग, उपपत्ति तरंग, उपनिषद तरंग इत्यादि।

संस्कृत में-शिक्षा व्याख्या, शांडिल्यसूत्र व्याख्या, गायत्री व्याख्या, उदासीन साधु स्तोत्र इत्यादि।

मराठी में तरंग परिचर्या काव्य

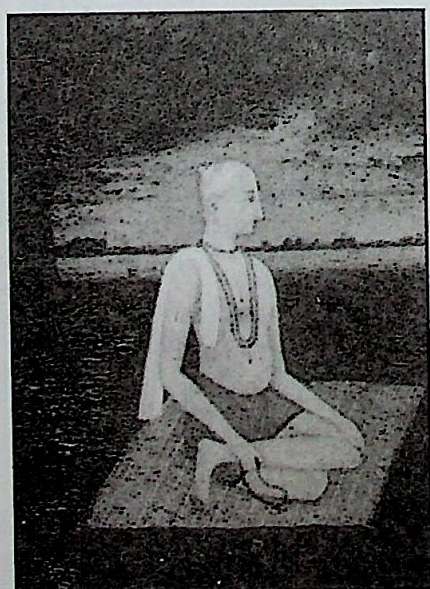
- उर्दू में
1. दिल्ली बिन्दु काव्य
 2. रेखता संग्रह काव्य

इतनी रचनाओं के स्वामी जी अकेले ही बहुत बड़े शोध का विषय है। इनके उपनाम देवकवि, देवस्वामी, देवछाप भी थे।

संत तुलसीदास

रामधारा के संत तुलसीदास भी काशी के ही सन्त थे। चौखम्बा स्थित गोपाल मन्दिर के पिछवाड़े में इन्होंने विनय पत्रिका का लेखन किया था। आज भी यह पवित्र स्थान वही स्मृति रूप में सुव्यवस्थित है। इनका रामचरित मानस, विनयपत्रिका के भजन पूरे भारत वर्ष में गेय रूप में प्रचलित है। कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, दोहावली, जानकी मंगल, पार्वतीमंगल, रामलला नहछू, रामाज्ञा प्रश्न, हनुमान बाहुक इनकी अन्य रचनायें हैं। संगीत जगत के लिये तुलसी रामभक्त, सूर, मीरा, कृष्ण भक्त आदि कवियों ने साहित्य का कभी समाप्त न होने वाला भंडार दिया है उनमें रागों व तालों के नामोल्लेख उनके संगीत प्रियता का दिग्दर्शन कराता है।

इन संतों की रचनाओं का अध्ययन करने के उपरान्त पता चलता है कि संत और सामान्य मनुष्य दोनों के आचार विचार, व्यवहार और रहन-सहन आदि में भिन्नता पाई जाती है। कबीरदास ने कहा है-



संत तुलसीदास

सन्त न छाड़े संतई, कोटिक मिले असंत।

चन्दन भुजंग बैठिया, तउ सीतलता न तजंत॥¹

“संत” शब्द पवित्रात्मा, सदाचारी एवं सज्जनता के अर्थ में प्रयुक्त है। भक्त, साधु, सज्जन इनके पर्याय हैं। ऋग्वेद में- सुपर्ण विप्राः कवयो वचोरिभरेक सन्त बहुधा कल्पयन्ति (ऋग्वेद- 10/114/5) ऐसा उल्लेख ब्रह्मा या परमात्मा के लिये मिलता है।

मध्ययुग में संत शब्द सदाचारी, सज्जन सुजान, परोपकारी, पवित्रात्मा, साधक का पर्याय बन गया। संत ब्रह्मानन्द सम्पन्न व्यक्ति होना चाहिये।²

सन्तों की सत्य के प्रति आसक्ति, परोपकार ही इनका धर्म, बाह्याडंबरों के प्रति विरक्ति, जाति-पाति वर्णभेद को हटाकर सभी धर्मों, सम्प्रदायों जातियों को समान दृष्टि से देखना इनका गुण है। ये दार्शनिक नहीं हैं किन्तु धार्मिक एवं साधक हैं। अपनी साधना के बल पर, प्राप्त स्वानुभव से संसार के सभी प्राणियों का कल्याण करना इनके जीवन का उद्देश्य है। अधिकतर संतों ने नामस्मरण और हरिकीर्तन के लिये संगीत का आधार लिया। इनके पद भजन, शब्द या बानी के रूप में गेय हैं। सन्तों में तात्त्विक समानता है। तत्त्वज्ञानी संत आत्मा और ब्रह्म या परमात्मा दोनों को सत्य मानते हैं। संतों ने संसार की अव्यवस्था, परमतत्त्व के स्वानुभूत लक्षण, उसके प्रति विविध भाव, आत्मनिवेदन, चेतावनी आदि विविध विषयों के प्रति अपने उद्गार प्रगट किये हैं। ओंकार जप, निरंजन की उपासना, अजपा जप, गगन मंडल सतगुरु की महिमा, सोहं जप, अमृतपान से जरा-मरण से मुक्ति, परमात्मा के प्रति अनन्य भक्ति और इनके द्वारा जनमानस का कल्याण करने के लिये संगीत के महत्व को स्वीकार करते हुये विशेषकर भारतीय संगीत के राग तत्व को ग्रहण करके भारतीय संगीतजगत का बहुत बड़ा उपकार किया है।

भारतीय संस्कृति में “वेद और लोक” दो शब्दों का प्रयोग मिलता है।

1. कबीर ग्रंथावली 29/2

2. “शं सुखं ब्रह्मानन्दात्मक विद्यते अस्य”- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी उत्तर भारत की संत परम्परा भूमिका पृ० 1

वेद वह है जो निर्धारित है, शंका नहीं श्रद्धा का विषय है। क्रमशः वेद में से शास्त्र स्मृति और कर्मकाण्ड जैसी सनातन आस्थाओं और मान्यताओं का विकास होता है। वेद परसंवेद्य है। उस पर विमर्श संभव नहीं है, उसे स्वीकार करना ही है। “लोक” वेद विरोधी नहीं लेकिन वेद विमुक्त है। उसमें जाति के अनुभव, विश्वास, परंपरायें, रीति-रिवाज, प्रथायें, अंधविश्वास, तर्क-कुतर्क, प्रश्न-प्रतिप्रश्न जुड़ते रहते हैं। वह प्रथम और अंतिम नहीं होता है। अनवरत और अक्षुण्ण होता है। शास्त्र की प्रायः सुनिश्चित भाषा होती है, व्याकरण होता है, पद-पाठ, श्रवण और श्रुति होती है। प्रायः वेद को श्रुति ही कहते हैं। उसे केवल सुनना और मानना पड़ता है। लोक की शास्त्र की तरह निश्चित भाषा नहीं होती है। उसे चित्तरंजक, रम्य, स्मृति, श्रुति और सृजन से संबद्ध किया जाता है। वह जनवाणी से वाणी परम्परा में अनवरत गति प्राप्त करता है। उसका सबसे उत्तम माध्यम काव्य है। हिन्दी में विचार को जब काव्य बनाया गया तो वह चर्या हो गया। चर्या होने के बाद उसके राग निर्धारित हो गये। सिद्धों के चर्यापद रागों में बंधे हैं। राग और कविता के इस बंधन को कुछ लोग बहुत प्राचीन नहीं मानते लेकिन आठवीं से लेकर दसवीं शताब्दी तक लिखे गये चर्या पद जिन रागों में मिलते हैं उनमें अनेक राग ऐसे हैं जो रागमाला पोथियों, रागकल्पद्रुम, बृहदेशी जैसी रागशास्त्र की पुस्तकों में नहीं मिलते। साधारणतः पटमंजरी, गौड़ा, अरू, गुर्जरी, देवश्री देशाख, भैरवी, कामोद, बडारी, इन्द्रताल, गीतिस, शावरी, बल्लाड़ी, मल्लारी, मालसी गौड़ा, कान्हगुंजरी, पटह, राम की आदि रागों में कुछ राग नाम आज भी हैं, कुछ राग नामों से आज लोग परिचित भी नहीं हैं। इसलिये ऐसा कहा जा सकता है कि राग ग्रंथों की शास्त्रीय पुस्तकें बनने के पहले कुछ ऐसे राग प्रचलित थे जो रागशास्त्र की पुस्तकों के बनने के समय तक अपना अस्तित्व समाप्त कर चुके थे। जो संभवतः स्थानीय लोकसंस्कृति से जुड़े थे। वास्तविकता यह है कि काव्य या विचार चर्या के पदों के रागबद्ध गायन की पद्धति बहुत प्राचीन है। यह पद्धति रागशास्त्र से तो नहीं लेकिन रागशास्त्र के ग्रंथों से निश्चित प्राचीन है। इन रागों से श्रमित, दलित समाज वंचित जातियों का संबंध है। तिथि, वर्ष, मास, ऋतु, प्रातः, दोपहर, संध्या,

रात्रि के अंतिम प्रहर, शयन और जागरण के समय का भी संबंध है। वर्षाऋतु का राग ग्रीष्म में नहीं गाया जायेगा, प्रातः काल की रागिनी रात में नहीं छिड़ेगी। शयन का राग जगने के समय नहीं गाया जायेगा। फिर अनेक राग हैं जो स्वर साम्य, जाति-साम्य की दृष्टि से एक हैं लेकिन भाव की दृष्टि से भिन्न हैं जैसे राग बसंत, परज, पूर्वी, श्री की स्वरमाला एक हैं लेकिन भावप्रदर्शन में ये भिन्न हैं। इसीलिये स्पष्ट है कि राग और शब्द का, पद और लय का, तराना और तरन्तुम का अन्तर भी अर्थ रखता है। इसीलिये संतों और साधुओं की कविताओं को जब भी ग्रंथ किया गया तो एक निश्चित परम्परा में उन्हें अंग, राग, पदी, धरू, महला आदि को राग परम्परा के अनुसार सुनिश्चित करके लिखा गया है। यह अलग बात है कि इस लेखन की परम्परा में संप्रदाय क्षेत्र, पद प्रसंग और आस्था के कारण एक ही पद कई रागों में लिखे गये हैं। बनारस के संत रैदास के पद रागबद्ध ढंग से हस्तलिपि में पाये जाते हैं। लेकिन एक ही पद अनेक हस्तलिपि में अलग-अलग रागों में जैसे कहीं रामग्री, कहीं गौरी, कहीं श्री, पूर्वी, वैरागी में हैं। बिलावल के पद गौरी और जागली गौरी में भी है। जागली गौरी अब लुप्त राग है। असावरी का पद कान्हड़ा और आसा में, सारंग का सोरठ में ऐसे एक ही पद अलग-अलग रागों में प्राप्त होते हैं लेकिन पदों के भाव के साथ राग का संबंध बना रहता है।

नागरीदास के पद प्रसंग में संतों के पदों के विषय में यह धारणा लिखित है कि विशेष तरह की परीक्षा, प्रार्थना का क्षण, श्रोता ही प्रत्याख्यान की अवस्था में इस तरह के पद गाये जाते थे। पद प्रसंग में भक्तमाल पोथियों में यह उल्लेख है कि रामानन्द की शिष्या सुरसुरी और सुरसुरा प्रायः विरोध का शमन करने के लिये राग गौड़ी में पद गाते थे। कबीर के 150 पद राग गौड़ी में मिलते हैं। “गुरुग्रंथ साहेब” में भी सुनिश्चित रागों में पद के साथ गौड़ी का संबंध अंग और महला से कर दिया है। इससे यह स्थापित हो जाता है कि कविता से राग का संबंध कविता की वस्तु और राग के भाव और किसी प्रसंग से भी है। सम्पूर्ण देश में यह परम्परा मिलती है। अलवारों की रचनाओं में, बचनी की पदों में, देवदासी परम्परा के पद (अक्ख महादेवी)

अध्याय-3 (क) संतों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव/139

अभंगों, पदों, सबदों, बाद में सवैया विभिन्न रूपों से रागों का संबंध बना। यह एक लंबी परम्परा है जो कविता और राग को एक तंतु से बांधती है लेकिन वह एक आकस्मिक कला गायन या संगीत सामर्थ्य के प्रदर्शन और चित्तरंजन के लिये नहीं है। इन सारे संगीत संबंधी अभ्यासों का एक ओर जनबोधन और दूसरी ओर आध्यात्म से सीधा संबंध है। कबीर के निर्वाण पद, संत शिवनारायण के नारदी से संबंध पर सहस्रार की भूमि तक पहुँचते हैं इन्हें “यह पद है निरबाना” या “अभिनय बानी” के नाम से जाना जाता है। इन पदों में राग का, सुर का, तान का उत्थान ऐसे होता है जैसे योग में अष्टचक्र भेदन में होता है। विषय में या काम में अधरेतस से उध्वरेतस की जो कल्पना है वह संगीत और काव्य के संबंध में भी पाई जाती है। इसका सात्विक और राजस दोनों रूप पाया जाता है। संत हरिदास, तानसेन, बैजूबावरा के आध्यात्मिक पदों और रागों के बारे में जैसी चर्चा है वैसी ही राजदरबारों दीपक और मल्हार, ख्याल और ध्रुपद के बारे में अनेक दंत कथाएँ मिलती हैं। इन साधनात्मक रागों से जो कविता का संबंध है वह शब्द और अर्थ के आरपार है। ध्यान से जुड़ा हुआ ध्रुपद, धारणा को पार करता हुआ समाधि तक पहुँचाता है। वह कभी-कभी वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति से होता हुआ परातक पहुँचता है। अधिकांश संतों, सिद्धों, नाथों, अलखनिरंजनी योगियों ने कविता और राग के संबंध पर बड़ी तपस्या की।

जोगियों के यहाँ वैराग्य वाणी के संबोधन के लिये कथात्मक गाथा गीतों की रचना का विधान रहा जिसमें सात जन्मों की कथा रहती है। गोपीचन्द, भर्तृहरि, नैकवा, राजापूरनमल, राजापुरूषोत्तम के गीत आदि को रात-रातभर गाने की परम्परा जोगियों और नदी तटवासी निषादों में पाई जाती है। राग के स्वर, शब्दार्थ से परे विषय की महिमा रखते हैं। इसीलिये सारंगी, एकतारा, सितार, तंबूरा, ढोलक, पखावज, मृदंग, खंजड़ी आदि तमाम तरह के चर्मवाद्य, मुरली, बंसी, सिंगी जैसे सुषिर वाद्य, करताल, खड़ताल, झांझ जैसे धातुवाद्यों के साथ घटवाद्य, डमरू, हुडुक, चंग जैसे वाद्य संगीत में सहायक रूप में प्रयुक्त मिलते हैं। खंजड़ी, तंबूरा, सारंगी तो प्रायः साधु, संत, जोगियों के वाद्य के रूप में स्थापित हैं। गोरखनाथ के

साथ सारंगी, कबीर के साथ खंजड़ी, कीनाराम बाबा के साथ तंबूरा, सितार, खंजड़ी इस प्रकार अलग-अलग संतों के यहाँ अलग-अलग लोक वाद्य और निश्चित रूप से साधु वाद्य (चिमटा) भी है। इन सबके माध्यम से कभी कंठ स्वर के साथ, कभी यंत्र के साथ कविता या वाणी की प्रस्तुति की संतों की बहुत विशाल परम्परा है। साधुवाणी को संगीत में ही प्रायः दो ढाई सौ मंगन जातियों ने भिक्षा के पेशे के रूप में अपनाया है। साई, बीर, जोगी, जाति, नट, बकी, हरकार, पावरिया, लागुलिया, ढोलकिया, मंगता, भगत आदि अनेक कलाजीवि जातियाँ साधुवाणी, साधु वाद्य, साधुवेष धारण करके संतों की बानी गाते हैं। कई जातियाँ कहार, धोबी, चमार भी निर्गुण, निरबानी, नारदी और पंथी गीत गाते हैं। इनमें मुख्य रूप से कबीर, बुल्लेशाह, शेख फरीद, घासीदास, संत शिव नारायण, रैदास के पद ज्यादा गाये जाते हैं।

निर्गुणिया पंथ से अलग भक्तों की परम्परा में सूरदास, तुलसीदास के पदों के साथ रसखान के पद, मीरा के पद, नरोत्तमदास की रचनाओं का गायन होता ही है। बानी और संगीत के संबंध का इतिहास बनारस में कितना पुराना है कहना कठिन है लेकिन मुख्य रूप से संत कबीर, संत रैदास, संत कीनाराम बाबा, बाद के संतों में महाराज ईश्वरी नारायण सिंह के गुरु काष्ठ जिह्वास्वामी देवतीर्थ जी के पदों के गायन की परम्परा बनारस के संगीत घरानों से जुड़ी है। बनारस के घराने से संबंधित गायक बाबा कीनाराम के आश्रम में अपना गायन प्रस्तुत करके आशीर्वाद प्राप्त करते थे। संत कबीर के नाम से कबीर चौरा मुहल्ला ही बना है जिसमें बनारस के संगीत के घराने के गायकों के पुश्तैनी निवास स्थान अभी भी सुरक्षित है जिसमें संगीत की साधना अनवरत रूप से चल रही है। औघड़ नाथ की तकिया, गोरखनाथ का टीला ये सब स्थान बनारस में अभी भी हैं जो नाथ पंथी, अघोर पंथी संगीत परम्परा से सम्बद्ध रहे हैं।

संतों के संगीत में जितने राग नाम उल्लिखित मिलते हैं उनमें से बहुत कुछ लुप्त प्रायः हैं। अधिकतर प्रसिद्ध रागों में रचनायें प्राप्त हैं। राग नामों में प्रचलित नाम भैरव, टोड़ी, असावरी, मल्लार, कल्याण, केदार, नट, धनाश्री, रामकली, मारू, कान्हड़ा आदि अनेक नाम प्राप्त हैं। गीत संग्रह में

अध्याय-3 (क) सन्तों की परम्परा का भारतीय संगीत पर प्रभाव/141

होरी, हिंडोला, फाग, चैती, घाटो, बारहमासा, रेखता, लावनी आदि नाम, तुलसी साहब की रचनाओं में ख्याल, तिल्लाना, ध्रुपद, टप्पा, ठुमरी, लावणी आदि का संग्रह इसके अतिरिक्त संगीत के पारिभाषिक शब्द नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्छना, कूटतान इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। ये संत अधिकतर निरक्षर थे लेकिन इनमें विषय वस्तु का विस्तार देखते हुये ज्ञात होता है कि सभी संतों ने इनका दर्शन किया और अनुभूतिगम्य भावों को रचनारूप में जनसुलभ कराया। संतों के लिये संगीत प्रारंभिक काल से आवश्यक और प्रिय रहा। उसे किसी शास्त्रीय ढंग से अपना न सकने पर भी उसका प्रयोग स्वच्छन्द रूप से करके भारतीय संगीत को जीवित रखने में इन संतों के उपकार को भुलाया नहीं जा सकता है।

संत महात्माओं के पदों के साथ रागों के नाम, पद के भाव के अनुसार रागों के ध्यानपूर्वक अवलोकन से, इन सिद्ध महात्माओं की एक विशेषता व्यक्त होती है। याचना या प्रार्थना जिस किसी विशेष के लिये है ऐसे पदों के राग विशेष ही मिलते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यह संत महात्मा राग विशेष के स्वर समूहों और पदों के संयोग से चमत्कारी फल प्राप्त करने के गुण को पहचानने वाले प्रखर संगीत विद्वान भी थे। चाहे वह कबीरदास या तुलसीदास हो अष्टछाप के कविगण या स्वामी देवतीर्थ हों या बाबा कीनाराम। अष्टछाप के कविगण अष्टयाम कीर्तनकार भी थे। लयताल बद्ध रागदारी पर उनका अधिकार था। भगवान की सेवा जितने समय में पूरी हो उतनी ही देर में उस सेवा विशेष के पदों को पूर्व निश्चित रागों में ही गाते हैं और श्रीमद्वल्लभ कुल की परम्परा में ऐसा आज भी मानते हैं कि भगवान प्रत्यक्ष इन संत कवियों के साथ स्वयं लीला करते हैं।

भारत के सभी संतों ने रामभक्ति, कृष्णभक्ति, सूफीवाद द्वारा ईश्वर भक्ति का मार्ग जनता के लिये प्रशस्त किया। उसी में दार्शनिक तत्वों का दर्शन भी किया। भारत के सभी संत काशी अवश्य आये, सभी संतों के मठ काशी में देखने को मिलते हैं। संतों के सभी विषय संगीत की गेय विधाओं के रूप में ख्याल, ध्रुपद, धमार, होली, चैती, कजली, हिंडोला, बारहमासा आदि बनारस की संगीत परम्परा में अपनाये गये हैं। इसीलिये साहित्य की दृष्टि से भी बनारस की संगीत

परम्परा समृद्ध है। बनारस की विभिन्न संतपरम्पराओं को बनारस के अग्रवाल, गुजराती, मारवाड़ी और स्थानीय रईसों का संरक्षण मिला। उन परम्पराओं में वे दीक्षित हुये और आज भी संतों की परम्परा का घर में निर्वाह हो रहा है इसके साथ ही निर्धन अशिक्षित, निम्न वर्ग के लोगों का भी काशी में इन संत परम्पराओं के प्रति समर्पण रहा है। फलतः आज भी उन-उन स्थलों पर उपर्युक्त परम्परायें सुरक्षित हैं।

काशी में महाप्रभु वल्लभाचार्य जी एवं गोस्वामी बिठुलनाथ जी द्वारा स्थापित शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के पुष्टिमार्ग में अष्टछाप कवियों द्वारा श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं को रागरागिनियों में राग सेवा के अन्तर्गत गाया जाता है। यह परम्परा करीब 500 वर्ष पुरानी है जिसका विस्तृत विवेचन इसी अध्याय के अगले भाग में स्वतन्त्र रूप से किया गया है।



(ख) महाप्रभु वल्लभाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित और उनके उत्तराधिकारी गोस्वामी पूज्यपाद श्री बिठुलनाथ जी महाराज द्वारा व्यवस्थित पुष्टिमार्गीय उपासना में संगीत का स्थान, घराने और पूरे संगीत जगत पर
प्रभाव

बनारस पूरे भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की उपासना, विभिन्न मतावलंबियों का संगम एवं तीर्थ स्थल रहा है। महर्षि वेदव्यास से लेकर आज तक विभिन्न मतावलंबी बनारस में अपने-अपने तीर्थस्थलों की सेवा-पूजा में लगे रहे हैं। इसी क्रम में बनारस में सभी प्रमुख आचार्यों के स्थान विशेष आज भी आकर्षण के केन्द्र बने हुये हैं। बौद्ध और जैन मतावलंबियों के लिये भी यह नगरी तीर्थस्थली रही है।

समय-समय पर परमात्मा लोक मंगल की कामना से मनुष्य योनि में अवतार लेकर विश्व कल्याण के लिये कार्य करके नित्य लीला में प्रवेश करते रहे हैं। इन्हीं अवतारी महापुरुषों की उदात्त परम्परा में महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्यजी का नाम काशी के लिये महत्वपूर्ण है।

श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्री कृष्ण ने यह प्रतिज्ञा की थी-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्म-संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥

अर्थात् हे अर्जुन! जब-जब धर्म का हास होगा और अधर्म का उत्थान होगा तब-तब मैं साधुओं की रक्षा के लिये, पापियों के विनाश के लिये तथा धर्म की स्थापना के लिये युग-युग में अवतार लेता रहूंगा। उसी प्रतिज्ञा पालन के लिये पर ब्रह्म परमात्मा अवतार लेते हैं।

महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी के जन्म के विषय में वल्लभ संप्रदाय में मिलते उल्लेखों के अनुसार उनके पिताश्री लक्ष्मण भट्ट दक्षिण के आन्ध्र प्रदेश में गोदावरी के किनारे में बसे “कांकरवाड” नामक ग्राम के निवासी थे। वे धर्मनिष्ठ सोमयाजी ब्राह्मण थे। इनके परिवार में इनके प्रपितामह श्री यज्ञनारायण दीक्षित बड़े यशस्वी पुरुष थे जिन्होंने इस कलियुग में 31 सोमयज्ञ किये थे। वे श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन थे। श्री गंगाधरजी ने 27, श्री गणपति जी ने 32, श्री वल्लभजी ने 5, श्री लक्ष्मण भट्टजी ने 5, इस प्रकार 100 सोमयज्ञ पूरे किये थे। भगवान श्रीकृष्ण ने ही 32 वे सोमयज्ञ में प्रकट होकर वर दिया था कि तुम्हारे वंश में सौ सोमयज्ञ पूरे होने पर सम्पूर्ण लोकों के उद्धार करने हेतु मैं स्वयं तुम्हारे वंश में जन्म लूंगा।¹ सौ सोमयज्ञ पूरे होने के बाद श्री लक्ष्मण भट्ट अपनी पत्नी इल्लमा के साथ उत्तरभारत तीर्थ यात्रा करते काशी पहुँचे। काशी में अचानक लोदी आक्रमण की चर्चा सुनकर वे काशी से दक्षिण वापस जाने निकले उस समय उनकी पत्नी गर्भवती थी।

रायपुर के चम्पारण्य नामक स्थान पर पहुँचते ही अचानक एक दिव्यात्मा का शिशु रूप में जन्म हुआ। माता-पिता शिशु को संज्ञाशून्य देख वहीं जंगल में छोड़कर आगे बढ़ गये, लेकिन रास्ते में स्वप्न देखकर इन्हें पता लगा कि इनके यहाँ परमात्मा का अवतार हुआ है। तब तक काशी में मुसलमानों का विद्रोह शांत हो चुका था। ये पुत्र लेकर काशी आये। पुत्र का नाम वल्लभ रक्खा। वल्लभ का अर्थ है “प्रिय”।

1. श्रीमद्वल्लभाचार्य उनका शुद्धादित एवं पुष्टिमार्ग- लक्ष्मीशंकर निगम, श्रीमती शोभा निगम,

पृ० 1-2

अध्याय-3 (ख) महाप्रभु वल्लभाचार्य जी द्वारा/145

यही श्रीमद्वल्लभाचार्य जी शुद्धादैत पुष्टि मार्ग के प्रतिष्ठापक हैं। इनका जन्म वि०सं० 1535 वैशाख कृष्ण रविवार सन् 1479 को हुआ। इनका लालन पालन काशी में ही हुआ। इनकी शिक्षा, दीक्षा काशी में हनुमान घाट पर हुई। इन्होंने 11 वर्ष की अवस्था में वेद, वेदांग, उपनिषद, स्मृति, पुराण, इतिहास, दर्शन, ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत तथा पूर्वाचार्यों के तत्त्व ज्ञान विषयक महान ग्रंथ एवं उपासना विषयक पूरे साहित्य का अच्छी तरह से अध्ययन-अवलोकन किया और बहुत कम अवस्था में सभी शास्त्रों के मर्मज्ञ हो गये। युवा विद्यार्थी रहते ही महाप्रभु ने शुद्धादैत अखण्ड ब्रह्मवाद की यहीं काशी में स्थापना की तथा श्रीकृष्ण भक्ति में मधुरोपासना पुष्टिमार्ग की भूमिका तैयार की। श्रीमद्भागवत् में कहा है- “पोषणं तदनुग्रहः”।¹ अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा, उनका अनुग्रह ही “पुष्टि” है।

पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक श्रीमद्वल्लभाचार्य जी की काशी में तथा उसके आस-पास पांच बैठके हैं जहां आपश्री ने श्रीमद्भागवत का पारायण किया था। पंचगंगा की बैठक, जहां आपश्री की विवाह बैठक है, चुनार तथा जतनवतर स्थित सेठ पुरुषोत्तमदास के निवास की बैठक में आपश्री ने नन्दमहोत्सव का आयोजन किया था जहाँ साक्षात् नन्द-यशोदा, गोप-गोपियों को प्रकट होना पड़ा था। इतना ही नहीं काशी या बनारस में आचार्य श्री का मुण्डन, यज्ञोपवित, शिक्षा-दीक्षा और विवाह आदि समस्त संस्कार सम्पन्न हुये थे। जिस कार्य के लिये आचार्य जी का अवतार हुआ था, वह पूर्ण होने के बाद आषाढ़ शुक्ल द्वितीया (वि०सं० 1587) रविवार रथयात्रा के दिन मध्याह्न में वाराणसी में हनुमान घाट पर गंगा में जलसमाधि लेकर नित्य लीला में लीन हो गये।

महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने पूरे विश्व में भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया। धनिकों, भूमिपतियों, व्यापारियों तथा साधारण जनता के हृदय में भक्ति भावना का संचार करते हुये उन्हें अष्टाक्षर मंत्र “श्री कृष्णः शरणं मम” का उपदेश देकर श्री गोकुलनाथ जी की सेवा का उपाय, रहस्य और भेद बताते रहे। आपश्री ने तीन बार पृथ्वी भ्रमण किया।

1. श्रीमद्भागवत- 2/10/4

तृतीय¹ पृथ्वी, भ्रमण के समय अपने मामा के यहाँ विद्यानगर (वर्तमान वियजनगरम्) के राजा श्रीकृष्ण देव राय के यहाँ बहुत बड़ा धर्म सम्मेलन का आयोजन हुआ था जिसमें यह निर्णय करना था कि कौन सी धर्मोपासना श्रेष्ठ है, वहाँ अपने मामा के बुलाने पर गये। वहाँ पर पण्डित सभा में अपने पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्मवाद का पाण्डित्यपूर्ण शैली में अपने प्रतिपक्षियों के तर्क का युक्तसंगत प्रतिवाद करते हुये विशुद्धाद्वैत परक ब्रह्मवाद की स्थापना की जिसमें सभी पण्डितों ने अपनी पराजय स्वीकार की। सबने मिलकर उन्हें “आचार्य” की पदवी से विभूषित किया।² प्रस्थानत्रयी पर भाष्य करने पर आचार्य पद मिलता है। महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी ने प्रस्थान चतुष्टय को स्वीकार कर श्रीमद्भागवत् पर बहुत महत्त्वपूर्ण “सुबोधिनी” टीका लिखी। कई दिनों से चल रहे शास्त्रार्थ की इतिश्री हुई। इस निर्णय से संतुष्ट होकर राजा कृष्णदेव ने घोषणा की कि इस विजय के उपलक्ष्य में महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी का कनकाभिषेक होगा और उसी दिव्य विजय के फलस्वरूप तत्काल उन्हें “महाप्रभु” की पदवी देकर राजा कृष्णदेव ने अपना गौरव बढ़ाया।³

महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के दो पुत्र हुये बड़े पुत्र श्री गोपीनाथ जी जल्दी ही लीला में प्रवेश कर गये। द्वितीय पुत्र का जन्म संवत् 1572 पौष कृ० 1 को काशी के निकट चरणार ग्राम (चुनाव) में हुआ। इन्हें साक्षात् भगवान् का अवतार माना जाता है। निजवार्ता के अनुसार पंढरपुर के श्री विठ्ठलेश जी ने स्वयं उनके घर में पुत्र रूप में अवतार लेने की इच्छा प्रकट की थी। अतः इनका नाम श्री बिठ्ठलनाथ रक्खा जिन्होंने महाप्रभु के कार्यों को व्यवस्थित रूप में, प्रचारित एवं प्रसारित किया।

पुष्टिमार्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के अनुग्रह से प्रेम करना जीव का लक्ष्य

1. कुछ इतिहासकार प्रथम परिक्रमा, कुछ द्वितीय परिक्रमा मानते हैं, परन्तु पुष्टिमार्ग के सांप्रदायिक इतिहास में तृतीय परिक्रमा मानते हैं।
2. महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग- पंडित सीताराम चतुर्वेदी चतुर्थ अध्याय “कनकाभिषेक” पृ 20
3. महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग- पं० सीताराम चतुर्वेदी पृ० 20

होना चाहिये। संवत् 1550 को गोकुल के गोविन्द घाट पर श्रावण शु0 11 को अपने प्रमुख सेवक दामोदरदास हरसानी को सर्वप्रथम पूज्य चरण महाप्रभु ने मंत्र दीक्षा देकर पुष्टिमार्ग का कार्यारम्भ किया।¹

साम्प्रदायिक शब्दावलियां एवं आचार

इस सम्प्रदाय में भगवान के बालस्वरूप की सेवा होती है। देवमूर्ति को मूर्ति न कहकर स्वरूप कहा जाता है। छोटे बालक के समान स्वरूप का ध्यान रक्खा जाता है। सम्प्रदाय में “कृष्ण सेवा सदाकार्य”² अर्थात् श्रीकृष्ण की सेवा सदा करनी चाहिये। इस सम्प्रदाय में उपासना से सम्बद्ध प्रत्येक कर्म (व्यवहार) “सेवा” नाम से ही कहा जाता है। सेवा तीन प्रकार की 1. तनुजा (शरीर से) 2. वित्तजा (धन से) 3. मानसी (मन से) भगवान् में मनलगाना। पुष्टिमार्ग में दो प्रकार की सेवाएँ वर्णित है 1. भावात्मक (नामसेवा) 2. क्रियात्मक स्वरूप सेवा। क्रियात्मक सेवा में भक्त अपने हाथ से भगवान के सेव्य स्वरूप की सेवा करता है। पुष्टिमार्गीय सेवा विधि से दो क्रम हैं- 1. नित्य सेवा 2. वर्षोत्सव सेवा। इन दोनों सेवाओं में राग, भोग और शृंगार की सेवा प्रमुख है। इन सेवा विधियों का बहुत आकर्षक एवं कलात्मक रूप पुष्टिमार्ग में दीखता है। यह पुष्टिमार्ग की स्थापना से अब तक उसी क्रम में प्रचारित है।

पुष्टिमार्ग में राग सेवा के अन्तर्गत प्रभु की सेवा में संगीत को अनिवार्य अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। गो0 बिठुलनाथ जी संगीत विद्या के निष्णात् एवं पारखी थे। इन्होंने अष्टछाप कीर्तन मण्डली की स्थापना की ताकि भगवान की अष्टयाम सेवा कीर्तन द्वारा हो सके। अष्टछाप में पिताश्री के शिष्य श्री कुंभनदास, श्री सूरदास, श्री कृष्णदास, श्री परमानन्ददास तथा इनके शिष्य श्री गोविन्ददास, श्रीदीतस्वामी, श्रीचतुर्भुज दास और श्री नन्ददास इन आठों संगीतज्ञ कवियों को अष्टयाम कीर्तन के लिये नियुक्त किया। इन्हें श्रीनाथजी के अष्टसखान् भी कहा जाता है। ये अष्टसखा प्रभु की लीलाओं में हर समय उनके साथ रहते थे। उन्हें नित्य लीलाओं का दर्शन

1. ब्रजस्थ वल्लभ संप्रदाय का इतिहास- प्रभुदयाल मित्तल, पृ0 5

2. सिद्धान्त मुक्तावली- आचार्यवल्लभ

होता था। जिसे वे अपने काव्य में वर्णन करते थे और रागों का भी अवतरण होता था जिसमें काव्य अपने आप बद्ध होकर कीर्तन के रूप में प्रभु की सेवा में गेय रूप में प्रकट होते थे। इनके सुललित साहित्य और संगीत की परम्परा के चार घराने चार स्थानों में स्थापित हो गये।

ये चार स्थान नाथ द्वारा, मथुरा, चांपासेनी और चौथा काशी या बनारस। काशी का संगीत घराना 500 वर्षों से भी अधिक पुराना है जिसमें रागसेवा करने की परम्परा चल रही है।

गो. श्री बिठलनाथ जी के सात पुत्र हुये। इन पुत्रों को अपने जीवन काल में ही भिन्न-भिन्न सेव्य स्वरूप पधराकर उनके गृह भी पृथक-पृथक कर दिये गये। महाप्रभु की प्रमुख गद्दी पर स्वयं विराजमान होकर श्रीनाथ जी एवं नवनीतप्रियाजी की सेवा स्वयं करते रहे। किन्हीं कारणों वश उस वक्त षष्ठपीठ की अलग से स्थापना नहीं हो सकी। कालान्तर में “श्री गोवर्धनधारी श्रीनाथ जी एवं श्री मुकुन्द प्रभु की इच्छा से षष्ठ लालजी, श्री यदुनाथ जी (महाराज जी) के कुल में उत्पन्न काशीस्थ षष्ठपीठाधीश्वर शुद्धाद्वैत मार्तण्ड श्री गिरिधर महाराज जी ने अपने अगाध पाण्डित्य, अतुलप्रताप, वल्लभीय पुष्टि सेवारस मर्मज्ञता, भोगराग शृंगार में विशेषता, रस भाव का गांम्भीर्य आदि अनेक गुणों से तिलकायित श्री दाऊजी महाराज को प्रसन्न किया था श्री दाऊजी महाराज को गोपालमंत्र की दीक्षा दी एवं गुरु दक्षिणा में षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी को प्राप्त किया और षष्ठगृह के सम्पूर्ण अधिकार हटड़ी की आरती, महाराज जी की आड़ी की पालकी आदि प्राप्त करके षष्ठनिधि श्री मुकुन्दरायजी को वि०सं० 1885 माघ शु० 4 को काशी में श्री गोपाल मंदिर जीवन जी की हवेली में पधराया था।”¹

“श्री गिरिधर जी महाराज ने काशी में श्री मुकुन्दप्रभु की आज्ञानुसार श्री गोपाल लालजी के मन्दिर के फूलघर की ओर एक भूखण्ड क्रय करके नवीन मन्दिर सिद्ध कराया एवं वि०सं० 1887 वैशाख शु० 6 की वास्तु शान्ति करायी एवं वैशाख शु० 7 को नवीन मन्दिर में बड़े धूमधाम से श्री

1. पुष्टि षष्ठपीठ दर्पण, श्री वल्लभीय षष्ठपीठ का इतिहास। ले०गो०१० पीठाधीश्वर श्री श्याम मनोहर जी महाराज पृ० 52

मुकुन्द प्रभु को आनन्दपूर्वक पधराया जहां पर आजतक प्रभु बड़े सुखरूप में विराज रहे हैं।¹

अतः काशी या बनारस में षष्ठपीठ की स्थापना हुई-

श्री पुष्टिमार्गीय षष्ठपीठ की काशी की परम्परा

- | | |
|------------------------------|------------------|
| 1. श्रीमद्वल्लभाचार्य जी - | जन्मसंवत् - 1535 |
| 2. गो० श्री बिठुलनाथ - | जन्मसंवत् - 1572 |
| 3. गो० श्री यदुनाथ जी - | जन्मसंवत् - 1615 |
| 4. श्री जगन्नाथ जी - | जन्मसंवत् - 1642 |
| 5. श्री चिम्मन जी - | जन्मसंवत् - 1680 |
| 6. श्री कल्याणराय जी - | जन्मसंवत् - 1704 |
| 7. श्री गिरिधर जी - | जन्मसंवत् - 1737 |
| 8. श्री जीवनजी - | जन्मसंवत् - 1775 |
| 9. श्री गोपाल जी - | जन्मसंवत् - 1810 |
| 10. श्री गिरिधर जी - | जन्मसंवत् - 1847 |
| 11. श्री जीवनलालजी - | जन्मसंवत् - 1923 |
| 12. श्री मुरलीधर लालजी - | जन्मसंवत् - 1961 |
| 13. गो० श्री श्याममनोहर जी - | जन्मसंवत् - 2013 |
| 14. श्री प्रियेन्दु बाबा - | जन्मसंवत् - 2044 |

काशी में षष्ठपीठ में कीर्तनियों की एक सुदृढ़ समृद्ध परम्परा रही है। श्री जीवनलालजी महाराज तक कीर्तनियों का कोई लिखित इतिहास प्राप्त नहीं है। श्री मुरलीधर महाराज के बाल्यकाल में आज से लगभग 75-76 वर्ष पूर्व श्री मुकुन्द राय जी की सेवा में श्री रामनारायण जी, श्री गोपाललाल जी की सेवा में श्री गोविन्दराय जी प्रमुख कीर्तनिया थे। दोनों ही अष्टछाप एवं पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली के महान जानकार थे। उसके बाद बीकानेर के बंधुद्वय श्री गोपाल जी भट्ट एवं मऊ के उद्धवजी भट्ट महान कीर्तनकारों

1. पु० ष० पीठ दर्पण, षष्ठगृह काशी का इतिहास, ले० राधेकृष्ण अग्रवाल, पृ० 59

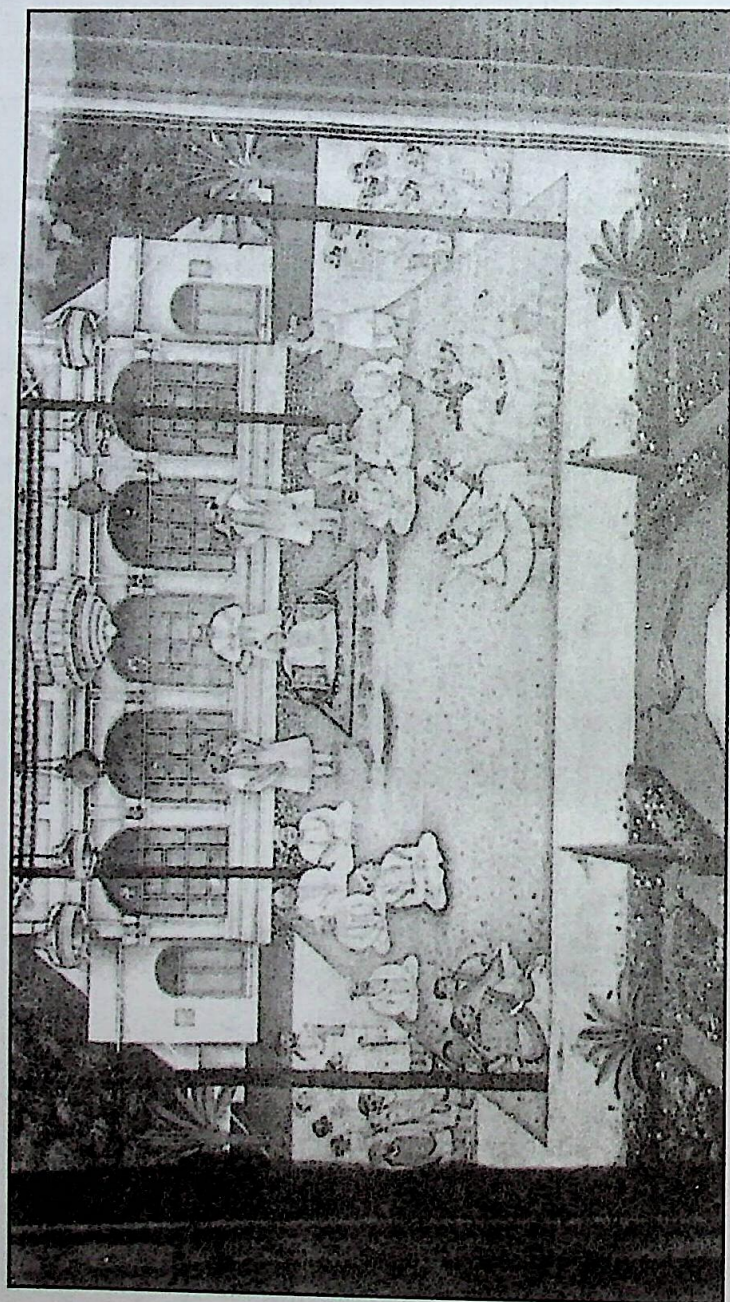
ने मंदिर की कीर्तन सेवा की। तत्पश्चात् श्री मुकुन्दराय जी की सेवा में श्री सीताराम जी और श्री गोपाललाल जी की सेवा में श्री मन्नू जी आये जो कीर्तन के साथ-साथ मृदंगवान के भी निष्णात् कलाकार थे। श्री सीताराम कीर्तनियां बड़े भावुक एवं संवेदनशील रसिक थे। वैष्णव घरों के बालकों को बड़े मनोयोग से कीर्तन (पदगायन) व पखावज की शिक्षा देते थे।

श्री जीवनलाल महाराज पखावज के आचार्य थे। श्री जीवनलाल जी के समय से ही पं० छोटे रामदास जी के नाना श्री ठाकुर प्रसाद मिश्र भी मन्दिर की कीर्तन सेवा में सम्मिलित हो गये थे। जैसे कि लोग बताते हैं उन्होंने 64 वर्ष तक मन्दिर में राग सेवा की थी। श्री जीवनलाल जी के संबंध में एक उल्लेख काशी के वयोवृद्ध लोगों से मिलता है कि इनके समय का बुढ़वा मंगल विशेष उल्लेखनीय है। अस्सी से वरूणा तक गंगा का जल गुलाल से लाल हो गया था। सबको उन्होंने उस समय प्रसिद्ध बारीक किनारीदार मुरली मनोहर धोती बांटी थी। भव्य उत्सव था। गायक, गणिकाओं का गायन हुआ था। उस प्रकार का उत्सव उसके बाद कहीं देखने में नहीं आया। इनके संगीत प्रेम का एक और प्रमाण कलकत्ता कोठी वाले के आसापुर स्थित बगीचा में सम्पन्न गुलाब बाड़ी के अवसर पर राजसी वेश का चित्र प्राप्त है। जिसमें बनारस की खड़ी महफिल का एक रूप दर्शनीय है।

गो० महाराज- श्री जीवनलाल जी के बाद गो० महाराज श्री मुरलीधर स्वयं गायक थे। उच्चकोटि के कीर्तनकार एवं हारमोनियम वादक भी थे। वे वैष्णव बालकों को कीर्तन सेवा के लिये प्रेरित करते थे।

प्रातः शंखनाद से शयनपर्यंत तक की सेवा कीर्तन के बगैर नहीं होने देते थे। आप अष्टछाप के कीर्तन साहित्य से इतने जुड़े थे कि नित्य प्रति प्रभु के शृंगार के अनुसार स्वतः पद चुनकर गाने की कीर्तनिया को गाने की आज्ञा करते।

गो० श्री मुरलीधर महाराज जी के नित्य लीला में लीन होने के पश्चात् षष्ठपीठ की महान् गद्दी पर वि.स. 2048, माघ शु. 4, 8 फरवरी ई.स. 1992 को गो० श्याममनोहर महाराज आसीन हुये हैं जो आजतक वैष्णव



ष.पी.धी.गो. श्री जीवनलालजी महाराजश्री कलकत्ता कोठीवालों के आसापुरुवाले बगीचे में
गुलाबबाड़ी के अवसर पर राजसी वेश में खड़ी महफिल का दृश्य

समाज ही नहीं, समाज के सभी वर्गों के लोगों के लिये साक्षात् भगवान् स्वरूप है। आपश्री ने काशी के विद्वानों और वैष्णवों को समय-समय पर अनेक उत्सवों में आमंत्रित करके अपनी हृदय की विशालता का परिचय दिया है। नाम के समान साक्षात् श्री कृष्ण के अवतार स्वरूप आपश्री षष्ठपीठ की गद्दी को अपने कार्यों से सुशोभित कर रहे हैं। आपश्री भी संगीत के ज्ञानी हैं। आपश्री के लाल जी, श्री प्रियेन्दु बाबा से वैष्णव समुदाय आशान्वित है।

वैष्णव साहित्य की विषयवस्तु

पुष्टिमार्गीय साहित्य में भक्तिभाव को प्राधान्य दिया गया है। भगवान् को साक्षात् अपने सामने उपस्थित समझकर सभी रचनायें उन्हें रिझाने के लिये हुई हैं। परिणामतः यह लौकिक वासना से दूर होकर अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराने में प्रबलरूप से समर्थ हैं। पुष्टिमार्गीय कीर्तन साहित्य में वात्सल्य, सख्य, माधुर्य व दास्य सभी तरह के भावों का स्वरूप प्राप्त होता है। सूरदास जी को वात्सल्य भाव में सर्वश्रेष्ठ माना है। जसोदा हरि पालना झुलावै, मैया मैं नहीं माखन खायो इन रचनाओं ने सूरदास को अमर बना दिया है। शृंगार के संयोग, वियोग दोनों के पद प्राप्त हैं। षट्ऋतु वर्णन ऋतुओं के साथ लीला वर्णन के पद, नित्यलीला के पद, उत्सवों में लीला के पद। इन सब पदों की भाषा ब्रजभाषा इनकी कीर्तन प्रणाली का अंग है। भगवान् श्रीकृष्ण के मनोहारी व शृंगार प्रधान लीलाओं का दर्शन सरस व भावपूर्ण वर्णन सरलता, भक्तों का सरल, आडम्बरहीन मन, संवेदनशील हृदय का दर्शन पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणाली में संगीत के संयोग से प्रबल होकर श्रोता या भक्त को कृष्णमय बना देता है।

पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में संगीत सेवा

श्रीमद्भागवत् में “नवद्या भक्ति” के रूप में भक्ति के नौ साधनों का उल्लेख है, जिसे नौ प्रकार की भगवान् की बाह्य सेवा समझनी चाहिये-
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्॥¹

1. श्रीमद्भागवत- 7/5/23

अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्रवण अर्थात् भगवान की कथा सुनना, उनका कीर्तन करना, उनका नामस्मरण करना आदि। समस्त वैष्णव मंदिर में श्रवण और कीर्तन को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। कहीं पर दर्शन खुलने से पहले या कहीं बाद में, कहीं दोनों समय भगवान का स्मरण करते हुए कीर्तन या पद गायन करते हैं। महाप्रभु ब्रल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथ “निरोध लक्षण” में कहा है-

तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणः।

सदानन्द पदैर्गेयाः सच्चिदानंदनाः ततः॥

अर्थात् सदानन्द ईश्वरभक्ति करने वाले भक्तों को सब लौकिक साधन छोड़कर भगवान के गुणों का गान करना चाहिये।

पुष्टिमार्ग में भगवान के गुणगान स्वरूप कीर्तन को सेवा का आवश्यक अंग माना है। यह गान सेवा मंगला से लेकर शयन पर्यन्त अष्टयाम में अनिवार्य अंग के रूप में रहती है। भगवान के दर्शन खुलने पर कीर्तनिया भगवान के सम्मुख कीर्तन करते हैं। कीर्तन से ही भगवान को जगाया जाता है, कीर्तन से ही स्नान, शृंगार, भोग, आरोगन, गोचारण वन से वापस बुलाना, आरती, ब्यालू, शयन आदि सेवाओं का संचालन होता है।

अन्य सम्प्रदायों में जो कार्य मंत्रों से लिया जाता है वह कार्य पुष्टिमार्ग के मंदिरों में संगीतात्मक कीर्तन से किया जाता है। यदि उसमें से संगीत निकाल दिया जायेगा तो पुष्टि रहेगी ही नहीं। पुष्टिमार्ग के कीर्तनों में ब्रज की लोकभाषा का प्रयोग मिलता है।

पुष्टिमार्गीय परम्परा के इतिहास का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि सोलहवीं शताब्दी से वैष्णव संप्रदाय की कीर्तन परम्परा भारतीय संगीत से जुड़ी है। उसमें प्रभु को प्रसन्न करने के लिये साहित्य और संगीत का संगम होकर लीला गान प्रारम्भ हुआ।

इस संगीत परम्परा को “हवेली संगीत” भी कहते हैं। हवेली फारसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ भव्य एवं सुख सुविधा की दृष्टि से बना सुन्दर निवास स्थान। सामान्य लोकाचार की भाषा में इसी अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त

है। पुष्टिमार्ग में इस संप्रदाय के मंदिरों को गुजरात में हवेली कहते हैं अतः यहां संप्रदाय में प्रयुक्त संगीत का नाम धीरे-धीरे “हवेली संगीत” हो गया। यह नामकरण आधुनिक है।

गायन शैली

वैष्णव मंदिरों या पुष्टिमार्गीय संगीत शैली की दृष्टि से विचार करने पर यह परम्परा ध्रुवपद, धमार शैली की है। ग्वालियर के राजा मानसिंह को (समय संवत् 1534-1576 या सन् 1486 ई० से 1528 ई० तक) ध्रुवपद का आविष्कारक माना जाता है।¹ राजा मानसिंह की ध्रुपद शैली के प्रचार में आने के पहले ही पुष्टिमार्ग में संगीत सेवा आरम्भ हो चुकी थी। अतएव राजा मानसिंह के समय में जिस संगीत शैली का जन्म हुआ उससे पूर्ववर्ती जो गायन शैली थी वही पद गायन की परम्परा पुष्टिमार्ग में अपनाई गई। यह काल स्वामी हरिदास, (वृन्दावन), तानसेन आदि का था। अतः यह कहा जा सकता है कि ग्वालियर, आगरा, मथुरा, वृन्दावन आदि क्षेत्र ध्रुवपद गायन शैली से प्रभावित था। महाप्रभु वल्लभाचार्य जी, स्वामी हरिदास, राजा मानसिंह और प्रथम कीर्तनकार कुंभनदास समकालीन थे। यह समय ध्रुवपद गायकी का था। अतः पुष्टिमार्गीय संगीत में ध्रुवपद गायन की विशुद्ध परम्परा मिलती है।

कुछ विद्वान पुष्टिमार्गीय संगीत को ध्रुवपद शैली न कहकर विष्णुपद कहते हैं। यह विवाद का विषय है। यदि मन्दिरों की गायन परम्परा को देखा जाय तो पखावज के साथ गायन करते हुये श्रीकृष्णलीला के पद अष्टयाम में सीमित समय के लिये ठाकुर जी के दर्शन तक ही गाये जाते हैं। अतः ध्रुवपद के समान विचार करने का अवसर ही नहीं रहता है। यदि कीर्तनियों को वैसा अवसर दिया जाय तो वे विशुद्ध रूप से ध्रुवपद जैसा उसे गा सकते हैं लेकिन वहां उनका उद्देश्य दुगुन-चौगुन-आड़-कुआड़ आदि का पाण्डित्य पूर्ण प्रदर्शन कर मनोरंजन करना न होकर सीधा सादा प्रभु का गुणगान ही आवश्यक माना गया। अतः यह परम्परा देवालय या मंदिर की है। दरबार

1. मानसिंह और मानकुतुहल हिन्दी अनु० हरिहर निवास द्विवेदी पृ० 11-12

की परम्परा राजा या रईस को पण्डिताई से प्रसन्न करना, उनका मनोरंजन करना प्रमुख उद्देश्य होता है अतः गायन की शैली में थोड़ा बहुत परिवर्तन आवश्यक दीखता है। पुष्टिमार्गीय संगीत परम्परा को ध्रुवपद परम्परा ही कह सकते हैं।

उस समय ख्याल, टप्पे गाने का भी प्रचलन था लेकिन अष्टछाप के संगीतज्ञों ने इस शैली को नहीं अपनाया। चौरासी वैष्णव की वार्ता में प्रसंग-आगरे के बाजार में एक वेश्या नृत्य करती हुयी, ख्याल टप्पा गावत हुती और भीर हुती...सो कृष्णदास बाजार में तमासे में जाय ठाई भये...वा वेश्या सो कहयो जो तेरौ गान हूं आछो और नृत्य हूं आछा पर हमारो सेठ है सो तेरे ख्याल टप्पा के उपर रीझेगो नहीं ताते हौ कहो सो गाइयो तापाछे कृष्णदास ने एक पूरवी राग में पद करिके सिखायो।'

पुष्टिमार्गीय कीर्तन को दो भागों में विभाजित किया है-

1. दैनिक क्रम (नित्य कीर्तन)
2. वार्षिक क्रम (वर्षोत्सव कीर्तन)

प्रातः काल मंगला की झांकी से शयनपर्यंत तक अष्टयाम सेवा दैनिक क्रम के अन्तर्गत आती है। 1. मंगला, 2. शृंगार, 3. ग्वाल, 4. राजभोग, 5. उत्थापन, 6. संध्या भोग, 7. संध्या आरती, 8. शयन

वार्षिक क्रम में दैनिक क्रम के अतिरिक्त विशेष रूप से शृंगार राग तथा भोगों की व्यवस्था रहती है। वर्ष के विशेष उत्सव, षट् ऋतुओं के उत्सव, अवतारों की जयन्तियां, लोक त्योहार, आचार्य व उनके वंशजों के जन्मोत्सव सम्मिलित रहते हैं।

वार्षिक क्रम में वार्षिक तिथि पर्व के विशेष उत्सव में विशेष शृंगार तथा वर्षोत्सव शृंगार

दैनिक क्रम में शृंगार, भोग और कीर्तन की सेवा साधारण दिनों के लिये होती है और वार्षिक क्रम वर्ष भर के उत्सवों के लिये होता है। उत्सवों पर शृंगार, भोग और राग विशेष होते हैं। कीर्तन का स्वरूप भी विशेष होता है।

1. 84 वैष्णवन की वार्ता, पृ० 570

उत्सवों पर कीर्तन की विशेषतायें

1. पखावज के साथ झांझ अवश्य बजाई जाती है जिससे यह प्रतीत होता है कि यहां कोई उत्सव है।

2. उत्सवों में बृन्द गायन का महत्त्व है।

3. उत्सव में उसी उत्सव विशेष संबंधि पदों का गायन होता है, जैसे होली में होली के पद, महाप्रभुजी के जन्मोत्सव में सभी झांकियों में महाप्रभु जी के पद ही गाये जाते हैं।

4. उत्सवों के विशेष अवसर पर कभी-कभी मंगला की झांकी में भी झांझ व पखावज बजाई जाती है। जैसे जन्माष्टमी आदि।

5. दैनिक क्रम की झांकियों के समय में भी हेर-फेर हो जाता है जैसे दर्शन अपेक्षाकृत अधिक समय तक खुले रहते हैं जैसे- होली, हिंडोला आदि।

प्रमुख उत्सव

1. श्री कृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव

भाद्रपद कृष्ण अष्टमी जन्माष्टमी की बधाई कहीं 8 दिन पहले, कहीं पर 15 दिन पहले से शुरू होती है। प्रातः मंगला के लिये 4 बजे पट खुलते हैं। मंगला आरती के बाद कीर्तन प्रारम्भ होता है, नगाड़े बजते हैं, अन्दर भगवान का शृंगार होता है। शंख ध्वनि, घंटा, झालर के साथ पंचामृत स्नान होता है। फिर शृंगार होता है। सायंकाल 7 बजे उत्थापन के दर्शन खुलते हैं। रात शयन के विशेष दर्शन होते हैं जिसमें भगवान विविध खिलौनों से खेलते हैं। मध्यरात्रि को ठीक 12 बजे पर बन्द होते हैं। अन्दर श्रीमद्भागवदोक्त श्रीकृष्ण जन्म समय के आठ श्लोक बोलकर घण्टा नाद होता है। उसके पश्चात् बैण्ड, बाजे, नगाड़ा, तुरही तथा नौबत के स्वर गूंजते हैं। तोपों की ध्वनि सर्वत्र गूंजती है।

2. नन्द महोत्सव भाद्रपद कृष्ण - 1

यह उत्सव जन्माष्टमी के दूसरे दिन प्रातः काल से ही मनाया जाता है। इसमें गायन, वादन और नृत्य के द्वारा श्रीकृष्ण जन्म की खुशी मन्दिर के

सभी दर्शकगण शास्त्रीय संगीत, लोकसंगीत व लोक नृत्य द्वारा मनाते हैं। यह उत्सव गोकुल में बहुत धूमधाम से मनाते हैं। कीर्तन में पालना व ढाढ़ी के पद विशेष रूप से धनाश्री में गाते हैं। शाम को मालव विशेष रूप से गाते हैं। राग विधान की दृष्टि वे नन्दमहोत्सव में संप्रदाय विशेष के गर्म रागों को छोड़कर सभी रागों का प्रयोग मिलता है।

3. छठी- भाद्रपद कृष्ण - 13

इस उत्सव में छठी के पद, पालना के पद विशेष रूप से गाये जाते हैं। बिलावल रामकली राग में पद गाते हैं।

4. श्री चन्द्रावली का उत्सव शु0 5 विशेष शृंगार

5. श्री ललिता का उत्सव भाद्रपद शु0 6- विशेष शृंगार

6. राधाष्टमी-भाद्रपद शुक्ल 8

इस सम्प्रदाय में राधा गुप्त होने के कारण राधाष्टमी गुप्त रूप में मनायी जाती है। कीर्तनों में केवल राधा जन्म के पद गाते हैं। श्री राधिकाजी रस स्वरूप हैं, रस निधान हैं। शुद्धाद्वैत में रस को धारण करने वाली श्री राधिकाजी हैं। बधाई के पद विशेषता आसावरी, देवगंधार, बिलावल, सारंग जैतश्री मालव, मारू, जैजैवंती, कान्हरा, ईशान में गाते हैं।

7. दान एकादशी-भाद्र पद शु0 11

यह उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण अपने साथियों सहित दान लूटते हैं। इस लीला में सभी राग विशेषतः, बिलावल, धनाश्री, षट, ललित, देवगंधार, विभास, टोडी, सारंग, नट, पूर्वी, गौडी, कल्याण, इमन, कान्हरा, केदारा, अडाना, जैजैवंती, बिहाग इन रागों का प्रयोग मिलता है। दान लीला के बड़े-बड़े पद जिन्हें प्रबंध भी कहा जाता है, गाये जाते हैं।

8. बावन द्वादशी-भाद्रपद शु0 12

संप्रदाय की 4 जयन्तियों में से इसे एक जयन्ती मानते हैं। चारों जयन्तियों में गीत गोविन्द की दशावतार वाली अष्टपदी गाई जाती है।¹

1. महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग- पं० सीताराम चतुर्वेदी पृ० 172

9. श्री हरिराय महाप्रभु उत्सव-आश्विन कृ० 5
10. श्री गोपीनाथ जी का उत्सव- आश्विन कृ० 15
11. श्री बालकृष्ण जी का उत्सव- आश्विन कृ० 12
12. नवरात्र आरंभ- आश्विन शु० प्रतिपदा
13. अष्टमी- आश्विन शुक्ला-8

श्रीमद्भागवत के अनुसार वेणुगीत का पाठ एवं वेणुनाद के पदों का गायन होता है। बिलावल, रामकली, खट, सारंग, गौड़ी, अडाना, कान्हरा रागों में पद गायन होता है।

14. दशहरा- आ० शु० 10

इस दिन राग बिलावल की आलापचारी फिर झांझ पखावज के साथ पद गाते हैं। सायंकाल भोग दर्शन में राग नट की आलापचारी के साथ “आज दशहरा शुभ दिन नीको” पद गाया जाता है। शयन की झांकी में राग मारू में “आज रघुपति चढ़े लंक गढ़ लेन को” पदविशेष रूप से गाते हैं। कांकरौली और नाथ द्वारा में यह पद केदार में गाते हैं।¹

15. शरद महोत्सव-आश्विन 15 (महारस)

पुष्टिमार्गीय संगीत में रास को बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें “गीतं, वाद्यं, तथा नृत्यं, संगीतमुच्यते” का साक्षात्कार होता है। कीर्तन को रास में नृत्य व अभिनय के रूप में, लीला रूप में देखते हैं। रास का प्रारंभ महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी एवं स्वामी श्री हरिदास जी द्वारा हुआ।² अष्टछाप के कवि श्री कृष्णदास जी ने विशेषकर रास के पद लिखे हैं। रासलीला में भैरव, विभास, रामकली, सुधरई, खट, टोडी, असावरी, सारंग, मालव, पूर्वी, जैजैवंती, नट, मारू, गौड़ी, कल्याण, इमन, कान्हरा, अडाना, केदार, बिहाग इन रागों का प्रयोग मिलता है। इसमें पौढ़ने के कीर्तन नहीं होते रास के कीर्तन होते हैं। आरती के बाद रूद्र वीणा वादन होता था।

-
1. पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत प्रो० सत्यभान शर्मा, पृ० 95
 2. पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत प्रो० सत्यभान शर्मा, पृ० 96

16. दीपावली कार्तिक कृ० 30

दीपावली संबंधित पद गाये जाते हैं। विशेष शृंगार होता है। विशेष रूप से कान्हरा की आलापचारी होती है। इस दिन शयन के कीर्तन (पौढ़ने के कीर्तन) नहीं होते।

17. अन्नकूट-कार्तिक शु० 1

दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा नाम से अधिक प्रचलित है। कीर्तन में राजभोग के समय बिलावल देवगंधार, सारंग, गौडसारंग, नटसारंग, कल्याण, मालव, इमन, कान्हरा, अडाना रागों में पद गाते हैं।

कार्तिक शु० 2 यमद्वितीया, कार्तिक शु० 8 गोपाष्टमी, कार्तिक शु० 1 अक्षय नवमी सम्प्रदाय के उत्सव हैं।

18. प्रबोधिनी-कार्तिक शु० 11

ईख के मण्डप में श्री बालकृष्ण जी विराजते हैं। शृंगार के समय बिलावल, शयन में मालव राग पद गायन होता है। तब राग पूर्वी, कल्याण, ईमन कान्हरा, नायकी, अडाना, केदार, बिहाग रागों में कीर्तन गायन सम्पन्न होकर दूसरे दि का० सु० 12 को मंगला में राग ललित का “सखी मोहे सोनो सीतल लागो” पद गाते हैं। संगीत की दृष्टि इस दिन के कीर्तन में गर्म रागों की अवतारणा जिसमें ललित गर्म राग माना है शुरू होता है।¹

19. श्री गिरिधर जी का उत्सव का० शु० 12

20. ति. श्री दाऊजी महाराजकृत 6 स्वरूपों का उत्सव मार्गशीर्ष कृ. 4

21. श्री गोसाईं जी के दूसरे लाल श्री गोविन्द जी का उत्सव- मार्गशीर्ष कृ० 8

22. श्री घनश्याम जी का उत्सव मार्गशीर्ष कृ० 13

23. श्री गोकुलनाथ जी का उत्सव मा० शु० 7

24. ति० श्री गोवर्द्धनेशजी कृत सप्तस्वरूपात्सव- मा० शु० 8

1. पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत प्रो० सत्यभान शर्मा, पृ० 97

25. छप्पन भोग

26. लाल बाबा श्री दाऊजी का जन्मोत्सव- पौ०कृ०

27. श्री गुसाई जी का उत्सव पौ०कृ० 1

गोस्वामी श्री बिठ्ठलनाथ जी महाराज को सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण अवतार मानकर इस उत्सव को नन्दोत्सव के रूप में मनाने का प्रचार है।

28. संक्राति

संगीत की दृष्टि से पद केवल झांझ और पखावज के साथ गाते हैं।

29. वसंतपंचमी मा०सु० 5

संगीत की दृष्टि से यह तिथि महत्वपूर्ण है। इससे एक दिन पहले से राग सारंग की रागमाला “सारंग नैनी” सुबह राजभोग में गाई जाती है। शयन भोग में राग ईमन की रागमाला “ए मन मान मेरो कहौ” गाई जाती है। वसंत पंचमी के दिन शृंगार के समय राग भैरव की रागमाला “भोर भयो जागे जाम लाल” तथा आठों झांकियों में राग “वसंत” गाया जाता है। वसंत पंचमी से मा०सु० चतुर्दशी तक वसंत के पदों का गायन चालू होता है। पूर्णिमा के दिन से ज्योतिष शास्त्र के अनुसार डंडा रोपण के साथ धमार चालू हो जाता है। यह क्रम फाल्गुन शु० 1 तक चलता है।

30. श्रीनाथ जी का पाटोत्सव- फा०कृ० 7

राजभोग के दर्शन में असावरी, संध्या समय भोग में काफी गाते हैं।

31. होलाष्टक (फा०शु० 8 से प्रारम्भ)

वसंत का समय समाप्त होने पर होरी के पद धमार के रूप में उच्चकोटि की साहित्य की रचनायें मिलती हैं। इन दिनों न अधिक ठंड न अधिक गर्मी होती अतः कीर्तन ठंडे और गर्म दोनों रागों में गाते हैं। भैरव, विभास, पंचम, षट, ललित, देवगंधार, सुघरई, रामकली, बिलावल, आसावरी, टोडी, जैतश्री धनाश्री, काफी सारंग नट, पूर्वी, मारू, सोरठ, गौरी रायसौ, कल्याण, ईमन, हमीर, कान्हरो, नायकी, केदारो, जयजयवंती, बिहागरो आदि सभी शीतोष्ण रागों में पद गाने से मंदिर का वातावरण भी

शीतोष्ण रहता है। सभी तरह के वाद्यों के साथ डफ, चंग व उपंग विशेष उल्लेखनीय है। विनोदस्वरूप गालियां गाने का प्रणालिका में उदाहरण है।¹

32. कुंज एकादशी फा०शु०

इस दिन से अष्टपदी गायन समाप्त होता है। देवगंधार, हमीर, कल्याण राग गाते हैं। लोकनृत्य भी करते हैं।

33. होली-फा०शु० 15

इस अवसर पर पुष्टिमार्गीय मंदिरों में बहुत उल्लासमय वातावरण रहता है। अबीर गुलाल से कीर्तन रंग और गहरा हो जाता है। होली, धमार के पदों के साथ रसिया भी गाते हैं। सुबह से शाम तक होली के पद गाये जाते हैं।

34. डोल उत्सव-चै० कृ० 1

रंग समाप्ति के पश्चात् डोल के पद देवगंधार से प्रारम्भ करते हैं।

35. संवत्सरोत्सव-चै०शु० 1

राग सारंग में पद गाते हैं।

36. गनगौर-चै०शु० 3

यह राजस्थान का प्रसिद्ध मेला है। चै० 3 से 6 तक चार दिन लगातार चलता है। गनगौर के पदों का गायन होता है नूर सारंग राग में पद मिलते हैं।

37. श्री यदुनाथ जी का उत्सव चै०शु० 6

38. रामनवमी-चै०शु० 7

राम से संबंधित पद कीर्तन साहित्य में है वे गाये जाते हैं। जन्म, पलना संबंधित पद है।

39. महाप्रभु जी का जन्मोत्सव वै०कृ० 11

पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक आचार्य श्रीमद् वल्लभाचार्य जी का जन्मोत्सव धूम धाम से मानते हैं। झांझ पखावज के साथ महाप्रभु जी की बधाइयां गाई जाती है।

1. पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत प्रो० सत्यभान शर्मा, पृ० 98

40. अक्षय तृतीया- वै०शु० 3

राजभोग में सारंग, संध्या आरती में हमीर चलता है। ये राग रथयात्रा तक यथावत चलते हैं।

41. नृसिंह जयंती-वै०शु० 14

वामन जयंती के समान यह जयंती मानते हैं कान्हरा में पद गायन करते हैं।

42. श्री दाऊजी महाराज कृत चार स्वरूप उत्सव जे०क० 1

43. गंगादशहरा जे०कृ० 10 यमुना दशमी के भाव से मनाते हैं।

44. नावका मनोरथ जे०शु० 5

45. स्नान यात्रा- जे०शु० 15

इस दिन स्नान के दर्शन होते हैं। बिलावल राग में आलाप, यमुना स्तुति के पद, इस दिन से रथयात्रा तक प्रातः सुहा, सुघराई, शाम को सोरठ राग पाया जाता है।

46. रथयात्रा-आषाढ़ शु० 2

यहां से आषाढ़ शु० 15 तक राग मल्हार गाया जाता है।

हिंडोले- श्रा०कृ० 1 से श्रा०शु० 15 तक

मल्हार के साथ अन्य सभी ठंडे रागों का व्यवहार प्रारंभ हो जाता है। इस समय चाहे जितने समय गाये दर्शन खुले रहेंगे।

ये सब उत्सव पुष्टिमार्ग के प्रमुख उत्सव हैं जिनमें राग सेवा देखते हुये संगीत का महत्त्व पुष्टिमार्ग में कितना अधिक है इसकी जानकारी होती है। पुष्टिमार्ग में ठंडे राग और गर्म राग की परिकल्पना शोध का विषय है।

इस सम्प्रदाय में भैरवी रागिनी नहीं गाई जाती है। उसके अलग-अलग कारण बताये जाते हैं। कहते हैं कि भैरवी गाते समय अकबर बादशाह ने उसे सुना इसलिये वह राग अच्छा हो गया। अतः भैरवी गाना इस सम्प्रदाय में वर्जित माना गया है।

राग सेवा

पुष्टिमार्ग में राग अर्थात् संगीत सेवा का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

गायन क्रिया को संप्रदाय में कीर्तन कहते हैं। कीर्तनिया के अभाव में या कीर्तनिया भाव से न गाये तो सेवा अधूरी समझी जाती है। वह श्रीमद्भवल्लभाचार्य एवं गो० बिठुलनाथ जी की शास्त्रीय विचारधारा है। पुष्टिमार्ग में कीर्तन श्रुति स्वरूप है। उसे वेद वाणी कहते हैं। अन्य संप्रदायों में वैदिक मंत्रों से उपासना होती है। उसी प्रकार पुष्टिमार्ग में वैदिक गान के रूप में कीर्तन सेवा होती है। अन्य सम्प्रदाय में पद गायन प्रणाली है लेकिन सेवा विधि का आवश्यक अंग नहीं है। यहां पर प्रभु की बाल लीला प्रातः उठाने से शुरू होती है वहां संगीत से ही मधुर स्वर में गान करके उठाया जाता है। गायन विधि शुद्ध शास्त्रीयता पर आधारित एवं परम्परा प्रवाह के आग्रह से युक्त है। प्रातःकाल कीर्तन भैरव से प्रारम्भ होता है। गाये जाने वाले रागों में भैरव, रामकली, देवगंगाधर, ललित, मालकोस, पंचम, सूहा, सुधराई, हिंडोल, इसके बाद बिलावल, असावरी, धनाश्री, टोड़ी दोपहर में सारंग, नूरसारंग, मदमात सारंग, सावंत सारंग, गौड सारंग, शुद्ध सारंग, शामको नट, गौरी, पूर्वी, सोरठ, बिहागरो आदि अनेक राग हैं। नित्य के राग भी भिन्न ऋतु के अनुसार बदलते रहते हैं। दानलीला व अन्नकूट पर बिलावल।

ठंडेराग

प्रातः कालीन-भैरव रामकली, देवगंधार, बिलावल, विभास, मारू, सारंग, धनाश्री, सूहामल्हार, सायंकालीन-पूर्वी, नट, कल्याण, ईमन, सोरठ, कान्हड़ा, अड़ाना, जयजयवंती मल्हार आदि।

गर्मराग

प्रातः ललित, मालकोस, पंचम, षट, तोड़ी, असावरी, मालव वसंत, आदि।

सायं

नायकी, केदार, बिहाग, रायसो, जैतश्री काफी वसंत आदि। सूरसारावली में एक पद में अनेक रागों के नामोल्लेख मिलते हैं-

ललिता ललित बजाय, रिझावत मधुर बीन कर लीने।

जान प्रभात राग पंचम षट, मालकोस रस भीने॥

सुर हिंडोल, मेघ, मालव पुनि सारंग सुर नट जान।
 सुर सावंत भूपाली, ईमन, करत कान्हारौ गान॥
 ऊंच अडाने के सुर सुनियत निपट नायकी लीन।
 करत बिहार मधुर केदारौ सकल सुरन सुखदीन॥
 सोरठ, गौड़मल्हार, सोहिनी, भैरव ललित बजायौ।
 मधुर विभास, सुनत बेलावल, दम्पति अतिसुख पायौ॥
 देवगिरि देसाख, देव पुनि, गौरी, श्री सुखरास।
 जैतसिरी अरू पूर्वी तोडी, आसावरी सुखरास॥
 रामकली, गुनकली, केतुकी सुर सुघराई गावे।
 जैजैवंती, जगत मोहिनी सुर सों बीन बजावे॥
 सूहा सरस मिल प्रीतम सुख सिंधूरा रस मान्यौ।
 जान प्रभात प्रभाती गायौ, भोर भयौ दोड जान्यौ॥¹

संगीत संबंधी साहित्य²

इस परम्परा के पदों में संगीत संबंधी नाम मिलते हैं-

1. बाजत ताल पखावज, आवज झांझन झमक लगाई (आसकरन)
2. एक गावत एक मृदंग बजावत एक नाचत दै तारी (जगन्नाथ)
3. तीन ग्राम इक्कीस मूर्छना उगुन पचास कोटितान (सूरश्याम)
4. तत थेई तत थेई त त ता थेई भैरो राग मिलि मुरली बजावे।
 नाचत नव वृषभान दुलारी अब घर में गति उपजावै॥ (कृष्णदास)
5. मदन मोहन कमल नयन नर्तत रास रंगे
 तत थेई तत थेई थेई गति अनेक लेत मान गान
 करत रूप सहज सरस अति सुधंगे (गोविन्द स्वामी)
6. अब्दुत नट भेष धरे नाचत गिरधरन लाल

1. सूर सारावली पृ० 1012-1018

2. पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत प्रो० सत्यभान शर्मा, पृ० 192,
 193, 194

उघटत संगति तत थेई थेई थेई ताथे।

लेत उरप मान लाग डाट सुधर तान आन

आन ग न न न न न न गति बंधान साधे॥ (रामकृष्ण हित दामोदर)

सांगीतिक वाद्य

पुष्टिमार्ग के कीर्तनों में अनेक वाद्यों के प्रयोग के भी उल्लेख मिलते हैं-
होली का वर्णन करते ब्रजपति ने वाद्यों का नामोल्लेख किया है-

चलरी सिंह पौर चांचरमची जहं खेलत ढोटा दोय।
बाजत बीन, रबाब, किन्नरी, अमृत कुण्डली जंत्र।
अधर सुधा जुन बांसुरी, हरिकरत मोहिनी मंत्र॥
सुर मंडल, पिनाक अरू महुवरि जलतरंग मनमोहै।
मदन भेरि अरू राय गिड गिड़ी सहनाई सुर सो है॥
कठतार तार कर तारी दे दे बजन चुटकिन चुटकारै।
झांझ झनक खंजीर बजे, भई झालर की झनकारें॥
एक शृंग शंख ध्वनि पुर रही, अधर धर मुख चंग।
कर ले डफहि बजावही, इक डिम-डिम ढोल मदंग॥
घुरे निसान नगारे की धुन, रह्यो घोष गाज।
दुंदुभि देव बजाय ही सब व्योम विमानन साज॥'

कीर्तन संग्रह भाग-2, वसन्त कीर्तन पृ0 139

चतुर्भुज दास कृत षट् ऋतु वार्ता में भी अनेक वाद्यों के उल्लेख प्राप्त है..वीना, चीन, मुरली, अमृतकुण्डली, जलतरंग, मदनभेरी, घौसा, दुंदुभी, निसान, नगाड़ा, शंख, घंटा, मुहचंग, सिंगी, खंजरी, ताल, षटताल, मंजीरा, महुवरी, धारी, ढोल, ढप, डिमडिम, झांझ, मृदंग, गिडगिड, पिनाक रबाब, जंत्र, सहनाई, श्री मण्डल, सारंगी, दुधारी, करताल, तुरही, किनारी।

षट ऋतु वार्ता पृ0 12

1. पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत प्रो० सत्यभान शर्मा, पृ0 133

पुष्टिमार्गीय संगीत में कीर्तनशैली ढाल, तरज, चाल चोखरा का ढाल इत्यादि गाया जाता है।¹ बीन का प्रयोग भी इस संप्रदाय में मिलता है। परमानन्दजी के एक पद में सारंगी का भी उल्लेख मिलता है- “सज, मुरज, आवज, सारंगी, झांझ किन्नरी बजे” होली के दिनों में धमार गाने के साथ झांझ के उपरान्त किन्नरी बजाते हैं। डफ भी झांझ मृदंग के संग बजाया जाता है।

यद्यपि पुष्टिमार्गीय संगीत परम्परा पर विचार करें तो प्रबंध ध्रुवपद, धमार और कुछ रचनायें ख्याल जैसी भी गाई जाती है। लेकिन जिनमें संगत पखावज की ही है कुछ रचनायें धमार से शुरू होकर अंत में तीनताल या कहरवा की चाल में चलती हैं फिर वापस धमार पर आते हैं। अतः ठुमरी का भी स्रोत इसमें दिखता है लेकिन अंतर इतना है कि यह सय ईश्वर के गुणगान के लिये हैं। आज पुष्टिमार्ग की बहुत सी रचनायें ख्याल या ठुमरी के रूप में भी अपनाई गई है। संगीत संबंधी साहित्य के उल्लेख से यह पता चलता है कि सभी अष्टछाप के कवि उच्चकोटि के गायक थे और यह संगीत की परंपरा लगभग 500 वर्ष पुरानी है और भारतीय संगीत जगत् में प्राप्त प्राचीनतम एवं शास्त्रीय दृष्टि से भी पुष्टि परम्परा है।

1. वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है तानसेन से सूरदास का एक पद सुनकर सम्राट अकबर सूरदास से मिले थे। उनके गायन से अत्यन्त प्रभावित हुये थे-

क. अष्टसखान की वार्ता पृ० 115

2. अकबर सूरदास की भेंट 1623 सं० में मथुरा में हुई थी।

ख. अष्टछाप परिचय पृ० 128, 139

वल्लभ सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञों को प्रश्रय दिया गया है। जैसे अकबर के दरबार में तानसेन ने सूरदास जी से भी सीखा है।² कुंभनदास से प्रभावित अकबर बादशाह।³ राजा मानसिंह की कुंभनदास

1. पु०१०पी० दर्पण- पुष्टिमार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत, ले बिठुलनाथ बपोदरा पृ० 237

2. वैष्णव की वार्ता, 1-पृ० 443, 2-पृ० 525, 3-पृ० 529

3. वैष्णव की वार्ता, 1-पृ० 443, 2-पृ० 525, 3-पृ० 529

अध्याय-3 (ख) महाप्रभु वल्लभाचार्य जी द्वारा/167

से मुलकात होकर प्रभावित होना।¹

कुंभनदास जी की रचना में वाद्यों का उल्लेख है।² कृष्णदास जी का वेश्या से ख्याल टप्पा सुनना।³ उस समय की संगीत की स्थिति दर्शाती हैं। काशी के संगीतकार भी इस संप्रदाय से प्रभावित थे। पं. छोटे रामदासजी ने भी 28 वर्ष मंदिर की सेवा में अपना गायन प्रस्तुत किया जिसमें गायन सारंगबीन (लुप्त वाद्य) और बीन बजाकर सुनाने की भी सेवा रही। पं. छोटे रामदासजी ने अघोरी बाबा कीनाराम से राधाकृष्ण की दीक्षा ली थी।

पुष्टिमार्ग में अष्टछाप के कविगण ही अष्टयाम कीर्तनकार भी रहे। इन्हीं की कृपा से आज उत्तर भारत में संगीत जीवित बचा है। यहाँ पर उल्लेख्य है कि सूरदास की रचनाओं में सूरदास जी जो प्रभु की लीला देखते हैं उन्हीं का वर्णन अपने काव्य में सूरदास कहकर करते हैं। एक परम्परा यह भी है कि भगवान अंतिम पंक्ति पूरी करते हैं जिसमें सूरश्याम करके रचनायें हैं। इस परंपरा की विशेषता है इनकी सेवा के नियम महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी, गो. विठ्ठलनाथ जी के समय से आज तक परम्परागत रूप में ही चले आ रहे हैं। रागों की सभी रचनायें ऋतु और समय के अनुसार गाने का विधान है। उसका उल्लंघन करने वाले को तुरन्त दण्ड मिलता है। सेवा में कोई त्रुटि रहने पर भगवान मनोरथ पूरे नहीं होने देते। बनारस के संगीतकारों पर समयानुकूल, ऋतु के अनुसार गाने का प्रभाव, उसी प्रकार रचनाओं में ईश्वर की लीला संबंधी रचनाओं का आधिक्य यह इसी संप्रदाय का परिणाम प्रतीत होता है।



-
1. वैष्णव की वार्ता, 1-पृ० 443, 2-पृ० 525, 3-पृ० 529
 2. वैष्णव की वार्ता, पृ. 528
 3. वैष्णव की वार्ता, पृ. 590

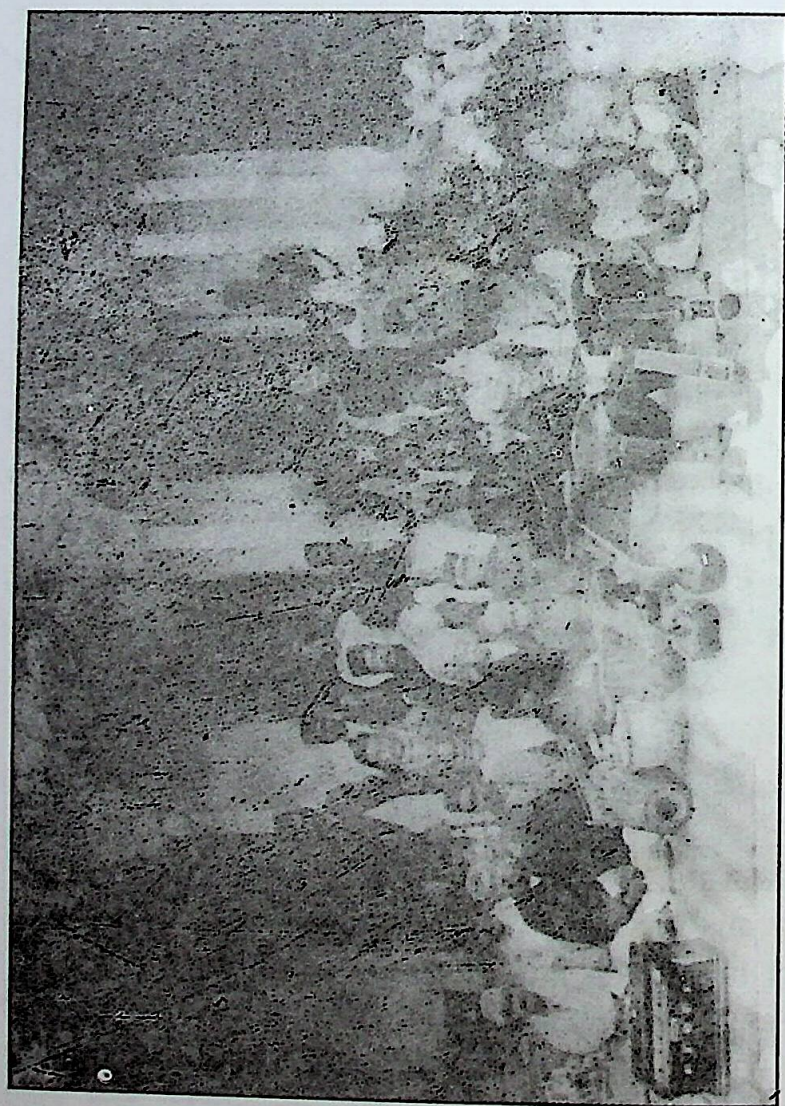
अध्याय-4

बनारस की संगीत परम्परा

जब से तीर्थ क्षेत्र और धार्मिक केन्द्र वाराणसी, बनारस या काशी का इतिहास ज्ञात है तभी से काशी की समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा, शिक्षा, उद्योग, व्यापार वैशिक परम्पराओं का प्रमाण उपलब्ध हैं। यत्र-तत्र बिखरे हुये पुरातात्विक साक्ष्यों, प्राचीन ग्रन्थों और कालकालांतर में आये विभिन्न यात्रियों के यात्रा विवरणों में काशी की पुष्ट संगीत परम्परा का उल्लेख मिलता है। बनारस में पीढ़ियों से गाने, बजाने, नाचने का काम करने वाले परिवार आज भी आबाद हैं, परन्तु आठ-दस पीढ़ी से ज्यादा का पारिवारिक विवरण प्रमाणिक रूप से प्राप्त करना और लिपिबद्ध करना बहुत अधिक व्यय, श्रम और समय साध्य हैं। जहाँ तक संभव हो सका है उन साक्ष्यों और किंवदन्तियों के आधार पर उस ऐतिहासिक विवरण की संरचना की गयी है।

ऐतिहासिक साक्ष्य मिले हैं कि प्राचीन काल में संस्कृत के विद्वान भी संगीतज्ञ होते थे। भारत की संस्कृति का प्राचीन प्रवाह बनारस की जीवन शैली को आज भी सिंचित करता रहता है। भारतीय शास्त्रोक्त नागर जीवन शैली में आज के बनारस में भी लोग रुचि पूर्वक संगीत की तीनों विधाओं को सीखते हैं, समझते हैं और अपने आनन्द के लिये गाते-बजाते हैं। आज भी बनारस में लोकसंगीत अधिकतर घरों में मांगलिक आयोजनों में और ऋतु

के अनुसार यथासमय उल्लासित होता रहता है। देशी और मार्गी दोनों संगीत बनारस की संगीत परम्परा में आज भी बना है; देशी और मार्गी की परिभाषा को लेकर कुछ लोगों में मतांतर अवश्य हो सकता है।



संगीत का बनारस घराना

बनारस के संगीत की एक बहुत बड़ी विशेषता रही है कि पुराने गुणीजनों ने लोकधुनों को क्लासिकल शैली में अपना कर बेमिसाल मजेदारी से उनको सजा दिया। फलतः कजली, झूला, चैती, चैतागौरी, होली के

प्रकारों के साथ विवाह के अवसर पर समधी को सुनाये जाने वाले गालियों के गीत और सेहरा आदि सभी यहाँ बनारस के क्लासिकल संगीत में हैं और तो और बारहमासा भी इन गुणीजनों ने अपना लिया।

स्थानीय परिवेश में बनारस के गुणीजनों ने बंगाल से बगदाद तक के संगीत को सुरक्षित रक्खा है। यहाँ बंगाल का बाऊल और भटियाली के साथ, चण्डिदास और विद्यापति के पद, पंजाब का टप्पा, मराठी का अभंग गायन और कर्नाटक संगीत की कृतियाँ सभी को बनारस के पुराने गुणीजनों ने उनकी अपनी विशेषताओं के साथ सुरक्षित रक्खा है। संगीत नायक पं. छोटे रामदास जी एवं उनकी गुरु परम्परा में प्राचीन ईरानी गायकी 'गुल' भी सुरक्षित रही है।

वाद्यवादन और नृत्य के क्षेत्र में भी बनारस में पूरी निष्ठा से परम्परा सुरक्षित रखने वाले गुणीजन बने रहे हैं। बनारस के पुराने संगीतज्ञ संगीत शास्त्र के भी विद्वान रहे हैं। हिन्दू संगीतज्ञों में संस्कृत, हिन्दी और देशी भाषाओं के साथ उर्दू और फारसी के ग्रंथों का भी अनुशीलन करने की परम्परा रही है और मुस्लिम संगीतज्ञों में भी संस्कृत, हिन्दी के पंडितों से शास्त्र ज्ञान प्राप्त करने की अभिरुचि रही है।

बनारस की संगीत परम्परा का तादात्म्य प्राचीन काल से निरंतर चली आ रही संस्कृत की नाट्य परम्परा से भी रहा है। बनारस के संस्कृत के विद्वान भी संगीत शास्त्र के अध्येता रहे हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वैदिक मंत्र पाठ और संस्कृत के वसंत-तिलका आदि छन्दों का सस्वर पाठ हमारी भारतीय परिभाषा से संगीत के अन्दर नहीं माने जाते; जैसा अध्ययन और विवरण पाश्चात्य विद्वानों ने प्रस्तुत किया है। सभी शास्त्रों की तरह बनारस में संगीत को भी गुरु-शिष्य परम्परा ने ही सुरक्षित रक्खा है। आज भी बनारस के ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ गुरु-शिष्य परम्परा से निकले हैं।

कभी काशी राज्य का विस्तार सैकड़ों मील के क्षेत्र में था। फलतः आज भी उस विस्तृत भूखण्ड में काशी की संगीत विधाओं का प्रभाव बना है। उदाहरणार्थ मिर्जापुरी कजली, कज्जरी देवी की उपासना की तिथि वर्षा ऋतु में भादों की तीज है। इसमें कजली खेलना और गाना, कर्मकाण्ड विधि

के आवश्यक अंग प्रामाणिक रूप से रहे हैं। इन्हीं कज्जली देवी की उपासना से कजली गायन शैली का जन्म हुआ है। जिसको लोकसंगीत में भी आत्मसात कर लिया गया है। आज का मिर्जापुर जनपद कभी बनारस शहर का उपनगर था।

कजली के साथ-साथ झूमरी गाने और नाचने की परम्परा बनारस में थी। आज से 60-70 वर्ष पूर्व तक बनारस में कजली के रतजगे में झूमरी का नाच, गाना होता था, अब यह लुप्त हो चुका है। कज्जली देवी के पूजन की परम्परा जितनी प्राचीन है उतनी ही प्राचीन कजली और झूमरी गायन की परम्परा भी है। इसी कजली और झूमरी गायन के साथ ठुमरी गायन का भी उद्भव हुआ है। यह परम्परा 100-200 वर्षों के भीतर की नहीं है। विद्वानों को विचार करना चाहिये कि ठुमरी किस भाषा का शब्द है और उसकी उत्पत्ति क्या है?

श्रावण के शुक्ल पक्ष का एक नाम हिंदोल है। देश के सभी मंदिरों में विशेषतः बनारस में आज भी श्रावण शुक्ल पक्ष के अंतिम पाँच दिन तो अवश्य ही देवमूर्ति का हिन्दोलोत्सव मनाया जाता है। हिन्दोलोत्सव को हिन्दी में झूलनोत्सव कहते हैं। महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्गीय परम्परा में माधुरीसिक्त हिन्दोलोत्सव का बनारस में आज भी आयोजन होता है। इसी अवसर पर शास्त्रीय विधान से गाये जाने वाले पदों को बनारस में झूला, हिंडोला, पालना आदि गाने की परम्परा रही हैं। लोकगीतों में भी समानान्तर झूला गाने की परम्परा रही हैं। धमार, दादरा, सादरा, खेमटा, कहरवा अलग-अलग तालों के नाम हैं। सैकड़ों वर्षों से बनारस में इन तालों में गाये जाने वाले पदों का भी नाम तत्सम् हो गया है। इसके गायन के भी दो भेद हैं। नाचकर गाने वाली बंदिशें और बैठकर गानेवाली बन्दिशें। जहाँ बन्दिशें उल्लिखित हैं उसमें बनारस के ख्याति प्राप्त संगीत विद्वान श्री मिठाई लाल की नाच की बन्दिश “चली जात भरन जल” उद्धृत है।

बनारस के धार्मिक पर्व और आयोजित होने वाले मेले जो अति प्राचीन काल से उत्सव और महोत्सवों के रूप में आयोजित होते थे उन्हीं के परिवर्तित प्रतीक कौमुदी महोत्सवादिक आयोजनों में संगीत को मुख्य स्थान

प्राप्त रहा है। तदनुसार काशी के ऋतुपरक संगीत में इन महोत्सवों का प्रभाव मिलता है। इसी क्रम में बनारस में वसंत पंचमी से सोहिनी और वसंत गाने की प्रथा रही है। फाल्गुन महीने में महाशिवरात्री के पर्व से बनारस में होली के पदों का गायन होता रहा है। होली के गीत संस्कृत, हिन्दी और उर्दू से प्रभावित बोलचाल की भाषा में भी है।

प्राचीन काल से भी होली के पद धमार में गाये जाते रहे। बनारस की होली की विशेषता है कि धमार गायन की परम्परा को सुरक्षित रखते हुये बनारसी शैली की होलियों को दीपचंदी और सितारखानी में भी गाया जाता है। डफ और चंग की होली ब्रजमण्डल और राजस्थानी परम्परा के अनुसार कहरवा और दादरा में ही गाते हैं। बनारस की गायकी में होली के कहन (बोल बनाना) का ढंग ठुमरी से कुछ अलग हो जाता है। बनारस में होली के पदों को चौबीसों घंटों की विभिन्न रागों में गाया जा रहा है।

भरत मत में चैती एक राग की पुत्रवधु बताई गई है। बनारस की गायकी में चैती गाने की विधि अलग है। इसी का दूसरा प्रकार घाटों के नाम से गाया जाता है, जिसे आजकल लोग चैती कहते हैं। लोकसंगीत के चैता को गौरी से जोड़कर बनारस में चैता गौरी भी गाने की परम्परा बनी है। यही चैतागौरी बनारस से फैजाबाद और लखनऊ घराने में भी पहुँच गई। चैतागौरी की बंदिश “सोवत निंदिया जगाये हो रामा” बनारस के लोगों ने भी गाया और बेगम अख्तर ने भी। बनारस में ध्रुपद, धमार गाने के अलग-अलग घरानेदार विद्वान हिन्दू और मुसलमान दोनों रहे हैं। हर घराने की अपनी एक पहचान रही है परन्तु सभी घरानों में बनारसी असर बना रहा।

विलंबित, द्रुत ख्याल में, और तराना में भी घरानों की अपनी अलग-अलग बन्दिशें भी है और गायकी की अपनी अलग-अलग पहचान भी। परन्तु सभी में बनारसी रंग बना रहता है। यही बात चतुरंग आदि के साथ भी है। टप्पा गायकी बनारस की अपनी खास एक धरोहर रही है। बनारसी टप्पा गायकी असली टप्पा गायकी कही जा सकती है। यहाँ की गायकी में टप्पा तत्कालीन टप्पा के परम आचार्य से ही पियरी घराने द्वारा बनारसी गायकी का अंग बना। बनारसी गायकी में प्राचीन ईरानी गायकी गुल भी

और संस्कृत की अष्टपदी भी हैं। बनारस के संस्कृत के विद्वानों और आचार्यों और यहाँ के संगीतज्ञों ने भी संस्कृत स्तोत्र और पदों की गायकी जीवित रखी है। हमारे गुरुजी, काशीराज के राजवैद्य पं. शिवकुमार शास्त्री के पिता श्री राजवैद्य पं. रामशंकर वैद्य और पितामह वैद्य शिरोमणि पंडित बाबूनन्दनजी और उनके गुरुभाई वैद्यरत्न पंडित त्र्यंबक शास्त्री जी महाराज और संस्कृत के अन्य आदरणीय विद्वान विभिन्न राग-रागिनियों में संस्कृत के पद का गायन विभिन्न स्वर लय तालों में करते रहे हैं। वैद्यरत्न पंडित त्र्यंबक शास्त्री जी के यहाँ अलग गाने की परम्परा रही हैं। काशीराज महाराज प्रभुनारायण गुरुदेव स्वयं भी संस्कृत पदों को गाते थे और गेय संस्कृत काव्य प्रणेता भी थे। महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के पुष्टि मार्ग की षष्ठ पीठ काशी में हैं। वल्लभ कुल भूषण महाराज श्री गोस्वामी जीवनलाल जी और महाराज श्री गो. मुरलीधरलाल जी महाराज जी संस्कृत पदों के गायन के विशेषज्ञ थे। वर्तमान महाराज श्री गो. श्याम मनोहर जी भी उसी परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं।

ऐसा विवरण मिलता है कि सूफी संगीतज्ञ अमीर खुसरो और कर्नाटक संगीत के गोपाल नायक के परस्पर आदान-प्रदान से कर्नाटक शैली का शुद्ध सप्तक अपनाकर उत्तर भारत में संगीत की नई धारा बनी। बनारस के इतिहास का अध्ययन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि महाराज गोविन्द चन्द्र के काल में ही बनारस में कर्नाटक और उत्तर भारत की संगीत का संगम हो चुका था। इसी प्रवाह को आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी के आत्मज जहांगीर कालीन गोस्वामी विठ्ठलनाथ महाराजश्रीजी ने अपने मंदिरों की संगीत सेवा में समाविष्ट कर दिया। उल्लेख है श्रीमद्वल्लभ कुल के पूर्व गुरु आंध्रप्रदेश के थे और अपने साथ कर्नाटक संगीत लेकर ही काशी आये थे। काशी में कर्नाटक संगीत की परम्परा पियरी घराने में स्थानीय परम्परा के रूप में सुरक्षित रही। इसी परम्परा के शिष्य संगीत गायन पं. छोटे रामदास जी कर्नाटक संगीत शैली में भी प्रवीण आचार्य थे।

बनारस गायकी का एक अंग लावनी भारतेन्दु मंडल के विख्यात

साहित्यकार पं. प्रताप नारायण मिश्र के भांजे को मृत्यु के साथ आज से 30-32 वर्ष पूर्व समाप्त हुई। यही खमसा और लोरिक के साथ भी हुआ।

वाद्य वादन में भी बनारस के सभी घराने अपनी विशेषताओं से सुशोभित रहे हैं। सारंगी, सितार, बीन, इसराज, तार-शहनाई, के साथ कुछ दुर्लभ वाद्ययंत्रों का वादन भी यहाँ की विशेषता रही है। उदाहरणार्थ- सारंग, सारंगी, बीन, कौमुदकीवीणा, सुरसिंगार, भारतीय काष्ठतरंग, बुलबुलतरंग और शंखतरंग बाहर से आये वाद्ययन्त्रों में जलतरंग, पियानो, वायलीन, वायोला, चेल्लो, बैजो और हारमोनियम बजाने में भी यहाँ के संगीतज्ञों ने महारत हासिल की।

घर-घर की गंगा पुजैया आदि में मंदिरों और रईसों के नौबतखाने में बजते-बजते बनारस की शहनाई ने तो दुनिया भर में अपनी पहचान बना ही लिया। भगवान कृष्ण की बंशी भी यहाँ के संगीतज्ञों का प्रिय वाद्य रहा है। तबला, पखावज, खोल, मृदंगम्, मंजीरा और खंजड़ी को बजाने में बनारस की अलग पहचान आज तक बनी हुई है।

बनारस में जंगमबाड़ी निवासी परम वैष्णव मधुसुदन अधिकारी जी जिन्हें बंगला संकीर्तन के लिये बंगाल से ही कीर्तन सम्राट की उपाधि मिली थी। मधुसुदन अधिकारी जी का देहांत अभी बीस-पच्चीस वर्ष पहले हुआ है। यहाँ बनारस में भी गोपीचन्द बजाकर गाने वाले बाऊल गायक थे जो पिछले तीन-चार दशकों में लुप्त हो गये। इसी तरह राजस्थान से हरियाणा और बनारस तक फैले यायावर बमलहरी गायक अब लुप्त हो चुके हैं।

बनारस में हनुमान घाट और उसके आस-पास के क्षेत्र में आज भी कर्नाटक संगीत के गायक, वादक और नर्तक रहते हैं।

बनारस के संगीत को सजाने-सँवारने में भारत के सभी प्रदेशों से आगत संगीतज्ञों ने, संत-महात्माओं ने, बनारस के अमीर और गरीब जनसामान्य ने, तत्कालीन जमींदारों तथा तालुकेदारों ने और पूरे देश की रियासतों के रजवाड़ों ने तो पुष्ट किया ही है। बनारस के संगीतज्ञों के साथ बनारस के कला और संगीत मर्मज्ञ विद्वानों ने भी इस परम्परा को बलवान किया है।

बनारस की सबसे लोकप्रिय भैरवी की ठुमरियों में एक है- “बाबुल

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./175

मोरा नैहर छूटो ही जाये” जिसे लोग संत कबीरदास की रचना बताते हैं। आज पूरे देश में कुंदनलाल सहगल की गाई इसकी धुन लोग गा रहे हैं। इस धुन को बनाने की प्रेरणा संगीत नायक छोटे रामदासजी से ही न्यू थियेटर कलकत्ता के आर.सी. बोराल की मिली थी।

कबीरदास की रचनायें तो बनारस की कोठेवालियों ने भी अपनाया इसी तरह बनारस की अनेक बंदिशें पूरे देश में गाई जा रही हैं। जगदीप जी की मिया की तोड़ी की बंदिश लंगर कांकरिया जिन मारो आज पूरे भारत में गाई जा रही है। देश की सुविख्यात और श्रेष्ठतम गायिका केसरबाई केरकर ने भी बनारस की भैरवी और चैती सीखकर एच.एम.वी. में रेकार्डिंग करायी थी। यह दोनों बंदिशें संगीत-नायक पंडित छोटे रामदासजी की ही बनाई हैं। आज भी बनारस और पूरे देश में संत-महात्माओं के पद लोकप्रिय है। बहुत से पदों को ध्रुपद, धमार और ख्याल के रूप में गाते हैं।

टप्पा- बनारस की संगीत परम्परा में टप्पा गायन यहाँ की विशेषता रही है। इसे संगीत के आचार्यों ने और कोठेवालियों ने पूरे देश में लोकप्रिय बनाया है। पंजाब का लोकगीत टप्पा क्लासिकल गायन में कब और कैसे अपनाया गया इसके बारे में बनारस के सबसे प्राचीन घराने के वयोवृद्ध लोगों के कथनानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है।

बहुतेरे लोग शोरी मिया को टप्पा गायकी का प्रवर्तक मानते हैं जो काल्पनिक उड़ान है। शोरी, टप्पा के रचयिता और प्रवर्तक गुलाम नबी शाह की प्रेयसी थी। इसी शोरी से संबंधित बहुसंख्यक रचनायें टप्पा गायकी में हैं। कालांतर में बनारस से राजस्थान और बंगाल तक टप्पा गायकी फैल गई।

मुगल बादशाह अकबर का जन्म सन् 1556 ईस्वी और मृत्यु 1607 ईस्वी में इतिहासकार मानते हैं। अकबर के दरबार में तानसेन भारतीय संगीत के इतिहास पुरुष रहे; इस पर कोई भी विवाद नहीं है।

महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी का अवतरण 1479 ईस्वी और लीला प्रवेश 1531 ई. है। महाप्रभु जी के समय के चार कीर्तनकार हैं- 1. कुंभनदास, 2. सूरदास, 3. परमानन्द दास, 4. कृष्णदास। महाप्रभु जी के

अनुयायी कृष्णदास जी 84 वैष्णवन की वार्ता में तत्कालीन एक गायिका से गाना सुनने का विवरण देते हैं। इस विवरण में स्पष्ट उल्लेख है कि उन्होंने टप्पा गायन सुना। यह ऐतिहासिक प्रमाण टप्पा गायकी को तानसेन से पहले सिद्ध करता है।

बनारस में भी ऐसी ही मान्यता रही है। बतलाते हैं कि हरियाणा पंजाब से राजस्थान, गुजरात, सिंध, अफगानिस्तान और काश्मीर के विस्तृत भूखण्ड के फ़कीरों की एक परम्परा है जो अपने नाम के आगे 'शाह' लगाती है। मेरे गुरुजी पं. शिवकुमार शास्त्री के पास इसी शाह परम्परा के फ़कीर मस्तान शाह काश्मीर से आते रहते थे, 25-26 वर्ष पूर्व इनका देहांत हो गया। इसी फ़कीरी परम्परा के गुलाम नबी शहा भी थे, जिन्होंने टप्पा का क्लासिकल संगीत संस्करण प्रचारित किया। कुछ लोग ऐसा भी बतलाते हैं कि इनके पिता का नाम गुलाब रसूल खाँ था जो पंजाब के झंगसियाल गाँव के रहने वाले थे। अपनी प्रेयसी शोरी के विरह से व्यथित गुलाम नबी अविवाहित ही रह गये।

गुलाम नबी शाह मनमौजी और फक्कड़ होने के साथ-साथ कहीं एक जगह टिककर रहते नहीं थे। एक छोटी बाँसुरी बजाते और कभी टप्पा गाते यह दूर-दूर तक घूमते रहते। इनके साथ इनके शिष्यों की भीड़ भी घूमती रहती और उन्हीं शिष्यों ने इनकी रचनाओं और गायकी को जीवित रक्खा। इसी शिष्य परम्परा के पीढ़ियों बाद एक शिष्य हुये अमोलक शहा जो सदारंग-अदारंग के समकालीन थे।

बनारस के पियरी घराने के दोनों भाई "प्रसिद्ध-मनोहरजी" की जोड़ी उस काल में बनारस से बंगाल और पंजाब तक चमक चुकी थी। तत्कालीन महाराज पटियाला के यहाँ इनकी अद्भुत महफिल कभी हुई थी। प्रसिद्ध-मनोहरजी लखनऊ के नवाब के दरबार में भी समादृत रहें। वहीं अमोलक शहा भी अपने शिष्य सादेखाँ के साथ दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे। सादेखाँ के बारे में बतलाते हैं कि यह अयोध्या निवासी ब्राह्मण वंश के थे और इनका नाम सदाशिव मिश्र था। हो सकता है नवाबी दरबार में इनका नाम सादेखाँ हो गया। संगीत विद्वान प्रसिद्ध-मनोहर जी के ही स्नेहपूर्ण आमंत्रण पर गुरु

शिष्य दोनों बनारस आ गये। अमोलक शहा तो कुछ दिनों बाद दिल्ली पंजाब की तरफ वापस चले गये और सादेखाँ यहीं बनारस में रह गये। बनारस में सादेखाँ भी रमता जोगी की तरह रहते थे। जैसा स्वर्गीय पंडित हरिशंकर मिश्र जी ने बतलाया था उसके अनुसार श्रीयुत् प्रसिद्ध-मनोहर जी सादेखाँ के साथ परछाई की तरह लगे रहते थे। इस सेवा का उन्हें फल भी अद्वितीय मिला कि सादेखाँ के टप्पा का पूरा खजाना पियरी घराने में आ गया। इसी पियरी घराने से ही तत्कालीन गायिकाओं ने; जिसमें प्रमुख हैं चित्रा और इमामबांदी ने टप्पा गायकी प्राप्त किया। इमामबांदी के लड़के रमजान खाँ और नगेन्द्र नाथ भट्टाचार्य ने इसी परम्परा से टप्पा सीखा और उसे बंगाल में लोकप्रिय बनाया।

काशी के सभी आकर्षणों ने मिलकर सांस्कृतिक भारत के हर प्रदेशों के निवासियों को यहाँ बुला लिया और उन सभी ने मिलकर बनारस में पांडित्य और संगीत की परम्परा को पुष्ट किया है। बनारसी संस्कृति का प्रभाव अति प्राचीन काल से ही बहुत बड़े क्षेत्र में विस्तृत रहा है। दसवीं से बारहवीं शताब्दी में काशीराज्य के विस्तृत क्षेत्र में बनारसी संस्कृति और संगीत व्यापक था। दूसरे प्रदेशों के काशी से होने वाले आदान-प्रदान ने बनारस के संगीत को और अधिक सम्पन्न बनाया। इसीलिये बनारस के सीमित क्षेत्र में गायन, वादन और नृत्य के विशेषज्ञ गुणीजन इतने अधिक लोकप्रिय हो चुके हैं कि सभी का विस्तृत जीवन वृत्त संक्षेप में इस पुस्तक में प्रस्तुत करना संभव नहीं है। इसीलिये बनारस में संगीत के घरानों की वंशावली और संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

1. जयकरणजी

कंपनी काल के काशी निवासी संगीत विद्वान जयकरण जी इतिहास प्रसिद्ध ध्रुपद गायक थे। इनके पूर्वज संभवतः बनारस से ही जाकर कभी बेतिया में बस गये और कालांतर में बेतिया का ध्रुपद घराना बन गया। अपनी धार्मिक प्रवृत्ति से यह बनारस, कबीरचौरा में आकर स्थाई रूप से रहने लगे। ध्रुपद की चारों बानियों के विशेषज्ञ गायक के रूप में आप सभी समकालीन संगीतज्ञों द्वारा वयोवृद्ध के रूप में समादृत और मान्य हुये। इनके

शिष्य ख्यातिप्राप्त ध्रुपदिया वेणीमाधव भट्ट, भैयाजी लाण्डे (काशी), श्री भोलानाथ भट्ट (इलाहाबाद) हो गये हैं। पं. जयकरण जी की एक ही संतान उनकी लड़की धन्यकुमारी का विवाह बनारस के यशस्वी और उच्चकोटि के संगीतज्ञ गायक पंडित बड़े रामदासजी से हुआ। पं. बड़े रामदास जी ने भी अपने ससुर से ध्रुपद गायकी की शिक्षा प्राप्त की। बड़े रामदास जी ने कृतित्व से अपने गुरु की कीर्ति को बढ़ाया। (बड़े रामदास जी का विस्तृत परिचय आगे दिया जा रहा है।)

2. शिवदासजी प्रयागजी

काशीराज महाराज ईश्वरी नारायण सिंह के दरबार से सम्मानित शिवदासजी और प्रयागजी के पूर्वज कूच बिहार रियासत में मुलाजिम थे। शिवदासजी, प्रयागजी को संगीत शिक्षा बनारस के ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले गुतमन गाँव, खैरबगहा के श्री रामप्रसाद मिश्र से मिली जो इन दोनों भाईयों के मामा थे। पहले ये रामपुरा में रहते थे, बाद में कबीरचौरा में रहने लगे। शिवदासजी, प्रयागजी को महाराज बनारस ईश्वरी नारायण सिंह जी ने अपनी रियासत में नाजिर बनाया था। नेपाल दरबार छोड़कर जब बड़कू मिया ध्रुपदिया जब महाराज बनारस के दरबार में आ गये तब इन दोनों भाईयों ने उनसे गायन और वादन की पूरी शिक्षा प्राप्त की।

पंडित शिवदास मिश्र श्रेष्ठ गायक और बीन, सरोद, सुरसिंगार, सितार आदि वाद्यों के कुशल वादक भी थे। इनके पुत्र श्री घिन्नू मिश्र गायक तथा सारंगी वादक तथा श्री घिन्नू मिश्र के पुत्र श्री बैजनाथ मिश्र (बगड़ मिश्र) सारंगी वादक हुये। दोनों खयाल और टप्पा भी गाते थे। श्री बैजनाथ मिश्र के बाद काशी में इनकी परम्परा में श्री जालपा प्रसाद मिश्र अंतिम गायक के रूप में प्रतिष्ठित रहे। जिनका निधन 2002 ईस्वी में हो गया। अपनी वंश परम्परा के अतिरिक्त अपने नाना चतुर्मुखी प्रतिभाधनी गायक बड़े रामदास से भी जालपा प्रसाद मिश्र ने संगीत शिक्षा ग्रहण की थी। विरासत में प्राप्त ध्रुपद, धमार, खयाल, टप्पा, ठुमरी, चैता, कजली, होली, भजन, गज़ल, गीत सभी विधाओं को कुशलतापूर्वक गाते थे।

प्रयागजी मिश्र- दूसरे भाई गायक एवं सितार के धुरंदर वादक हुये।

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./179



प्रयाग जी



मिठाई लाल जी



दरगाही जी

आपके बाद आपके सुयोग्य सुपुत्र श्री मिठाई लाल जी जिन्हें संगीत की संपूर्ण शिक्षा अपने पिता एवं चाचा से मिली जिन्होंने संगीत जगत् में ख्याति अर्जित की। श्री मिठाई लाल मिश्र ने मुगल दरबार से काशी पधारे उस्ताद सादिक अली खाँ से बीन और सुरासिंगार की शिक्षा प्राप्त की। अतः उत्कृष्ट गायक के साथ वीणा वादन में भी पारंगत हुये। मिठाई लाल जी के पुत्र

180/संगीतमय बनारस

जगन्नाथ मिश्र गवैया और सारंगी वादक हो गये हैं। जगन्नाथ मिश्र के पुत्र कमल मिश्र हुये सुयोग्य गायक और हार्मोनियम वादक कमल मिश्र (कालिन्दी) बनारस से मुम्बई चले गये और सुख्यात संगीतज्ञ हुये।

इनके घराने के शिष्य परम्परा में फुलपुर जिला इलाहाबाद निवासी पदारथ मिश्र, इलाहाबाद निवासी मुनक्की मिश्र और श्रेष्ठ तबला वादक श्री भैरो प्रसाद मिश्र ने इनके यहाँ से गायन सीखा। मिठाई लाल मिश्र जी शिष्यों में सारंगी वादक दुर्गा प्रसाद और मग्नन मिश्र, सितार वादक खेतु बाबू; वीणा वादक श्याम शंकर चौधरी; गायक पंडित श्रीचन्द्र मिश्र उत्कृष्ट विद्वान हो गये। श्री चन्दमिश्र जी की शिष्या भारत सरकार से सम्मानित गिरिजा देवी हैं। ठुमरी गायक धीरेन बाबू को भी लोग मिठाई लाल जी का शिष्य बताते हैं, परन्तु धीरेन बाबू संगीत गायक पं. छोटे रामदास जी के सुननेकार चेला थे। तत्कालीन प्रसिद्ध अनेक गायिकायें भी मिठाई लाल जी की शिष्यायें थी। अपने पिता उस्ताद सादिक अली खाँ के शिष्य पं. मिठाई लाल के पास सितार वादन के लिये उस्ताद सादिक अली खाँ के पुत्र आशिक अली भी आते रहते थे। अपने पूर्वजों के समान इन्हें भी काशीराज के दरबार में सम्मान प्राप्त हुआ था।

3. दरगाहीजी

विख्यात तबला वादक के पूर्वज हरहिया गाँव जिला आजमगढ़ के निवासी थे। तत्कालीन बनारस के संगीत के वातवरण से आकृष्ट होकर यह परिवार कई पीढ़ी पहले ही कबीरचौरा, बनारस का निवासी हो गया। श्री शरण जी ने इतिहास प्रसिद्ध, बनारस घराने के श्रेष्ठतम मान्य तबला आचार्य श्री राम सहाय जी से विधिपूर्वक तबला का प्रशिक्षण लिया। अपने समय के यह भी लब्धप्रतिष्ठ तबला वादक थे। शरण मिश्र जी का तबला वादन और ताल शास्त्र पर ऐसा अधिकार हो गया कि इनके घर के उत्तराधिकारियों को बनारस में तबला का एक नया घराना चलाने के अवसर मिला।

दरगाही मिश्र- तबला वादक शरण जी के एकमात्र पुत्र दरगाही मिश्र हुये। पिताजी की तबला वादन की विद्या को इन्होंने आत्मसात किया ही और अपने घर के तबला वादन का घराना भी विकसित किया। कबीरचौरा में घर-

घर में गाने, बजाने और नाचने का संपन्न वातावरण था इसी से इन्हें प्रेरणा मिली। बनारस के ख्यातिप्राप्त संगीत घराने शिवदास जी प्रयाग जी के परिवार में आपका विवाह हुआ। अपने श्वसुर शिवदास जी और प्रयाग जी से गायन और वाद्य वादन की शिक्षा लेकर पियरी घराने के विद्वान, बहुमुखी प्रतिभावाले संगीतज्ञ पं. शिवसहाय मिश्र जी से संगीत की सभी विधाओं में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया। गाना, बजाना, नाचना और तालवाद्य सभी आपके घराने में सुशोभित हुआ।

बनारस की पुरानी संगीत संस्था काशी संगीत समाज (स्था. 1906 ई.) के विद्यालय में आप प्रधानाचार्य भी थे और 1906 ई. में स्थापित भारतेन्दु नाटक मण्डली में आप संगीत निर्देशक भी रहे। संगीत की समुन्नति लिये आपने अपने वंशजों और शिष्यों को गाना, बजाना, नाचना और तालवाद्य में निष्णात् और योग्यतम संगीतज्ञ बना दिया। संगीत की सभी विधाओं के कुशल विद्वान दरगाही मिश्र जी अपने गायन के लिये विशेष रूप से मान्य रहे। पर्याप्त दीर्घायु में आपका निधन 1950 ई. के बाद काशी में हुआ। आपकी परम्परा में अभी भी उच्चकोटि के संगीत विद्वान बने हैं।

श्री दरगाही जी के 4 पुत्र- 1. विक्रमादित्य मिश्र - तबला वादक, 2. श्री गोवर्धन मिश्र - सारंगी वादक, 3. श्री सुरजू मिश्र - गवैया, 4. वंशी मिश्र - सारंगी वादक ने अपने घराने की कीर्ति को बढ़ाया। विद्याधरी बाई जदनबाई दरगाहीजी की शिष्या थी। इनके शिष्य नन्द किशोर मिश्र नृत्यविशेषज्ञ थे। विक्रमादित्य के पुत्र गामा मिश्र और उनके पुत्र रंगनाथ मिश्र अपने घराने के तबला विशेषज्ञ थे। रंगनाथ जी के छोटे भाई सुरेन्द्र मोहन सितार वादक थे। विजय शंकर और उदयशंकर तबलावादक और सबसे छोटे भाई अजयशंकर कथक नृत्य पर अधिकार रखते हैं। दरगाही जी के पुत्र गायनाचार्य सुरजू मिश्र के पुत्र पं. श्रीचन्द्र मिश्र अपने घराने के सभी विधाओं के आचार्य थे। उनके दो पुत्र संगीत से जुड़े हैं और उनकी शिष्य परम्परा में सुयोग्य शिष्य देश-विदेश में ख्याति अर्जित कर चुके हैं।

दरगाही जी के घराने में पियरी घराना और शिवदासजी प्रयागजी के

घराने की शिक्षा का संगम रहा है।

4. मौलवीराम - मुंशीराम

कबीरचौरा निवासी गुणी संगीतज्ञ परिवार की यह परम्परा पं. दीन मिश्र और उनके पुत्र बिहारी मिश्र जी की हैं। यह परिवार बनारस के कथक परिवारों का चौधरी परिवार रहा है। बिहारी मिश्र की बहिन का विवाह प्रसिद्ध तबलावादक भैरवजी के पिता से हुआ था। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि आप लोगों के पूर्वजों का निवास स्थल नई बस्ती भी था।

आप दोनों भाई जितने स्वरूपवान थे, गुणी थे, उतने ही शिष्ट और मृदुभाषी भी। आपके पिताजी बिहारी मिश्र तत्कालीन महाराज बनारस के दरबारी संगीतज्ञ भी थे, वे कुशल सारंगी वादक और सारन्दा वादक, गायक और तबले में माहिर थे। बड़े भाई मौलवी रामजी अपने पिता और भैरवजी की शिक्षा प्राप्त श्रेष्ठ तबला वादक हो गये। छोटे भाई मुंशीरामजी उतने ही श्रेष्ठ गायक और सारंगी वादक हुये।

इन दोनों भाई के जन्म से जुड़ी एक महत्वपूर्ण घटना उद्धृत करना आवश्यक हैं। मुसलमान लोग रमजान के महीने में रोजा रखते हैं, सबेरे सूर्योदय से पहले ही खाना-पीना खा लेते हैं और दिनभर निर्जल निराहार काटते हैं। इन दोनों भाइयों के जन्म के पहले इनके घर के दरवाजे को किसी ने उषःकाल में ही जोर-जोर से खटखटाया। बिहारी जी ने दरवाजा खोला तो एक फ़कीर सामने खड़ा था, जिसने पैट भर खिलाने के लिये कहा। बिहारी जी ने शीघ्रातिशीघ्र द्वार पर आये उस फ़कीर को खाना खिलाया। भरपेट भोजन कर वह अनजान फ़कीर जाते-जाते इतना कह गया- “जल्दी ही तुमको दो लड़के होंगे” उनका नाम अरबी या फ़ारसी का ही रखना। इसी से पहले इन दोनों का नाम था मौलवी और मुंशी।

कुछ दिनों बाद इनके पिताजी के यहाँ एक नानक पंथी फ़कीर भी आये और वह कह गये कि दोनों के नाम के आगे राम जोड़ दो। कुछ लोग नानकपंथी फ़कीर को बाबा कीनाराम के औघड़पंथी भी कहते हैं। इनके बाद ही इन दोनों का नाम हो गया मौलवीराम और मुंशीराम।

1871 ई. और 1885 ई. में इन लोगों का जन्म और 1941 ई.

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./183

और 1965 ई. क्रमशः इनकी निधन हुआ। अपने जीवन काल में पूरे देश में ख्याति और प्रतिष्ठा पाई और बड़े-बड़े संगीत आयोजनों में दूर-दूर तक बनारस का यश फैलाया।

पं. मौलवीराम निःसंतान थे। पं. मुंशीराम के दो औरस पुत्र और कदाचित एक दत्तक पुत्र थे। इनके पुत्र भवानी प्रसाद जी सुदर्शन, मृदुभाषी, गुणी सारंगी वादक थे। इनके पौत्रों और शिष्यों की बड़ी पुष्ट परम्परा अभी भी संगीत क्षेत्र में नाम और यश अर्जित कर रही है।

5. रामवर्खा मिश्र

आज से 150 वर्षों पहले बनारस के संगीत जगत् में सारंगी वादन के लिये रामवर्खा मिश्र लोकप्रिय और गुणी सारंगी वादक हुये। इनके घराने की विशेषता थी टप्पा शैली से सारंगी बजाना। इनके दो पुत्र हुये प्रथम गणेशजी और द्वितीय शीतलजी। समकालीन दूसरे बालक का नाम भी गणेश होने कारण इन्हें लोग बड़े गणेश मिश्र कहने लगे। इन दोनों भाइयों की शिक्षा इनके पिताश्री द्वारा ही हुई और यह दोनों भाई सारंगी वादकों में दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त अति कुशल संगीतज्ञ के रूप में मान्य हो गये। सभी अंग की गायकी के साथ टप्पा और ठुमरी की शैली का सारंगी वादन आपके घराने में पीढ़ी दर पीढ़ी बना रहा। बरेली के विख्यात गवैया अंधे मोहम्मद खाँ और दिल्ली के प्रसिद्ध सारंगी वादक मम्मन खाँ आदि से लेकर कलकत्ते के गुणीजनों ने भी इनकी श्रेष्ठता की प्रशंसा की है।

श्री शीतल जी की शाखा तीसरी पीढ़ी में समाप्त हो गई। इस शाखा में श्रेष्ठ संगीत साधक हो गये हैं। श्री बड़े गणेशजी के एकमात्र पुत्र हुये सुरसहाय मिश्र। पंडित सुरसहायजी को अपने पिता और चाचा दोनों के गायकी के सभी अंगों की शिक्षा के साथ सारंगी वादन की बेजोड़ शिक्षा मिली। युवावस्था में ही आप ख्याति प्राप्त सारंगी वादक माने जाने लगे। रामनगर और कबीरचौरा निवासी ठाकुर प्रसाद मिश्र और पियरी घराने के गुणीजनों के सम्पर्क से आप सुरिले गवैया, लाजवाब सारंगी वादक बन गये। पिता और चाचा की मृत्यु के बाद बनारस के संगीतज्ञों में खुस-फुस होने लगी कि उनके घराने की सारंग वादन की श्रेष्ठता का अब अंत हो गया।

16-18 घण्टे नियमित रियाज करने वाले सुरसहाय जी ने इस खुसपुसाहट और शंका को अपने परमोत्कृष्ट सारंगीवादन से निर्मूल सिद्ध कर दिया, देश के तत्कालीन श्रेष्ठ सारंगीवादक उस्ताद बुंदू खाँ ने एक महफिल में आपके सारंगी की दिल खोलकर प्रशंसा की थी।

सुरीले गले के गवैया, मृदु भाषी धार्मिक प्रवृत्ति वाले सुरसहायजी काशी के सभी वर्गों के प्रिय थे। वैष्णव मंदिरों के साथ-साथ आपका विशेष लगाव औधड़ बाबा कीनाराम की समाधि से भी था। बाबा कीनाराम की समाधि के औधड़ महात्माओं की आप निरंतर सेवा करते रहे। कालांतर में आप बाईसाहेब हुस्नाबाई के स्थाई संगतकार भी बने रहे। अपने में यह एक महत्वपूर्ण प्रमाण है आपके श्रेष्ठ सारंगी वादन का।

आपके चचेरे भाई गौरीशंकर मिश्र भी उच्चकोटि के सारंगी वादक थे। संगीत नायक पंडित छोटे रामदासजी को जब बम्बई में रिकार्डिंग करने के लिये विशेष रूप से रिकार्डिंग कम्पनी ने बुलाया तब उस रिकार्डिंग में सारंगी की संगत गौरीशंकर मिश्र ने ही की थी। 12 बन्दिशों की रिकार्डिंग में उनकी मधुर सारंगी की संगत ने इनके नाम को चिरस्थायी बना दिया।

सुरसहाय जी के दो पुत्र हुये। 1. हनुमान प्रसाद मिश्र, 2. गोपाल प्रसाद मिश्र। जिन्हें पूरा देश गोपाल मिश्र के नाम से जानता है। इन दोनों भाइयों को प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता सुरसहाय जी से ही मिली। पिताश्री के निधन के पश्चात् इन दोनों भाइयों ने संगीताचार्य पंडित बड़े रामदासजी से प्रशिक्षण प्राप्त किया और दोनों भाई उत्कृष्ट सारंगी वादक के रूप में शीघ्र ही छा गये। पूरे देश के हर घराने के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञों के साथ सारंगी की संगत करते यह अत्यन्त लोकप्रिय सारंगी वादक हो गये। बड़े भाई हनुमान प्रसाद मिश्र की शिष्य परम्परा में अनेक गुणी गायक, गायिका और संगीत वादक हैं। इनके दोनों पुत्र राजन और साजन मिश्र आजकल देश-विदेश में लोकप्रिय गायक हैं। हनुमान प्रसाद मिश्र बड़े ही मृदुभाषी और मिलनसार व्यक्ति थे। खाने-पीने और खाने-खिलाने के ऐसे तबीयतदार आदमी थे जो जाड़े भर मुलायम दाने की मटरचुड़ा और बनारसी मगदल और मलाई के साथ नित्य बदाम की ठंडई का सेवन करते थे और पान जमाते थे। ऐसी ही

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./185

मजेदारी इनके बनारसी शैली के सारंगीवादन में रही। इनकी कन्या का विवाह पियरी घराने के गुणी और सरल स्वभाव के गायक श्री रामकृष्ण मिश्र के पुत्र श्री मारूति नन्दन जी (मिट्ठु लाल) से हुआ। मिट्ठु लाल जी भी अपनी कुल परम्परा के प्रतिभावन गायक वादक थे और प्रतिदिन अनेकों बार चाय पीना और पान जमाना उनका खास शौक था।

छोटे भाई गोपाल मिश्र जी ने गायनाचार्य पं. बड़े रामदास जी से गायकी बजाने का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया, साथ ही साथ वह संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी के पास बैठकर रियाज़ करते रहते थे। पूरे देश के सारंगी वादकों में युवावस्था में ही पं. गोपाल मिश्र अपनी वादन कला और बेजोड़ संगत करने की क्षमता से सबसे अधिक लोकप्रिय सारंगीवादक ही गये हैं। रेडियो संगीत सम्मेलन में लगभग 35 वर्ष पहले मुम्बई से प्रसारित गोपाल मिश्र की सारंगी और पं. विष्णु गोविन्द जोग की वायलिन की जुगलबंदी अप्रतिम और चिरस्मरणीय उदाहरण हैं। जीवन के अंतिम वर्षों में ये दिल्ली में सारंगी का प्रशिक्षण देने के लिये रहने लगे थे। लेकिन इस बेजोड़ और हरदिल अजीज सारंगी वादक का वृद्ध होने के पहले ही बीमारी से दिल्ली में देहांत हो गया। पं. गोपाल मिश्र के लिये यह लिखना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि इनके ऐसा साफ-सुथरा और सारंगी के सभी अंगों को बजाकर संगत करने वाला कोई दूसरा सारंगी वादक खोजना दुष्कर हैं।

6. शंभूनाथ मिश्र

जयनाथी और बैजनाथी मिश्र की वंशपरम्परा में सारंगी वादन की विशेषता पीढ़ियों से सुरक्षित रही। सारंगी वादन के साथ गाना, तबला, ढोलक आदि वाद्य वादन भी इस घराने में चलता रहा। श्री जयनाथी मिश्र के पुत्र ईश्वरी नारायण और इनके पुत्र रामनारायण मिश्र हुये। रामनारायण मिश्र के प्रथम पुत्र भवानी मिश्र निःसंतान थे। भवानी मिश्र के छोटे भाई शंभूनाथ मिश्र का जन्म 1855-56 ई. में हुआ था। आपके परिवार को काशी नरेश से भदोही में खेती की जमीन भी मिली थी। शंभूनाथ मिश्र को संगीत का प्रशिक्षण अपने बड़े भाई भवानी भीख जी द्वारा ही मिला।

अपनी लगन और दशकों के निरंतर रियाज से श्री शंभूनाथ मिश्र स्वतंत्र सारंगी वादन और संगत करने में कुशल एवं विख्यात संगीतज्ञ थे। अपनी विशेष वादन शैली से तत्कालीन बनारस के सारंगी वादकों के घरानों के बीच, आपने अपनी घराने की विशेष पहचान बनाई। पटना के उस्ताद बासतअली खाँ गुणी संगीतज्ञ और रवाब वादक, बिहार गया के दढ़ियल गोपाल जी, श्रेष्ठ सारंगी वादक, पटना के सारंगी वादक गुरु प्रसाद मिश्र इन सभी की वादन शैलियों को आपने परिश्रम पूर्वक अपनाकर उस समय के श्रेष्ठ संगीतज्ञों के बीच बनारस का यश बढ़ाया।

बनारस से पटना, कलकत्ता, ढाका, पूना, इन्दौर आदि रियासतों में और संगीत समारोह में आपके सारंगी वादन ने अमिट छाप छोड़ी। बहुत दिनों तक आप पटना में भी रहे। कालान्तर में आप स्थाई रूप से कबीरचौरा बनारस और भदोही में ही रहने लगे। आपकी बहिन का विवाह श्रेष्ठ संगीत विद्वान पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र से हुआ। इस विवाह से दोनों घरानों में जो अपनापन बना उससे बनारस की संगीत परम्परा और पुष्ट हुई।

आपके पूरे परिवार में संगीत का वातावरण था जो अगली पीढ़ियों में भी बना रहा। आपकी वंशावली में आपके शिष्यों का उल्लेख है जो अपनी कहानी स्वयं कहता है। संगीत की विभिन्न विधाओं के धनी पं. शंभूजी और उनकी पत्नी दोनों बंदिशों की रचना में भी कुशल थे। कलकत्ता से ये एक बार भदोही वापस आये। परिवार में कुछ मांगलिक आयोजन था इनकी धर्मपत्नी उसी में व्यस्त थी और इनके अपेक्षानुसार इनसे बोलचाल में जो कुछ कमी हुई उससे असंतुष्ट हुये बिना कुछ कहे-सुने ये कलकत्ते वापस चले गये। इनकी धर्मपत्नी ने एक बहुत ही मर्मस्पर्शी बन्दिश लिखकर¹ चिट्ठी इनके पास भेज दी। चिट्ठी पढ़ते ही इनका मनोभाव स्वच्छ हो गया और ये घर वापस आ गये। यह बन्दिश इनके वंशजों को अभी भी याद है। श्री शंभूनाथ मिश्र “नाथपिया” के नाम से खयाल तुमरी आदि बन्दिशों को लिखा। श्री शंभूनाथ मिश्र के शिष्य बनारस और उसके बाहर बहुत दूर-दूर

1. छबि दिखलाजा, बांके संवरिया, ध्यान लागो मोहे तोरा रे।

तुमरी खमाज, शंभूजी की धर्म पत्नी लिखित।

तक फैले थे, जो गाना, सारंगी, तबला, इसराज इत्यादि सभी में गुणीजन थे। आप ही के गाँव के मुसलमान जोगी परिवार के जहांगीर खाँ ने आपसे तबला सीखा और नाम कमाया। इन्दौर की प्रसिद्ध गायिका “छोटी बीबी” के साथ उस्ताद जहांगीर खाँ की ऐसी जमी कि यह भी इन्दौर में ही रहने लगे और छोटी बीबी के साथ स्थाई तबला संगतकार हो गये उस्ताद जहांगीर खाँ को भारत सरकार द्वारा अनेक पुरस्कार मिले।¹

62 वर्ष की आयु में विख्यात गुणी संगीतज्ञ और सारंगी वादक पं. शंभू जी मिश्र का काशीवास 1918 ई. में हो गया।

पं. सरयू प्रसाद मिश्र- योग्य पिता के योग्य पुत्र सरयू प्रसाद मिश्र को संगीत का पूरा प्रशिक्षण अपने पिता से मिला। युवावस्था प्राप्त करते ही आप लोकप्रिय सारंगी वादक हो गये। सरयू प्रसादजी संगीत की विभिन्न बारीकियों को खोजने और जानने की अभिरूचि वाले व्यक्ति थे और अपने समय के बनारस के संगीत के प्रमुख विद्वानों से मिलकर व्यक्तिगत और सामूहिक चर्चाओं से अपने ज्ञान को बढ़ाते रहते थे। गुणी और कर्मठ संगीत शिक्षक पं. सरजू प्रसाद मिश्र मृदुभाषी, धार्मिक और अत्यन्त विनम्र सज्जन व्यक्ति थे। पिता के ही समान इन्हें भी ख्याति धन और यश मिलता रहा। आपके तीन पुत्र- 1. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, 2. भैरो प्रसाद मिश्र, 3. बैजनाथ प्रसाद मिश्र! इन तीनों ने भी वंशपरम्परा की संगीत शैली में अपना स्थान विशेष बनाये रक्खा।

बनारस से कलकत्ते तक आपकी शिष्य परम्परा विस्तृत रही जिसमें गायक-गायिका, सारंगिया आदि अनेक गुणी कलाकार हो गये हैं। बनारस की ख्याति प्राप्त गायिका श्रीमती गिरिजादेवी की प्रारंभिक शिक्षा का श्रेय पं. सरजू प्रसाद मिश्र को ही है। सन् 1944 ईस्वी में इस विद्वान और सज्जन संगीतज्ञ का काशीवास हो गया।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र- शारीरिक बनावट की जन्मजात दुर्बलता रहते हुये भी पंडित विश्वनाथजी मिश्र सुरीले और विद्वान गवैया हुये। संगीत

1. कामेश्वर नाथ मिश्र, काशी की संगीत परम्परा, पृ. 233.

प्रशिक्षण देने में भी यह कुशल व्यक्ति थे। इन्हें प्रारंभिक शिक्षा अपने पिता से ही प्राप्त हुई। गायकी का विशेष प्रशिक्षण इनको पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र एवं संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी द्वारा प्राप्त हुआ। आपके पास गायकी की दुर्लभ बन्दिशों की धरोहर थी। लयताल और सुर के पक्के विश्वनाथजी ने जहाँ भी गाया, सुनने वालों को मस्त कर दिया। आपके अनेक शिष्य और शिष्यायें ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ हो गईं।

भैरो प्रसाद मिश्र- स्नातक और कानून की पूरी पढ़ाई करके आपने वकालत को अपनाया। बड़े भाई विश्वनाथजी के संगीत प्रशिक्षण के साथ आपने गायकी पर पूरा अधिकार प्राप्त किया। पारिवारिक संगीत से ओतप्रोत भैरव प्रसादजी ने कभी गाने-बजाने का सार्वजनिक प्रदर्शन नहीं किया। आपकी विशेष अभिरुचि थी बनारस के विभिन्न घरानों की बन्दिशों का संग्रह करना और बनारस के संगीत के इतिहास को प्रामाणिक रूप से लिखना। दशकों के परिश्रम से आपने बनारसी संगीत पर एक पुस्तक लिखकर तैयार की परन्तु विभिन्न कारणों से प्रकाशित नहीं हो सकी। यह हस्तलिखित पुस्तक और बन्दिशों का संग्रह इनके उत्तराधिकारियों के पास सुरक्षित है। बनारस संगीत के इतिहास के कुछ टाइप किये अंश काशी संगीत समाज के संग्रहालय में भी है। इनका यहीं कबीरचौरा में परिपक्वतावस्था में निधन हुआ।

पं. बैजनाथ प्रसाद मिश्र- बाल्यावस्था से ही पिता के सारंगीवादन की शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद पं. बैजनाथ प्रसाद मिश्र जी ने पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र और उनके उत्तराधिकारी संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी से सारंगी वादन का उचित प्रशिक्षण प्राप्त किया। अपने पिता के ही समान पं. बैजनाथ प्रसाद मिश्र ख्याति प्राप्त और लोकप्रिय सारंगी वादक युवावस्था से ही हो गये थे। आपने देश के सभी ख्याति प्राप्त उच्चकोटि के गायक-गायिकाओं के साथ असंख्य संगीत समारोहों में सारंगी की संगत की और यश प्राप्त किया। हँसमुख, सज्जन और बनारसी मनमौजी मिजाज के बैजनाथ प्रसाद मिश्र धार्मिक प्रवृत्ति से भी सम्पन्न थे। संगीत की सेवा करने के साथ-साथ इन्होंने संत तुलसीदास के रामचरितमानस के वार्षिक पाठ का

आयोजन किया था जो अभी चल रहा है। संगीत क्षेत्र के सभी ख्यातनाम गुणियों से आपका मधुर संबंध तो था ही, लखनऊ के कथक नृत्य के बेजोड़ आचार्य शंभू जी के आप विशेष प्रिय पात्र थे, धन, यश कमाकर सुयोग्य पुत्रों और शिष्यों की परम्परा बनाकर प्रौढ़ावस्था में आपका निधन हो गया। आपके पुत्र पं. कामेश्वर नाथ मिश्र ख्यातिप्राप्त तबला वादक के साथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय में कार्यरत भी हैं। आपके दूसरे पुत्र पं. धर्मनाथ मिश्र की कार्यस्थली लखनऊ है। यह भी उ.प्र. संगीत नाटक अकादमी द्वारा पुरस्कृत सुरीले गवैया हैं।

7. शंकर मिश्र

खानदानी सारंगी वादक रामसुवन मिश्र को इतिहास में सियाजी के नाम से पूरे देश में लोग जानते हैं। आपके पिताजी श्री श्यामचरण मिश्र और चाचा श्री रामसुमेर मिश्र (सुमेरुजी) भी सुरीले सारंगी वादक और गायक थे। आपके घराने की विशेषता टपसारंगी बजाने की रही है। आपके घराने में दो मगज़ा सारंगी बजाने की रीत रहीं। सारंगी के विशेष बनावट से सुरीले कंठ सी मीठी आवाज निकलती है फलतः हर अंग की गायकी की संगत मिठास से भरी रहती है। पूर्ववर्ती अनेक पीढ़ियों से इस परिवार में भी संगीत सुरक्षित रहा। पंडित शंकर मिश्र और उनके पिता, पितामह सभी श्रेष्ठ सारंगी वादक थे।

श्यामाचरण मिश्र का जन्म 1811 ई. में ऐसे परिवार में हुआ था, पिता से ही संगीत की खानदानी तालीम आपको मिली और आप एकल सारंगी वादन और संगत में माहिर हो गये। आपमें काव्य रचना शक्ति भी थी और अपने शिष्यों को आपने स्वरचित बहुत सी बन्दिशें सिखाई थी। श्यामदास उपनाम से आपने ठुमरी, होली, चैती, कजली आदि बहुत सी रचनायें लिखी हैं।

सुमेरुजी या पं. रामसुमेर मिश्र श्यामचरण मिश्र के छोटे भाई थे। आपको पिता से और भाई से घराने की संगीत शैली का पूरा प्रशिक्षण मिला। बनारस की तत्कालीन प्रसिद्ध गायिक विद्याधरी बाई के आप सारंगी के संगतकार थे। आपने भी बहुत सी बन्दिशों की रचना की। आप दोनों भाई

जितने गुणी थे उतने ही सज्जन, प्रसन्नवदन, विनम्र और सुंदर थे। दोनों भाइयों ने पूरे देश में सुयश और धन ख्याति प्राप्त किया। बड़े भाई श्यामाचरण मिश्र 1891 ई. के लगभग और छोटे भाई सुमेरुजी 1928 ई. में नहीं काशी में अपने कीर्ति और स्मृति छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हुये।

खानदानी सारंगी वादक श्यामचरण जी के इष्ट देवता की कठिन आराधना करने के बाद आशीर्वाद स्वरूप चार पुत्र हुये- 1. रामसुवन (सियामिश्र), 2. लखनसुवन (लखनमिश्र), 3. भरतसुवन (पन्नालाल मिश्र), 4. शत्रुघ्न सुवन (मुसेजी)। इन सभी भाइयों ने पूरे देश में अपने वंश परम्परा के अनुरूप ख्याति अर्जित की परन्तु सिया उस्ताद के सारंगी वादन की बात ही कुछ और थी।

सिया उस्ताद के सारंगी वादन का लोहा भारत के दिग्गज सारंगी वादकों ने भी माना था। सियाजी का दैनिक जीवन क्रम तपस्वी के समान था। सुबह से रात तक सारंगी और गाना सिखाना, सायंकाल महफिलें हो तो संगत करना और रात को जमकर भोर होने तक अपना रियाज करना। सियाजी ने इतना कठिन रियाज करते थे कि जाड़े की रात में भी उनकी ऊँगलियों में पसीना आ जाता था सारंगी बजाने के लिये ऊँगलियों को सूखा रखना पड़ता है इसके लिये सियाजी मिट्टी की गोरसी में ऊँगली लगाकर सुखा लेते थे। एक रात रियाज करते समय राख में ऊँगली लगाने पर चुभन हुई पर ये रियाज में लगे रहे। रात में जितनी बार ऊँगली लगाई, हर बार कुछ चुभता रहा। सूर्योदय होने के बाद इन्होंने कहा कि आज बार-बार ऊँगली में कुछ चुभता रहा। प्रकाश में राख देखने पर पता लगा कि एक बिच्छी थी जो हरबार डंक मारती थी। आपने सारंगी बजाने में इतने तल्लीन होकर रियाज देने वाले संगीतज्ञ थे सियाजी।

सियाजी सूबसूरत, उदारहृदय, धार्मिक और चरित्रवान संगीतज्ञ थे। अपने तीनों भाई- लखन मिश्र, भरत मिश्र और शत्रुघ्न सुवन मिश्र तथा भरत सुवन के पुत्र विनायक प्रसाद मिश्र को पूरी तरह प्रशिक्षित कर अपनी वंश परम्परा के अनुरूप ढाल दिया। आपकी शिष्य परम्परा में राजेश्वरी बाई, सिद्धेश्वरी बाई और काशी बाई से तो संगीत जगत सुपरिचित है। 1931 ई.

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./191

में केवल 50 वर्ष की आयु में ही इनका काशीवास हो गया।

इनके भतीजे विनायक प्रसाद मिश्र (जन्म 1922 ई.) वंश परम्परा के अनुरूप प्रसिद्ध सारंगी वादक थे। इन्हें अपने नाना मिर्जापुर निवासी सारंगी वादक रघुनाथ प्रसाद मिश्र उपनाम झंवर मिश्र से संगीत का प्रशिक्षण और काव्य रचना की भी शिक्षा मिली। देश में मधुर सारंगी वादकों में इनका प्रमुख स्थान था। देश में दूर-दूर तक सारंगी वादन करने के साथ अफगानिस्तान के तत्कालीन शाह-जलील-शाह के यहाँ समारोह में भी विनायक प्रसाद ने सिद्धेश्वरी देवी के साथ बेजोड़ संगत की थी। आकाशवाणी के रांची केन्द्र में वर्षों तक यह सारंगी वादक रहे। वहीं रांची में इस रईस मिजाज, मधुर वादक का निधन 1978 में हो गया।

8. माताबख्श मिश्र

माताबख्श मिश्र उनके पुत्र शिवगुलाम मिश्र काशी के रामापुरा घराने के प्राचीन पीढ़ी के संगीतज्ञों को विरासत में संगीत मिला। शिवगुलाम जी की दो पुत्र हुये। 1. विन्ध्येश्वरी मिश्र (बचऊ जी), 2. विश्वेश्वर मिश्र इन दोनों शाखाओं में गाने-बजाने की वंश परम्परा चली आ रही है जिसकी सातवीं/आठवीं पीढ़ी के नायक वादक भी ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ हैं।

बचऊ मिश्र जी के पुत्र वंशी मिश्र जी का जन्म रामापुरा में 1866 ई. में हुआ। तत्कालीन संगीत के लब्ध प्रतिष्ठित गायकों और वादकों से भी आपने अपने संगीत ज्ञान को पुष्ट किया; अपने पिता से तो आपने संगीत शिक्षा प्राप्त किया ही।

आपके छोटे भाई श्री उत्तन मिश्र जी थे स्वयं भी बहुत गुणी संगीतज्ञ और सारंगी वादक थे। इन्हीं उत्तन जी के पुत्र श्री बच्चा लाल मिश्र हुये जिन्होंने देश में सारंगी वादकों के बीच बहुत यश प्राप्त किया और कुछ वर्षों पूर्व उनका निधन हुआ है।

इस परिवार की संगीत परम्परा का एक ही उदाहरण पर्याप्त है- आज से लगभग एक शताब्दी से अधिक पहले की विख्यात गायिका “शिवकुंवर बाई” वंशी मिश्र के पिता विन्ध्येश्वरी मिश्र की ही शिष्या थी। श्री वंशी मिश्र जी ने अपने दोनों पुत्र दाऊजी और लच्छीजी को योग्यतम उत्तराधिकारी

संगीतज्ञ तो बनाया ही, अपनी वंश परम्परा के दूसरे लोगों को भी और अनेकों शिष्यों को भी कुशल और ख्यातिप्राप्त संगीतज्ञ बनाया। बनारस के इस गुणी संगीतज्ञ का 58 वर्ष की दीर्घायु में 1964 ई. में निधन हो गया।

दाऊजी मिश्र श्री वंशी मिश्र के प्रथम पुत्र भी उच्चकोटि के संगीतज्ञ हुये। पारिवारिक संगीत शिक्षा तो इन्हें मिली ही थी; गायन में विशेष प्रशिक्षण इन्होंने गायनाचार्य पं. बड़े रामदासजी से प्राप्त किया। इसी के साथ-साथ आप संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी की बन्दिशों को भी गाते थे। अपनी युवावस्था में ही अपने सुरीले और मधुर गायन से इतने लोकप्रिय हो चुके थे कि 1936 ई. के आस-पास मेगाफोन कम्पनी ने इनकी रिकार्डिंग की। इसमें इन्होंने “छुम छनननबिछुवा बाजे” जौनपुरी राग की बन्दिश गाई है। आपकी यह रिकार्डिंग अत्यन्त लोकप्रिय हुई और आप पूरे देश में ख्याति प्राप्त गायक हो गये। यह बन्दिश संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी के घराने की है।

आपका विवाह बनारस के खानदानी सारंगी वादक सरजू प्रसाद मिश्र की बहिन से हुआ। आप भरी जवानी में ही सन् 1949 ई. में दिवंगत हो गये। आपके एकमात्र पुत्र श्री ईश्वर लाल मिश्र देश-विदेश में विख्यात तबला वादक है; साथ ही आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में तबला प्रशिक्षण में कार्यरत थे। ईश्वरी लाल मिश्र को विभिन्न राग-रागिनियों की बन्दिशें बहुत याद हैं लेकिन ये गाना नहीं गाते।

श्री विश्वेश्वर मिश्र के परिवार में भी सारंगी वादक की और गायन की परम्परा चलती रही। आपके तीन पुत्रों में द्वितीय पुत्र कसेरु मिश्र की वंश परम्परा की शिष्य परम्परा देश-विदेश में ख्याति प्राप्त है। कसेरु मिश्र के पुत्र नारायण मिश्र और भगवादास मिश्र सुप्रसिद्ध सारंगी वादक रहे हैं। तृतीय पुत्र भी मार्कण्डेय मिश्र ख्याति प्राप्त तबला वादक थे। जो कार्यक्रमों के लिये विदेश यात्रा के लिये गये थे और लंदन में ही जिनका देहांत हुआ।

वर्तमान पीढ़ी में आपके परिवार में तबला, सारंगी, वायलीन वादन बना हुआ है।

9. बेचू मिश्र

कबीरचौरा निवासी श्री बेचू मिश्र के पूर्वज भी संगीतज्ञ ही थे। उनके परिवार में गाना बजाना दोनों चलता रहा। बेचू मिश्र के पाँच पुत्र थे। 1. श्यामशंकर मिश्र - तबला वादक, 2. शिवशंकर मिश्र - सारंगी, 3. बूंदी मिश्र - तबला, 4. दुर्गा प्रसाद - विरक्त, 5. काली प्रसाद मिश्र - सारंगी वादक हो गये। बूंदी मिश्र पूरे देश के यशस्वी तबला वादकों में थे। इनके दो पुत्र हुये- 1. चामू मिश्र जो कुशल सारंगी वादक थे, 2. दामोदर मिश्र (दामूजी) जिन्होंने संगीत नायक पंडित छोटे रामदासजी के शिष्यत्व में गायन की शिक्षा प्राप्त की। दामूजी सुरीले गवैया और उत्तम संगीत शिक्षक थे। इन्होंने कलकत्ते को अपना कार्यस्थल बनाया था। इनके परिवार में अभी भी गाना, सितार, तबला बना है।

रामनगर घराना- वंश परम्परा से संगीतज्ञ परिवार के रामसेवक मिश्र जी 1840-50 ई. के बीच में प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे। इनके पुत्र प्रभु मिश्र और रामजियावन मिश्र हुये। रामजियावन जी के दो पुत्र हुये। रामसेवक मिश्र (निःसन्तान) शिवसेवक मिश्र। शिवसेवक मिश्र के वंश परम्परा में अभी भी संगीत बना हुआ है।

पं. रामसेवक मिश्र मिश्र सुरीले गले के गायक और हार्मोनियम गले के गायक और हार्मोनियम वादक थे। “छबीले” उपनाम से आपने बहुत से पदों की रचना की। महाराज काशी राज के यहाँ मंदिरों में होने वाले उत्सवों में आपका प्रभावशाली गायन होता रहता था। बनारस नगर में भी धार्मिक समारोह में आपका गाना बहुत ही लोकप्रिय रहा है। प्रह्लाद घाट के चतुर्वेदी जी की नाटक कम्पनी में भी आप, अभिनेता और हार्मोनियम वादक के रूप में स्थाई कलाकार थे।

कालान्तर में पं. रामसेवक मिश्र संत तुलसीदास कृत रामचरितमानस के संगीतमय कथावाचक के रूप में विख्यात हो गये। वृद्धावस्था में ही आपको देहांत रामनगर में हुआ। सारंगी वादकों में यह दोनों- 1. बड़े सरजू प्रसाद मिश्र, 2. रामनाथ मिश्र बनारस से जाकर कलकत्ता में स्थापित हुये। इन दोनों परम्पराओं में आज भी छठी पीढ़ी के लोग कुशल सारंगी वादक हैं।

10. बैजूजी मिश्र

कबीरचौरा के पास चन्दन शहीद और पुरानी टकसाल नामक मुहल्ले में बैजूजी मिश्र का परिवार अभी भी संगीत से जुड़ा है। आपके पूर्वज वंश परम्परानुसार गाने-बजाने से जुड़े थे। आप लोगों का मूल निवास स्थान पहले तहसील हंडिया, जिला इलाहाबाद था। हंडिया से आकर आपका परिवार बनारस के संगीत क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवार बना। बैजूजी का तबला घराना पहले से ही तबले की बाज “फर्द” बजाने में कुशल था। काशीराज ईश्वरी नारायण सिंह के समकालीन संगीतज्ञ और बनारस में तबला वादक का एक अलग घराना बनाने वाले तबला आचार्य रामसहाय जी के प्रमुख 7 शिष्यों में भी बैजू मिश्र का भी स्थान रहा। बैजू मिश्र शरीर से बहुत ही बलवान थे, कारण जम के व्यायाम करने वाले, मृदुभाषी व्यक्ति थे। तबला आचार्य रामसहाय जी के शिक्षा को पूरी तरह आत्मसात करके इन्होंने बनारस में फर्द बजाने का अपना एक घराना प्रतिष्ठित कर दिया।

बैजूजी के प्रमुख शिष्य थे भाँट कुल के बगेसरीजी। जिन्होंने ऐसी तैयारी का सफाईदार तबला वादन किया भाँट कुल के अनेक व्यक्ति तबला वादक हो गये।

बैजूजी के दो पुत्र हुये- 1. बड़कू जी, 2. छोटकू जी, बड़कू जी की वंश परम्परा में गणेश दास मिश्र उर्फ भट्टूजी ने संगीताचार्य पं. बड़े रामदासजी से गायन की शिक्षा प्राप्त की और तबला वादन के साथ सुरीले गायक भी हो गये। इनकी गुरु भक्ति ऐसी थी कि बड़े रामदासजी की थाली का बचा हुआ खाद्य पदार्थ नित्य यह प्रसाद रूप में खाते थे।

बड़कू जी के द्वितीय पुत्र गहूजी उर्फ हरिदास मिश्र श्रेष्ठ कथक नृत्यकार हो गये। अपने समय में इन्होंने पर्याप्त यश प्राप्त किया।

भट्टूजी के पुत्र मन्नु लाल मिश्र कुशल तबला वादक, गायक, सितार वादक और हार्मोनियम के श्रेष्ठ संगतकार थे। भट्टूजी के परिवार की दूसरी शाखा सीताराम मिश्र (ननकू महाराज) भी ख्याति प्राप्त तबला वादक हो गये हैं। आपके परिवार में गायन, वादन, नृत्य करने वाले संगीतज्ञ अभी भी हैं। छोटकू जी मिश्र के पुत्र ननकू महाराज बनारस के ख्याति प्राप्त तबला

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./195

वादक विशेषज्ञ श्री कंठे महाराज के दामाद थे। अपनी पारिवारिक तबला शैली के साथ इन्होंने अपने वादन में विशेष गुण, रियाज देकर पैदा किया; जिससे आप बहुत कुशल स्वतंत्र तबला वादक और संगतकार बन गये। आपके पुत्र तबला वादक और सरोदवादक देश-विदेश में ख्याति प्राप्त है। इसी प्रकार श्री मन्नू लाल मिश्र के भी पुत्र देश-विदेश में अपने संगीत के कार्यक्रम करते रहते हैं।

श्री भदूजी के एक शिष्य श्री यमुना प्रसाद मिश्र हैं। जिन्होंने तबला वादन में पर्याप्त यश प्राप्त किया।

11. गणेशी मिश्र

गोपालपुर गाँव, तहसील मडियाहूँ, जिला जौनपुर के निवासी संगीतज्ञ परिवार के श्री गणेशी मिश्र खानदानी तबला वादक थे। आप मडियाहूँ से बनारस आकर रहने लगे। आपके पुत्र प्रताप महाराज को स्वयं तबला वादन की शिक्षा दी। अपने समकालीन बनारस घराने के तबला आचार्य रामसहाय जी के पास, गणेशी मिश्र जी ने अपने एकमात्र पुत्र प्रताप महाराज को विशेष प्रशिक्षण के लिये बैठा दिया। पारिवारिक परम्परा, तबला आचार्य रामसहाय जी का प्रशिक्षण और प्रताप महाराज की अटूट लगन से जुड़ा रियाज इन सभी ने मिलकर इन्हें विशिष्ट तबला वादक बना दिया।

अपने पूर्वजों के समान आप भी देवी के उपासक थे। बनारस में तत्कालीन औघड़ सिद्ध परम्परा के एक औघड़ महात्मा की प्रेरणा से आपने कालीखोह की कालीजी की सेवा पूरे मनोयोग से की, फलतः भगवती कालिका की कृपा से आपके तबला वादक में अलौकिक चमत्कार और प्रभाव आ गया। प्रताप महाराज की बहिन का विवाह पियरी घराने में हुआ था।

तत्कालीन नेपाल नरेश और उनके प्रधानमंत्री राणा जंग बहादुर के दरबार में उस समय पियरी घराने के प्रसिद्धजी का महत्वपूर्ण स्थान था। इस संबंध के कारण परतप्पूजी भी नेपाल के शाही दरबार में पहुँच गये, जहाँ उनके अलौकिक तबला वादक का चमत्कार सभी के सिर पर चढ़ गया। इनके एक ही कार्यक्रम पर महाराज नेपाल ने भरे दरबार इन्हें हजारों अशर्कियाँ दी थी। परतप्पू महाराज ने पूरे देश में यश और कीर्ति अर्जित की।

परतप्पूजी के पुत्र श्री जगन्नाथ मिश्र भी बेजोड़ तबला वादक थे और नेपाल दरबार में दरबारी तबला वादक दशकों तक रहें। जगन्नाथ मिश्र का दो विवाह हुआ। पहली पत्नी से आपके पुत्र शिवशंकर मिश्र हुये और उनके पुत्र हुये बलमोहन मिश्र। यह दोनों भी बनारस घराने के बेजोड़ तबला वादक थे।

जगन्नाथ मिश्र के द्वितीय पत्नी से एक पुत्र हुआ जिनका नामकरण हुआ हरिसुंदर मिश्र उपनाम बाचा महाराज। रिश्ते में आप बनारस के ख्याति प्राप्त तबला वादक कंठे महाराज के मामा लगते थे। बाचा महाराज भी पूरे देश में अपने समकालीन ख्यातिप्राप्त तबला वादकों के प्रिय-पात्र थे और उतने ही लोकप्रिय। इस बेजोड़ तबला वादक का देहांत 55 वर्ष की आयु के पहले ही हो गया और यह छोड़ गये अपनी पत्नी, दो पुत्र और पुत्रियाँ। बाचा महाराज की विधवा धर्मपत्नी ने काशी के प्रख्यात देवी मंदिर की शरण ली और कबीरचौरा स्थित कालीजी के साथ-साथ निष्ठा और नियम से संकठा माई की आजीवन सेवा की। संघर्षपूर्ण जीवन के इस काल में बाचा महाराज की धर्मपत्नी को संकठा माई की कृपा के साथ-साथ सुड़िया के विख्यात वैद्यजी का स्नेह प्राप्त हुआ। भगवती की कृपा प्रसाद और अपनी माता के आशीर्वाद से बाचा महाराज के पुत्र शामता प्रसाद उर्फ गुदई महाराज पूरे देश के ख्याति प्राप्त की और लोकप्रिय तबला वादक बने गये। गुदई महाराज ने तबला वादन की शैली में बायें की स्याही का हिस्सा उलटा रखकर बजाना और यह इनकी अपनी निजी शैली थी।

1920 ई. में जन्में शामता प्रसाद गुदई महाराज 8 वर्ष की आयु तक अपने पिता बाचा महाराज से, तबले का प्रारंभिक बोल “धाधातिना धाधातिट” सीख चुके थे। फिर उनको बनारस के तबला विशेषज्ञ विक्कू जी से तबला का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त हुआ।

सन् 1940 ईस्वी तक 20 वर्ष के होते-होते बनारस के लब्ध प्रतिष्ठ वयोवृद्ध संगीतज्ञों के प्रेरणा से गुदई महाराज अखिल भारतीय स्तर के ख्याति प्राप्त तबला वादक हो गये थे। गुदई महाराज छोटे, बड़े सभी संगीतज्ञों के साथ खुले दिल से संगत करते थे। आपने आजीवन अपनी

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./197

माता, भगवती काली और सुड़िया के राजवैद्य पं. रामशंकर वैद्य जी की सेवा की। बहुत ही सादे मन-मिजाज और सरल प्रवृत्ति के गुदई महाराज ने देश-विदेश में बनारस के तबला बाज का यश फैलाया। अनेकों अलंकरणों के साथ-साथ आपको भारत सरकार के भी अलंकरण प्राप्त हुये। 50-52 वर्षों तक तबले की धूम मचाने के बाद आप 70 वर्ष की आयु में दिवंगत हुये।

आपके पुत्र कुमार लाल आदि और व्यापक शिष्य मंडली आज भी तबला वादक में अपना विशेष स्थान रखती है। आपके प्रिय शिष्य “जेरी मेसी” ने आपकी पूरी सेवा करके तबला सीखा और तबला के ख्याति प्राप्त वादकों में अपना स्थान बनाया। प्रसिद्ध कथक नृत्यकार लोकनाथ मिश्र के छोटे भाई (जो गुदई महाराज के भाँजे भी हैं) भोलानाथ मिश्र श्रेष्ठ तबला वादक हैं।

12. शिवाला फीलखाना घराना

दिल्ली से मुगलवंश के शाहजादे, 1857 ई. के बाद बनारस में आकर बस गये। उनके साथ मुगल दरबार के संगीतज्ञ निसार अली खाँ ध्रुपद गायक, अकबर अली टप्पा, उस्ताद वारिस अली खाँ बीनाकर आदि साथी भी बनारस आ गये।

ध्रुपद और ख्याल गायक के साथ बीनकारी के उस्ताद सादिक अली खाँ भी बनारस में ही आबाद हो गये। उनके परिवार में गाने और बीनकारी के साथ सितार, सुरबहार, सारंगी वादन भी समान रूप से बना रहा। उस्ताद सादिक अली खाँ के पुत्र आशिक अली खाँ बड़े ही सुरीले, लयकार और मजेदार गायक वादक थे। इनकी विशेषता सितार वादन थी। इनके घराने के सितार वादन में सितार की दो सुंदरी (पर्दे) कम बाँधी जाती है, फलतः सम्पूर्ण सुरों का काम सुर में से सजी हुई मीढ़ से ही बजाया जाता है। उस्ताद आशिक अली की व्यापक शिष्य परम्परा रही।

उस्ताद आशिक अली के एकमात्र पुत्र उस्ताद मुश्ताक अली खाँ ने गाने के साथ बीनकारी, सितार और सुरबहार भी साधा। मुख्य रूप से यह देश के प्रमुख सितार वादकों में हो गये। दशकों यह कलकत्ते में निवास करते रहे। इनकी भी विशाल शिष्य मंडली देश भर में है।

198/संगीतमय बनारस

इनके परिवार में अभी भी, बनारस और कलकत्ता दोनों नगरों में ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ हैं। जिसमें बनारस के झक्खन खाँ प्रसिद्ध सारंगी वादक हैं। उस्ताद मुश्ताक अली के शिष्यों ने देश-विदेश में ख्याति प्राप्त की है।

13. द्वारिका प्रसाद मिश्र, रामापुरा

मूलतः इलाहाबाद निवासी द्वारिका प्रसाद मिश्र का परिवार 125-150 वर्षों पूर्व बनारस आकर बस गया। पीढ़ियों-दर-पीढ़ियों से गाने-बजाने से जुड़े इनके प्रथम पुत्र नद्री प्रसाद मिश्र अपने सुमधुर कण्ठ और गायकी से नगर में प्रतिष्ठित प्रशिक्षक के रूप में माने जाने लगे। द्वारिका प्रसाद जी के द्वितीय पुत्र महादेव प्रसाद मिश्र तबला वादक में प्रवीण होने के साथ-साथ बहुमुखी प्रतिभा के संगीतज्ञ थे। गायकी का विशेष प्रशिक्षण आपने गायनाचार्य पं. बड़े रामदासजी से प्राप्त किया। आप दोनों भाई लीला और नाटकों में अभिनय के साथ-साथ नृत्य में भी प्रवीण थे।

पं. महादेव प्रसाद मिश्र की शिष्य परम्परा में शहनाई, बाँसुरी, सितार, तबला और गायन के ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ अभी भी हैं। पं. महादेव प्रसाद मिश्र पहले ध्रुपद ख्याल भी गाते थे परन्तु बाद में आपने ठुमरी, दादरा, कजली आदि और बनारस के लोकगीतों के ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ के रूप में यशोपार्जन किया।

14. श्री यदुनन्दन रघुनन्दन जी

यदुनन्दन जी रघुनन्दन जी की वंश परम्परा का वादन और गायन में अपना अलग वैशिष्ट्य रहा है। इनके वंशज पुरुषोत्तम जी ने विशेष ख्याति प्राप्त की इनके कुटुंबीगण और उनकी परम्परा में अभी भी गुणी संगीतज्ञ हैं।

15. रघुनन्दन और शिवनन्दन मिश्र

रघुनन्दन मिश्र और शिवनन्दन मिश्र की वंशानुगत संगीत परम्परा के परिवार में हो गये। रघुनन्दन मिश्र की वंश परम्परा और शिष्य परम्परा में गायन, सारंगी और तबला वादक तीनों अभी भी सुरक्षित है।

इनके परिवार में बूँदी मिश्र जी ने तबला वादन में विशेष ख्याति

अर्जित की और उनके पुत्र चामू मिश्र ने उच्चकोटि की सारंगी बजाई।

रघुनन्दन मिश्र के पुत्र बिरई मिश्र के एक शिष्य सीताराम गंधर्व थे जो समकालीन श्रेष्ठ संगीतज्ञों में हो गये।

16. पं. रामसहाय

संगीतज्ञों की एक परम्परा के परिवार में बनारस में तबले का एक नवीन बाज प्रतिष्ठित करने वाले पं. रामसहाय का जन्म काशी में ही हुआ। इनके जन्म की तिथि के बारे में (सन्-संवत्) अनेक मत हैं। जहाँ तक खोजना संभव हुआ उसके अनुसार यह काशीराज महाराज ईश्वरी नारायण सिंह की दरबारी तबला वादक थे। इसके आधार पर इनके जन्म का ई. 1840 ई. मानना उचित होगा।

यह भी निर्विवाद है कि आप 46 वर्ष की आयु में ही दिवंगत हो गये। इसलिये सन् 1886 ई. में आपका निधन मानना चाहिये। पूर्वजों की परम्परागत शिक्षा के साथ-साथ आप अवध के नवाबी दरबार के सुप्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद मोदू खाँ से पंजाब अंग का बाज आत्मसात किया।

युवावस्था में ही रामसहाय जी ने लखनऊ, पंजाब और बनारस के तबले के बाज को अपनी एक नवीन शैली में ढालकर बनारस में तबले का एक नया घराना स्थापित किया। आजीवन अविवाहित रहने वाले तबला के धुरंधर आचार्य रामसहाय जी के भाई जानकी सहाय, गौरी सहाय, ईश्वरी सहाय बनारस घराने के विख्यात नृत्याचार्य भी थे। रामसहाय जी ने अपने भाइयों को तबला में निष्णात आचार्य बना दिया। अल्पायु में ही निधन हो जाने पर भी आपने अपने जीवनकाल में अपार ख्याति और प्रतिष्ठा अर्जित की। लखनऊ से नेपाल और दूर-दूर तक रामसहाय जी के चमत्कारी तबला वादन का यश उनके जीवन काल में ही फैल गया था। आपके भाइयों की वंश परम्परा और शिष्यों की परम्परा में अनेकानेक उच्चकोटि के यशस्वी तबला वादक होते रहे हैं। आज भी आपकी परम्परा के तबला वादक देश-विदेश में ख्याति और प्रतिष्ठता अर्जित कर चुके हैं।

भैरव सहाय- रामसहाय जी के भाई गौरी सहाय के पुत्र भैरव सहाय जी ने अपने पारिवारिक तबला वादन की प्रतिष्ठा में हर तरह से अभिवृद्धि

की। नेपाल में जाकर अपने बनारस के तबले की ऐसी धाक जमाई जो ऐतिहासिक हो गई। तत्कालीन सभी विख्यात कलाकार आपकी वादन शैली के प्रशंसक रहे। वृद्धावस्था में आपका देहांत बनारस में हुआ।

पं. बलदेव सहायजी- पं. भैरो सहाय जी के पुत्र बलदेव सहाय अपने घराने के अप्रतिम तबला वादक हुये। जिस कार्यक्रम में इनका तबला बजता था, सुनने वाले हाथ में पान लेकर मुँह में नहीं रखते थे; जब इनका टुकड़ा या परन खतम हो तभी वाह! कहकर पान मुँह में रखते थे। अपने समकालीन श्रेष्ठतम संगीतज्ञों और नर्तकों के साथ आपने तबला बजाया था। इस बेजोड़ तबला वादक का निधन लगभग 50 वर्ष की आयु में हो गया और रह गई उनके तबला वादन की मधुर स्मृतियाँ।

आपके घराने में वंश परम्परा शिष्य परम्परा में दूर-दूर तक के बहुत से ख्याति प्राप्त तबला वादक हो गये हैं। जिनका पूरा विवरण लिखने के लिये एक स्वतंत्र पुस्तक की आवश्यकता पड़ेगी।

सम्प्रति आपके घराने के शारदा सहाय जी दशकों से ब्रिटेन में रहकर रामसहाय संगीत विद्यालय चला रहे हैं। शारदा सहाय जी देश-विदेश में लब्ध प्रतिष्ठित तबला वादक हैं।

17. कण्ठे महाराज

आपके घराने के एक शिष्य श्रीयुत् कण्ठे महाराज का उल्लेख आवश्यक है। बनारस के खानदानी संगीतज्ञों के ख्याति प्राप्त परिवार हींगन मिश्र और झींगन मिश्र के परिवार में आपका जन्म हुआ। परम्परागत शिक्षा के साथ-साथ श्री कण्ठे महाराज को तबला वादन का विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का सौभाग्य मिला श्री बलदेव सहाय जी से। अपनी निष्ठा और गुरु भक्ति के साथ घनघोर रियाज करने वाला कण्ठे महाराज ने श्री रामसहाय जी के घर के तबला वादन को और भी लोकप्रिय बनाकर पूरे देश में ख्याति अर्जित की।

गोदी में बायाँ और सामने दाहिना रखकर दिनभर रियाज करते रहते। मिलनसार और मृदुभाषी कण्ठे महाराज की निकटता गिने-चुने गुणीजनों से ही थी; अन्य आने वालों को यह पहली मंजिल से, अपनी खिड़की

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./201

खोलकर कुशल क्षेम पूछने के बाद विदा कर देते थे। दरवाजा खोलकर अन्दर बुलाकर बैठाने से रियाज़ में बाधा पड़ती थी।

अपने मन-मिजाज और ऐसी लगन से तबला वादक में कंठे महाराज ने कुछ ऐसी विशेषता पैदा की जो आज दुर्लभ है। आठ मात्रा की बहु प्रचलित ताल “कहरवा” यह इतने लाड-प्यार से बजा गये जिसका आज कोई जोड़ नहीं है। तबले पर बोल यह खुद बजाते थे और खुद वाह! वाह! करते थे। इनका बजाया कहरवा भी लक्ष्मी लाल और रुद्र लाल जैसे तालों के मुकाबले बजाना दुष्कर है।

लम्बी आयु में आपका बनारस में ही निधन हुआ। आपकी शिष्य परम्परा पूरे देश में विस्तृत है जिसमें ख्याति प्राप्त लोकप्रिय तबला वादक हैं। आपके भ्रातृज किशन महाराज ने कंठे महाराज और उनके गुरु घराने की कीर्ति को देश-विदेश में सम्मान दिलाया है। भारत सरकार द्वारा आपको पद्मश्री और पद्मविभूषण से अलंकृत किया है। बनारस के किशन महाराज पूरे देश में बेजोड़ तबला वादक थे। आपके शिष्यों में कविराज आशुतोष भट्टाचार्य जी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने बनारस से दूर-दूर तक ख्याति प्राप्त की।

18. पं. अनोखेलाल मिश्र

तबले के क्षेत्र में नाम के समान है। ‘अनोखे’, भारत के सभी दिग्गज तत्कालीन कलाकारों के साथ तबला संगत करने वाले सभी कलाकारों के प्रिय संगतकार अनोखेलाल मिश्र का जन्म काशी 1913 ई. में हुआ था। बचपन से माता-पिता का साया सिर से उठ गया था। बूढ़ी दादी ने पालन-पोषण किया। 6 वर्ष की उम्र में बनारस बाज के प्रवर्तक श्री रामसहाय घराने के शिष्य श्री भैरो प्रसाद मिश्र से आपने तबले की तालीम ली और अपनी मेहनत और गुरुकृपा से अखिल भारतीय मंच पर छा गये। सादगी की प्रतिमूर्ति ने पूरे भारत में बनारस बाज को उच्च स्थान पर स्थापित किया 10 से 12 घंटे प्रतिदिन रियाज करके अपने वादन में चमत्कार पैदा किया। आप ना धिं धि ना के बादशाह कहलाये। विलंबित और द्रुत दोनों लयों में आपकी जैसे बोलों की सफाई अन्यत्र दुर्लभ थी। आप संगत तथा सोलो

202/संगीतमय बनारस

दोनों में विख्यात थे। सभी बड़े कलाकार गायन हो या वादन आपकी संगत बहुत पसंद करते थे। आपके जीवन का आनंद केवल तबला अभ्यास था जिसने आपके चोटी के कलाकारों की श्रेणी पहुँचाया।

19. गायनाचार्य बड़े रामदास

कबीरचौरा निवासी जयकरण मिश्र की एकमात्र संतान धन्यकुमारी का विवाह संगीतज्ञों के परिवार के रामदास मिश्र से हुआ। रामदास मिश्र जी के समकालीन उनसे पद में छोटे प्रसिद्ध संगीतज्ञ दूसरे रामदास जी इसलिये उन्हें लोग छोटे रामदास कहने लगे और जयकरण जी के समान ख्याति प्राप्त गायनाचार्य बड़े रामदास जी के नाम संबोधित हो गये। जयकरण जी से बड़े रामदास जी को ध्रुपद गायकी की पूरी शिक्षा मिली और वह उनके परिवार के प्रतिनिधि उत्तराधिकारी रहे।

बुजुर्गों ने ऐसा बतलाया है कि बड़े रामदास जी को पियरी घराने के तत्कालीन वयोवृद्ध संगीत विद्वान् रामसेवक जी ने यह आशीर्वाद दिया था कि- “तुम यहाँ आते रहो और सुनते रहो। तुम अवश्य रससिद्ध गवैया हो जावोगे।” यह बात अवश्य प्रामाणिक लगती है क्योंकि संलग्न चित्रों में एक



पं. बड़े रामदास

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./203

चित्र जिसमें पियरी घराने के पशुपति सेवक और शिवसेवक के साथ बड़े रामदासजी भी बैठे हैं। उल्लेख है कि पशुपति सेवक और शिवसेवक इनसे एक पीढ़ी बड़े थे। उसी चित्र में दूसरी ओर छोटे रामदासजी बैठे हैं जो रामसेवक जी के शिष्य थे। (चित्र संलग्न है- पृ. 219)

गायनाचार्य बड़े रामदासजी युवावस्था में ही अतिलोकप्रिय गायक हो गये थे। आपने धन और यश दोनों अर्जित किया। आपको घुड़सवारी का ऐसा शौक था कि अच्छे से अच्छे घोड़े रखते थे और नियमित घुड़सवारी करते थे। घुड़सवारी का यह शौक भी पियरी घराने का प्रभाव है। पं. बड़े रामदासजी की युवावस्था में औघड़ बाबा कीनाराम की समाधि के चारों तरफ विशाल भूखण्ड में झरबेरिया, बैर और बेल के वृक्षों का जंगल था। आज वहाँ रवीन्द्रपुरी नाम से आवासीय आधुनिक सुविधा सम्पन्न भवन और मार्ग है। उस समय बनारस में बिजली भी नहीं थी। उन्हीं दिनों बड़े रामदासजी ने औघड़ बाबा कीनाराम की गद्दी के औघड़ बाबा को अपना गुरु बनाया और दीक्षा ले ली। औघड़ बाबा ने आपको आशीर्वाद दिया कि अब “तुम अपनी रचनाओं को ही अलग-अलग रागों में बाँधोगें और उन्हीं को गावोगे।”

औघड़ बाबा का कथन उसी दिन से सत्य हुआ। गायनाचार्य पं. बड़े रामदासजी ने उसके बाद से आजीवन स्वरचित बन्दिशें ही गाहीं। ध्रुपद, धमार, ख्याल तराना, ठुमरी, दादरा, कजली, होली, चैती, पूर्वी की सभी बन्दिशें कठिन से कठिन रागों में इनकी अपनी बनाई बन्दिशें हैं और इनके कण्ठ का माधुर्य, सफाई और तैयारी बेजोड़ हो गयी कदाचित पूरे भारत में ऐसा दूसरा उदाहरण मिलना दुर्लभ होगा। बड़े रामदासजी केवल गायक नहीं थे। गायन के साथ-साथ आप नृत्याचार्य और सितार आदि के कुशल वादक भी थे। अपनी मौज के लिये आप बहुत दिनों तक बेंजो भी बजाते थे।

सुड़िया के राजवैद्य के परिवार से आपका अत्यधिक लगाव था। वहीं से आपने आयुर्वेद की औषधियों का निर्माण करना, प्रयोग विधि सीखा और नाड़ी परीक्षण भी सीखा। निरभिमानी, मृदुभाषी, सात्विक खान-पान वाले सदाचारी बड़े रामदासजी की गायकी अपने में एक आदर्श थी। गाने

के पहले या बीच में जीवन-पर्यन्त आपने कभी गला साफ करने के लिये खखार भी नहीं लिया।

पूरे देश में आपकी गायकी का यश आज भी बना है। आपने कितना धन अर्जित किया होगा उसका एक उदाहरण 4-5 बड़े-बड़े चाँदी के कटोरों में आप राज रजवाड़ों से मिली अंगूठियों को रखते थे, जिसमें हीरा, पन्ना, माणिक जुड़ी हुई बेशकीमती अंगूठियाँ ही अधिक थी। कभी-कभी आप उन अंगूठियों को जाड़े के दिनों में धूप में रखकर देख लेते थे। उस समय आपका जो शिष्य जिस अंगूठी की प्रशंसा कर देता था उसे वही अंगूठी तत्काल दे देते थे। ऐसे उदार हृदय पूज्य पंडित बड़े रामदासजी को आजीवन धन की कमी नहीं हुई। स्वभाव से आप खाँटी बनारसी थे और आपकी वेशभूषा बहुत ही परिष्कृत रुचि की थी। आपकी और छोटे रामदासजी की ऐसी मित्रता थी कि यदि कोई अच्छा वस्त्र अपने लिये आवे तो वहीं एक-दूसरे के लिये दोनों ले आते थे। वृद्धावस्था में जब बड़े रामदासजी मरण शैया पर थे तो जो-जो उनकी इच्छा थी सभी दान करने के बाद उनके परिवार वालों ने पूछा कि अब पलंग से नीचे उतारे? बड़े रामदासजी ने अपनी नाड़ी देखकर “कहा रुक जाओ!” अभी 3 बन्दिश गाने का समय है और द्रुत लय की बन्दिशें गाईं। फिर नाड़ी देखकर बोले नीचे उतारो! नीचे कुशासन पर कंबल बिछाकर घरवालों ने उन्हें लिटा दिया। बड़े रामदासजी ने अपनी नाड़ी फिर देखी और बोले अभी 2 बन्दिश और गायेंगे। 2 बन्दिशें और गाने के बाद उन्होंने उपस्थित सभी को आशीर्वाद दिया और “अब चल रहे हैं” कहकर शरीर त्याग दिया।

संगीत शिक्षण देने में आप कठोर अनुशासन रखते थे। भोर में साढ़े तीन चार बजे इनके सभी शिष्य रियाज शुरू कर देते थे। सूर्योदय होने के बाद चबूतरे के दरवाजे पर तकिया लगाकर यह बैठे रहें और पास-पड़ोस के छोटे बच्चों की फौज को नित्य भैरव का पल्टा आधे घंटे, पौने घंटे गवाते थे। उसी समय कचौड़ी हलवा बेचने के लिये आ गया और सब छोटे बच्चों को एक पैसे की कचौड़ी और हलुआ खिलाकर बच्चों का सुबह अभ्यास समाप्त होता था। सायंकाल पुनः सूर्यास्त के समय उसी स्थान पर बैठते यह

वानरसेना को पूरिया धनाश्री में “सुमिरन कर मन राम नाम” के ख्याल का रियाज करवाते थे।

पूरे देश में आपकी शिष्य परम्परा विस्तृत है जिसमें बहुतेरे ख्याति प्राप्त गायक वादक रहे हैं। आपकी एकमात्र संतान कन्या का विवाह कबीरचौरा के ही विख्यात संगीतज्ञ परिवार में हुआ। आपके दौहित्र जालपा प्रसाद मिश्र अपने परिवार की संगीत परम्परा की बन्दिशों के साथ बड़े रामदासजी की बन्दिशों के भी कुशल गायक हो गये।

आपके दोनों भाई भी बहुत ही सुरीले लयदार गायक थे। एक भाई के पुत्र पं. हरिशंकर मिश्र हुये जिन्होंने पूरे देश में अपने घर की ख्याति पताका फहराई। पं. हरिशंकर मिश्र भी गायक के साथ-साथ नृत्य और सितार वादन के आचार्य थे। उनके लिये यह कहा गया जा सकता है कि अब बनारस में इनके बाद ऐसा गुणी घरानेदार संगीतज्ञ कोई नहीं है।

इनके दूसरे भतीजे रामशंकर मिश्र उर्फ “चाँप” संगीत नायक पंडित छोटे रामदासजी के सगे भांजे थे। इन्होंने पूज्य पंडित बड़े रामदासजी तथा पं. छोटे रामदासजी से गाने का पूरा प्रशिक्षण प्राप्त किया। दोनों की तालीम का रंग ऐसा चढ़ा कि युवावस्था में ही यह धुरंधर गायक हो गये। इनकी तैयारी, गले की सफाई और फिरत की तान इन दोनों आचार्यों के कलाकौशल का जीवन्त उदाहरण बन गया। इनकी तैयारी से प्रसन्न होकर इनके मामा पं. छोटे रामदासजी ने इनका नाम रक्खा “प्रचण्ड देव।” पारिवारिक जीवन में कुछ ऐसी कटुता आ गई कि इस धुरंधर गवैया ने औघड़ साधु का वेश धारण कर गृह त्याग तो किया ही, गाने के कार्यक्रमों से अलग हट गया। कालान्तर में पेड़ के नीचे अपनी कुटिया में ही प्रचण्ड देव का देहांत हुआ।

चाहमामा घराना- चाहमामा घराना पुरानी अदालत, कुदई की चौकी, कुंदीगर का टोला, दालमंडी, छत्तातले आदि मुहालों में विस्तृत था। कोठेवालियों की निकटता होने के कारण इन उस्तादों को शिक्षा देने में बहुत सुविधा रहती थी।

कभी इन घरानों में चारों अंग की गायकी के उस्ताद और विभिन्न वाद्यों

के उस्ताद अनेकानेक थे। बहुत खोजने पर भी इनकी प्राचीन वंशावली नहीं मिलती है। यत्र-तत्र कुछ उस्तादों का नामोल्लेख मिल जाता है। आशिक खाँ (गायक), तज्जू खाँ, चन्दा खाँ, सिकन्दर अली खाँ (शहनाई वादक), रजा अली (बीनकार, सितारिया और गवैया), शम्भू (रसूलन के उस्ताद), मकदूम बख्श, काशीराम किन्नर, अब्दुल रहमान (बीनकार), फतेह अली (तबला वादक), संप्रति दो संगीतज्ञ संगतकार चाँद खाँ (वृद्ध सारंगी वादक), पुत्र मेहताब (हार्मोनियम वादक) जिनका लेखिका ने साक्षात्कार भी लिया है चाहमामा में हैं अपनी बीती जीवन गाथा बताते हैं।

तेलियाबाग का घराना कालांतर में शिवाला फीलखाने में ही जाकर आबाद हुआ।

विभिन्न वाद्य:-

शहनाई- दक्षिण भारत का नागस्वरम् और पश्चिमी भारत की सुंदरी और बनारस की शहनाई के साथ दूसरे क्षेत्रों में पिपिहरी वादन की बहुत ही प्राचीन परम्परा रही है। जिस ढंग से बनारस की शहनाई में रागदारी और लोकधुनें दोनों को बजाने की परम्परा है वह पिपिहरी वादन में नहीं हैं। वर्तमान बनारस में नागस्वरम् वादन नाममात्र को बचा है। केवल शहनाई की बनारसी परम्परा देश-देशांतर में ख्याति प्राप्त और अत्यन्त लोकप्रिय शैली सर्वविदित है।

भारतीय जीवन में शहनाई मंगलवाद्य के रूप में जनसाधारण, संपन्न परिवार और राजा-महाराजा तथा मंदिरों के नौबत खाने से जुड़ी रही है। बनारस में आज भी पारिवारिक मंगल कार्य में घर के दरवाजे पर शहनाई का बजवाना शुभ माना जाता है। हमारे सोलह संस्कारों में जो प्रमुख संस्कार हैं उनके सम्पन्न होने पर देवी पूजा और गंगा पूजा का विधान है। पारिवारिक महिलाओं के गाते हुये झुंड के साथ आगे-आगे शहनाई वादक लोकगीत की संगत करने जाते हैं और पूजा होने के बाद घर वापस आते हैं। लोक संगीत और नौबत खाने की शहनाई अवधों के नवाबों के शासन के समय रौशन चौकी तक पहुँची। गोलादीनानाथ में एक परिवार सैकड़ों वर्षों से शहनाई वादन का काम कर रहा है। खुनखुन अली खाँ के पुत्र मंझू खाँ, इनके दो

पुत्र महबूब अली खाँ तथा मोहम्मद इस्लाइम खाँ के परिवार में इनके दो पुत्र इस्लाम हुसैन खाँ और गुलाम मुहम्मद खाँ अभी भी आकाशवाणी और दूरदर्शन के कलाकार हैं। इस शहनाई वादन को संगीत के मंच तक पहुँचाने का श्रेय बनारस के दो शहनाई वादकों को है- 1. नन्दलाल जी, 2. भारतरत्न से अलंकृत शहनाई नवाज बिस्मिल्लाह खाँ। परम्परागत शहनाई के साथ डुग्गी दुक्कड़ और नगाड़ा पर ठेका दिया जाता था और साथ में मजीरा भी बजता था। बीते 40-50 वर्षों में ठेका देने के लिये तबले का भी प्रयोग होने लगा है और मजीरे की संगत लुप्त हो गई है।

शहनाई नवाज उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ- आपके 5 पीढ़ियों के पूर्वज डुमराँव राज्य में शहनाई वादक थे। बचपन में ही आप बनारस निवासी अपने मामा उस्ताद विलायतु के पास आ गये। विलायतु उस्ताद के भाई अलिबख्श को शहनाई वादन की विशेष शिक्षा एक हिन्दू महात्मा और उस्ताद मुहम्मद हुसैन खाँ से ही मिली थी। इस परिवार में भी पीढ़ियों से शहनाई वादन चला आ रहा था। पंचगंगा घाट के बालाजी मंदिर के नौबत खाने में विलायतु उस्ताद और उनके भाई लोग मंदिर के राजघराने द्वारा शहनाई वादक नियुक्त थे। अपने मामा लोगों के साथ, बचपन से ही, बिस्मिल्लाह खाँ बालाजी मंदिर में शहनाई बजाने जाया करते थे। वहीं एक सिद्ध महात्मा की समाधि है। ऐसा बतलाते हैं कि उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ रात-रात भर वहीं शहनाई का रियाज करते रहे। उन्हीं महात्मा ने प्रसन्न होकर इनको संगीत का वरदान दिया और इस प्रकार उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ पूरे विश्व में बेजोड़ शहनाई वादक हुए।

उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ ने गायकी की शिक्षा बनारस के लक्ष्मण प्रसाद हार्मोनियम वादक और लखनऊ के उस्ताद अहमद हुसैन से प्राप्त की है। बनारस के सबसे वयोवृद्ध, उदार, बात के पक्के, उज्ज्वल चरित्र-वाले, मृदुभाषी और बहुत ही मनमोहक सुरिली शहनाई बजाने वाले उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ को अनेकानेक पुरस्कारों के साथ भारत सरकार द्वारा पद्मश्री से भारतरत्न पर्यन्त सभी अलंकरण प्राप्त हो चुके हैं। बनारसी मौज-मस्ती से घुली-मिली इनकी शहनाई बेजोड़ है। नौबतखाने और पुजैया शहनाई को

संगीत मंच तक पहुँचाने वाले दोनों कलाकार बनारस के ही हैं- 1. स्व. नन्दलाल जी, 2. स्व. उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ।

नन्दलाल- काशी नरेश के दरबार से पीढ़ी दर पीढ़ी शहनाई वादक के रूप में जुड़े परिवार के नन्दलालजी का जन्म 1897 ई. में हुआ था। आपके पिता सुद्धुराम और पितामह बाबूलाल भी काशी नरेश के शहनाई वादक थे।

अपने घराने की तालीम के साथ आपने उस्ताद हुसैन खाँ, हरनारायण मुकर्जी, गायनाचार्य बड़े रामदासजी आदि समकालीन विद्वानों से भी आपने रागदारी की तालीम ली। युवावस्था से ही आप पूरे देश के ख्याति प्राप्त लोकप्रिय शहनाई वादक थे।

आपके पुत्र कन्हैया लाल, श्यामलाल पौत्र रामशंकर और आप ही के परिवार के अनंतलाल ने पारिवारिक परम्परा को पुष्ट करते हुये शहनाईवादन में ख्याति अर्जित की। आप ही के परिवार के विष्णु प्रसन्न, दुर्गा प्रसाद, श्यामलाल द्वितीय रघुनाथ प्रसन्न, राजेन्द्र प्रसन्न और भोलानाथ सभी शहनाई के साथ-साथ प्रसिद्ध बाँसुरी वादक भी हैं। बनारस के अन्य बाँसुरी वादक हो गये हैं तारकानाथ नाग जिन्होंने बहुत से बंगला नाटकों में संगीत दिया था।

देश प्रसिद्ध बाँसुरी वादक हरिप्रसाद चौरसिया को बाँसुरी की पहली शिक्षा बनारस के भोलानाथ से ही मिली थी।

काशी विश्वनाथ मंदिर के नौबतखाने के शहनाई वादक

ऐसा बतलाते हैं कि लखनऊ के नवाबों ने वर्तमान काशी विश्वनाथ मंदिर के सामने नौबतखाने में शहनाई बजाने के लिये जिस परिवार को नियुक्त किया था वह कुदई की चौकी निवासी परिवार था। डेढ़ दो सौ वर्ष पूर्व इस परिवार के एक पूर्वज हुये थे रहमत अली। इन्हीं के वंश में शहनाई के अंतिम कलाकार हुये खादिम अली खाँ। खादिम अली खाँ भी देश-विदेश में मान और यश प्राप्त सुरीले शहनाई वादक हो गये हैं। उपरोक्त 3 प्रमुख घरानों के अलावा बनारस में और भी शहनाई वादकों के घराने हैं। यह सभी शहनाई वादक आज भी लोकप्रिय शहनाई वादक हैं।

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./209

खादिम अली का पारिवारिक विवरण- दिल्ली के बू-अली-शहना ने लकड़ी की खोखली नली से सात छेद करके, नली में ताड़पत्ते लगाये। हिन्दू राजपूत नौजवान ठाकुर बहादुर सिंह हकीम के चेला थे। इन्होंने उसमें कुछ परिवर्तन किया। सल्लतनकी शहजादियाँ प्रभावित हुई। दरबारियों ने इस वाद्य को शहनाई कहा। ठाकुर प्रसाद सिंह की शहनाई से प्रसन्न होकर मुँह माँगा इनाम के तौर पर काशी विश्वनाथ दरबार में शहनाई बजाने की आज्ञा हुई। लेकिन इस्लाम मजहब कबूल करना पड़ा। तो ठाकुर प्रसाद का नाम- 1. फतेह मुहम्मद पड़ा। इनके बाद 2. अब्दुला खाँ, 3. मुहम्मद रजा, 4. मुहम्मद पनाह खाँ, 5. जौहरी खाँ, 6. खुदाबख्श खाँ, 7. छोटे खाँ, 8. रहीम बख्श, 9. इलाही बख्श (दोनों भाई), 10. हाफिज अली खाँ, 11. खादिम अली खाँ इस खानदान के प्रतिनिधि हैं। इनका निवास स्थान कुदई की चौकी (बड़ा देव) था।

बीन, सरोद, सितार, इसराज, सारंगी, वायलीन इत्यादि

बनारस के संगीत घरानों के कालाकारों की विशेषता में सर्वप्रथम विशेषता यह है कि सभी कलाकारों को गायन की शिक्षा अनिवार्य थी इसलिये प्राप्त वंशावलियों के अध्ययन उपरान्त यह ज्ञात होता है कि सभी बनारसी संगीतज्ञ सर्वप्रथम गायक हुये उसके बाद अपनी रुचि के अनुसार वाद्यों का चयन करके उसमें प्रवीणता प्राप्त की।

बनारस के विभिन्न घरानों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध-मनोहर, विश्वेश्वर मिश्र, पं. शिव सहाय जी, पं. रामसेवक मिश्र, शिवा-पशुपति जी, ननकू लाल मिश्र, ठाकुर प्रसाद, दरगाही जी मिश्र, रामकुमार मिश्र, श्री लक्ष्मीदास मिश्र, मिठाई लाल मिश्र, नारायण मिश्र, पं. बड़े रामदासजी, पं. छोटे रामदासजी आदि सभी सितार, सारंगी, सारंगबीन, बीन, पखावज तबला, वायलीन, इसराज इत्यादि अनेक वाद्यों को बजाने की योग्यता रखते थे।

कथक परिवार के घराने किसी न किसी पारिवारिक संबंध से एक-दूसरे से जुड़े हैं। इसी कारण से घरानों में परस्पर आदान-प्रदान चलता रहा लेकिन हर घराने की अपनी पहचान भी बनी है। यही प्रभाव इन घरानों की वैशिक

परम्परा की शिष्याओं-गणिकाओं-नर्तकियों में भी बना रहा। कथकों के अतिरिक्त बनारस में गंधर्व, किन्नर, भाँट और दूसरे जाति/सम्प्रदाय के भी घराने रहे हैं। जिनमें महत्वपूर्ण संगीतज्ञ हो गये हैं। इन सभी घरानों के शिष्यों की संख्या भी इतनी अधिक है कि इस पर स्वतंत्र पुस्तक लिखने की आवश्यकता है। इन शिष्यों ने संगीत की हर विधा को पूरे भारत में प्रचारित करके नाम कमाया है।

बनारस में ऐसे संगीत रसिक भी हो गये हैं जिन्होंने शौकिया संगीत की शिक्षा लिया और कुशल संगीतज्ञ हो गये। धीरेन बाबू, कमल सिंह (ठुमरी गायक) श्याम शंकर चौधरी, दुर्गा प्रसाद मिश्र, श्री संतु बाबू, ओमियो बाबू, पन्नालाल मिश्र (सरोद) गगन बाबू (वायलीन), जी.एन. गोस्वामी कृष्ण विनायक भागवत (वायलीन), इमदाद खाँ (सरोदिया 1810-1871 ई.), पानू गांगुली (सरोदिया) सौरेंद्र विश्वास (सरोदिया), भोलानाथ भट्टाचार्य (सरोदिया), श्री चौधरी जी (सितार), खोखा बाबू मिश्र (सितारिया), बसु बाबू (विचित्र वीणा, सुरबहार), रत्नशंकर (सुरबहार सितार), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (तबला पखावज), गोपाल मंदिर के महाराज श्री लाल बाबा (तबला, पखावज), चुन्नीलाल वैद्य (मंजीरा), अघोर बाबू (ध्रुपद गायन), वेणीमाधवभट्ट (ध्रुपदिया), तुलसीराम (सितारिया), सरयू प्रसाद (सितारिया), गोकुल चन्द खत्री (बुलानाला वासी), गवैया 15-20 वाद्यवादक, शंखतरंग और बुलबुल तरंग भी बजाते थे।

पखावज

अति प्राचीन काल से बनारस में मृदंग, पखावज लोकप्रिय रहा उत्खनन से प्राप्त मृण्मूर्तियों में भी पखावज वादन के समान वाद्य वादक की मूर्ति इसका प्रमाण है। पखावज के साथ तबला, ढोल, नगाड़ा, खोल, चंग, डफ, खंजरी, सभी के श्रेष्ठ वादक बनारस में हो गये। पखावज की प्राचीन लोकप्रियता का एक उदाहरण यहाँ की रामलीला की परम्परा में मिलता है। अन्य लीलाओं में और रामलीला में विभिन्न पदों के सस्वर गायन के साथ अभी भी पखावज की ही संगत होती है।

बनारस के लगभग सभी तबला घरानों में पखावज वादन भी रहा है।

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./211

पखावज के अलग विशेष घरानों में- 1. पाठक घराना, 2. जोधा सिंह घराना, 3. नत्थुखाँ घराना, 4. वल्लभकुल के गोपाल मंदिर की परम्परा से जुड़े पखावज वादकों का घराना है।

मंदिर से जुड़े पखावज वादकों में वृन्दावन दास गुजराती, श्री विठ्ठलदास बौलिया वाले, जीवनलाल जी, कृष्णदास गुजराती और संकट मोचन के महंत पंडित अमरनाथ मिश्र गैर पेशेवर पखावज वादक रहे हैं, जिन्होंने अत्यन्त कुशलतापूर्वक पखावज वादन किया है।

वल्लभकुल की षष्ठ पीठ के पुराने पखावज वादकों के नाम और वंशावली अभी भी अनुसंधान के विषय हैं। मंदिर से जुड़े ख्याति प्राप्त पखावज वादक श्रीयुत् मुन्नुजी ने पाठक घराने से ही पखावज वादक की शिक्षा ली थी। श्रीयुत् मुन्नुजी ने 1936-37 में तबला वादन की स्वरचित पुस्तक का प्रकाशन कराया था। उनके पुत्र श्रीयुत् तुलसीराम जी अभी भी लब्धप्रतिष्ठित एवं ख्याति प्राप्त और वयोवृद्ध पखावज वादक हैं।

जोधसिंह घराना- जोधसिंह घराने के मृदंग वादक में दरभंगा (बिहार), दतिया (मध्य प्रदेश) और दिल्ली घराने की सभी विशेषताओं का संगम बना था। ऐसा बतलाया जाता है कि 19वीं शदी के मध्य में ख्याति प्राप्त पखावज वादक थे। इन्दौर के ख्यात प्राप्त नाना पानसे ने आपसे बनारस में ही पखावज वादन की शिक्षा ली। आपके बाजा में धातृक् धान् किट थुं किटतक, नगिनतगन तिरकिट तक तान ताधिङ्गन आदि बड़े मुलायम हाथों से बजाया जाता था।

मदन मोहन पाठक जी श्रीनाथदास के पखावज घराने से जुड़े थे और काशी में आपके अनेकानेक शिष्य हुये। जिनमें श्री मुन्नु जी ने इनकी परम्परा को आगे बढ़ाया।

नत्थु खाँ की परम्परा में पखावज वादक चाहमाहमा और शिवाला में कालान्तर में तबला वादक हो गये। इस परम्परा के तबला वादक भी अब दूसरे धन्यों में लगे हैं। मियाजान करीमुद्दीन, वहीदीछीन, विश्वनाथ किन्नर कभी इसी परम्परा के पखावज वादक थे आज जिनका विस्तृत परिचय ओर चित्र भी उपलब्ध नहीं है। सम्प्रति वल्लभ कुल के गोपाल मंदिर के पखावज

वादन की परम्परा और उसी की शाखा संकटमोचन मंदिर की तुलसीदास अखाड़े की पखावज वादन की परम्परा के उत्तम पखावज वादक बनारस में हैं।
हार्मोनियम

ईस्ट इण्डिया कंपनी के आगमन के बाद बनारस में भी आर्गन, पियानों एकार्डियन और हार्मोनियम का पदार्पण हुआ। वायोलिन उसके बहुत से पहले ही भारतीय संगीत में अपनाई जा चुकी थी। बनारस में पियानों आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पहले महाराज राजकुमार विजयानगरम् के यहाँ, एक-दो धनाढ्य बंगाली परिवारों में और ख्याति प्राप्त ज्योतिषि महामहोपाध्याय पं. अयोध्यानाथ शर्मा जी के यहाँ भी आ गया था। बनारस के बहुतेरे कुशल संगीतज्ञों ने विधिपूर्वक पियानो बजाना शुरू किया और उस पर राग-रागिनी और धुनों को बजाना शुरू किया।

हार्मोनियम सबसे अधिक लोकप्रिय हो गया। भजनियाँ, कीर्तनियाँ और लोकगीतों के साथ जगह-जगह हार्मोनियम बजने लगा जो अधिकतर एक ही रीढ़ का होता है। बनारस के बहुतेरे गायकों ने भी हार्मोनियम को अपनाया और लगभग 19वीं शताब्दी के मध्य से ही सारंगी के साथ हार्मोनियम भी संगत करने का वाद्य बन गया। बनारस के कुछ ख्याति प्राप्त गायक ऐसे भी हो गये जिन्होंने आजीवन हार्मोनियम पर ही गाया।

बनारस के हार्मोनियम की कीर्ति फैलाने वाले मौजुद्दीन खाँ के संगतकार गणपतराव भैया साहेब ने पूरे भारत में धूम मचा दी। सन् 1902 से 1908 ईस्वी के बीच में मौजुद्दीन खाँ के जितने रेकार्ड एच.एम.वी. ने बनवाये हैं; ऐसा बताते हैं कि उन सभी में भैया साहेब ने ही संगत किया है। इनकी और दूसरे घरानों की शिष्य परम्परा में बनारस में अनेक यशस्वी हार्मोनियम वादक हो गये हैं।

इनके विशेषज्ञ वादकों का हार्मोनियम पेरिस के दोहरे रीढ़ का बना होता था। इनकी आवाज बाँसुरी और सारंगी के समान मधुर होती थी।

बनारस में नृत्य

काशी या बनारस का इतिहास जितना प्राचीन है उतना ही प्राचीन यहाँ



उली बुंदी हिन्दु नर्तकीयाँ
जेम्स प्रिंसेस की पुस्तक से
1820-1840 ई०

के संगीत का भी इतिहास है। प्राचीन इतिहास में विभिन्न उत्सवों के आयोजन के अवसरों पर, बनारस के देव मन्दिरों में, राजदरबार में और वैशिक परम्परा में नृत्य निरन्तर बना रहा। 11वीं-12वीं शताब्दी बाद घटित राजनैतिक उथल-पुथल और विक्टोरिया संस्कृति लाने वाली अंग्रेज कम्पनी के प्रभाव से सामाजिक मान्यताओं में जो परिवर्तन हुआ उसका प्रभाव संगीत जगत और विशेषतः नृत्य पर पड़ा। जेम्स प्रिंसेप की बनारस पर लिखी पुस्तक जो 1820-1840 ईस्वी की है उसमें यह हिन्दू नर्तकियों का चित्र उपलब्ध है। उस पुस्तक में 1827 ईस्वी में 264 हिन्दू और 500 मुसलमान नर्तकियाँ उस समय थी ऐसा उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल से चली आ रही नृत्य परम्परा में पश्चिमी एशिया से आई संस्कृति और सभ्यता

ने नृत्य की वेशभूषा में, सामाजिक शिष्टाचार-तहजीब में व्यापक परिवर्तन हुये। इसी से यह स्पष्ट होता है कि दक्षिण भारत की नृत्य शैली- 1. दासीअष्टम, 2. मोहिनी अष्टम और 3. राजअष्टम में व्यवहृत होने वाले वाद्य यंत्र आदि और गेय पदावली सभी उत्तर भारतीय नृत्य शैली से अलग है। बनारस में भी नृत्य की क्षेत्रीय लोकशैली के साथ जो शास्त्रीय नृत्य शैली है। जिसे कथक नृत्य कहते हैं। उस पर भी पश्चिमी एशिया से आई भाषा, वेशभूषा और भारत में ही पैदा हुई उर्दू भाषा का व्यापक प्रभाव है। जैसे- नृत्य प्रारम्भ करते ही यह कहने का रिवाज हो गया- “पहला टुकड़ा सलामी का”। तबले में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली प्रयोग नृत्य में भी होता है जैसे- कायदा और आमद। पिछले छः, सात दशकों में बनारस के नृत्याचार्य शुक्रदेव जी उर्फ “शुकरे महाराज” जैसे आचार्यों ने प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार “मंगलाचरण” से नृत्य के कार्यक्रम को आरम्भ करना फिर से आत्मसात किया।

बोलचाल में ऐसा बिवरण मिलता है कि कथक नृत्य जयपुर, लखनऊ और बनारस घराने अलग-अलग हैं परन्तु इतिहास यह संकेत देता है कि बनारस के ही वंश परम्परागत नृत्य के आचार्यों ने काशी जनपद के ग्रामीण अंचलों से और शहर बनारस से लखनऊ और जयपुर में जाकर यहाँ के घरानों को बनाया। साथ ही तीनों घरानों की अपनी-अपनी विशेष पहचान भी बनी। विगत 200-300 वर्षों में जनसाधारण के लिये तीनों घराने अलग पहचाने जाते हैं परन्तु वास्तविक रूप से सभी एक हैं। जिसमें लखनऊ घराना आज भी सम्मानित हैं।

बनारस के सभी संगीत आचार्य गायक, वादक, नृत्य के भी मर्मज्ञ थे। उनके द्वारा प्रशिक्षित वैशिक परम्पराओं की गणिकाओं ने बनारस के नृत्य को पूरे भारत में दूसरे नगरों में बसकर, राजदरबारों और सामंतों के यहाँ राजनर्तकी का पद प्राप्त कर बनारस के नृत्य को सार्वदैशिक नृत्य बना दिया। इसका श्रेय बनारस की संगीत परम्परा के उन संगीतज्ञाचार्यों को है जिन्होंने इन्हें ऐसे लास्य की शिक्षा दी कि वह सभी को मुग्ध कर लेती थीं।

इतिहास की कुछ पुस्तकों में डेढ़ सौ-दो सौ वर्ष पूर्व के बनारस के एक

नर्तक “प्रसिद्ध” नर्तक का नाम मिलता है लेकिन इनकी परम्परा के बारे में कोई भी जानकारी अभी तक नहीं मिली है। यह नर्तक पियरी घराने के संगीताचार्य प्रसिद्ध जी के समकालीन थे ऐसा बतलाते हैं। संलग्न वंशावलियों में बनारस के नृत्य घरानों का पूरा विवरण द्रष्टव्य है।

पिछली शताब्दी के बनारस के नृत्य के आचार्यों में पियरी घराने के आचार्य, तबला घराने के रामसहाय जी के भातृ गण, पंडित नंदकिशोर मिश्र के पूर्वज और मौजुद्दीन खाँ के गुरु पं. जगदीप जी के साथ-साथ चाहमाहमा के उस्ताद नियामत उल्ला का नाम उल्लेखनीय है।

लखनऊ घराने के नृत्याचार्य कालिका महाराज बनारस में बहुत लंबी आयु अवधि तक अपनी व्यापक शिष्य परम्परा के साथ रहे। इनकी शिष्य परम्परा से नृत्याचार्य पं. शुकदेव जी भी जुड़े हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी संगीत को सुरक्षित रखने वाले परिवार के नेपाल में ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ रामदास के एकमात्र पुत्र संगीत की सभी विधाओं में निष्णात पंडित शुकदेव उर्फ शुक्रे महाराज पियरी घराने के आचार्य पंडित रामसेवक मिश्र जी के योग्य शिष्य थे। सभी प्रकार के गायन, विभिन्न वाद्यों का वादन और तबला, पखावज ढोलक बजाने में पारंगत शुक्रे महाराज संगीत की सम्पूर्ण मूर्ति थे। जब यह अपनी संतान और शिष्यों को विष्णुपद के गायन का रियाज कराते थे उसको देखे-सुने व्यक्ति अभी भी बनारस में हैं। नाच के बोलों को ऐसा बोलने वाला आज दूसरा व्यक्ति खोजना दुर्लभ है। इन्होंने अपने जीवन की पूरी तपस्या से अधिक उपर्जित ज्ञान को हजारों पृष्ठों में स्वयं लिखकर नृत्य विज्ञान की एक अनूठी पुस्तक तैयार की थी, जो संभवतः इनके उत्तराधिकारियों के पास अभी भी बनी है लेकिन अप्रकाशित है कदाचित ऐसी कोई भी दूसरी पुस्तक कथक नृत्य के बारे में इसके समकक्ष नहीं हो सकेगी।

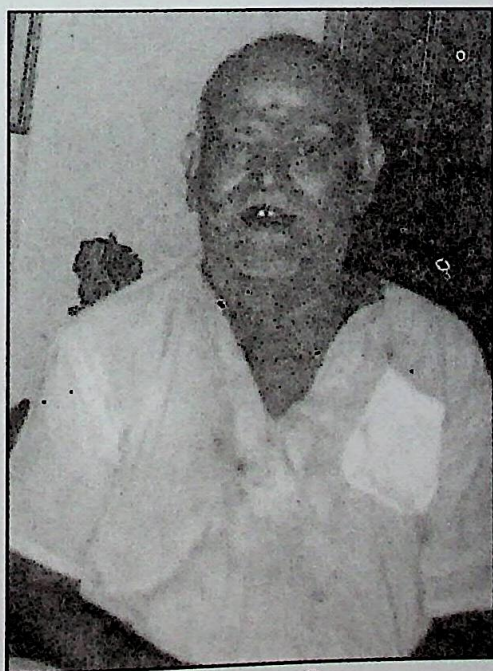
शुक्रे महाराज ने अपनी जो शिष्य परम्परा छोड़ी है वह स्वयं इनके गुणों का प्रमाण हैं। शुक्रे महाराज उच्चकोटि के सरोद वादक भी थे। इनकी जीवन शैली सधुकड़ी साधक के समान थी।

इनकी सबसे छोटी पुत्री सितारा देवी आज पूरे देश में सर्वश्रेष्ठ कथक नृत्यांगना है। इनकी द्वितीय पुत्री का पुत्र स्वर्गीय नटराज गोपीकृष्ण कथक

नृत्य और भरत नाट्यम् दोनों पर समान अधिकार रखता था। नटराज गोपीकृष्ण से पूरा भारतीय संगीत जगत् परिचित हैं। इनके परिवार में आज भी संगीत बना हुआ है।

पं. नन्दकिशोर मिश्र उर्फ नम्फूजी मृदु भाषी और कुशल प्रशिक्षक थे इनकी शिष्य परम्परा देश में फैली हुई है। सम्प्रति बनारस में लोकनाथ मिश्र कथक नृत्य के निष्णात् आचार्य हैं।

बनारस के लोकनृत्य में ढोलक और कांसे का कटोरा बजाकर स्त्री, पुरुष दोनों ऐसा भावपूर्ण नृत्य करते हैं जो अपने में बेजोड़ है। लोकनृत्य के दादरा और कहरवा नृत्य की शैली को बनारस के नृत्याचार्यों ने शास्त्रीय स्वरूप देकर ऐसा मनमोहक स्वरूप बना दिया कि यह बनारस घराने की अपनी एक पहचान हो गई। शुकरे महाराज की प्रथम पुत्री अलखनन्दा और दो-चार गणिकाओं ने अपने समय में ऐसा दादरा और कहरवा नाचा था जो अब देखने को नहीं मिलता है।



पं. हरिशंकर मिश्र

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./217

बनारस का पियरी घराना

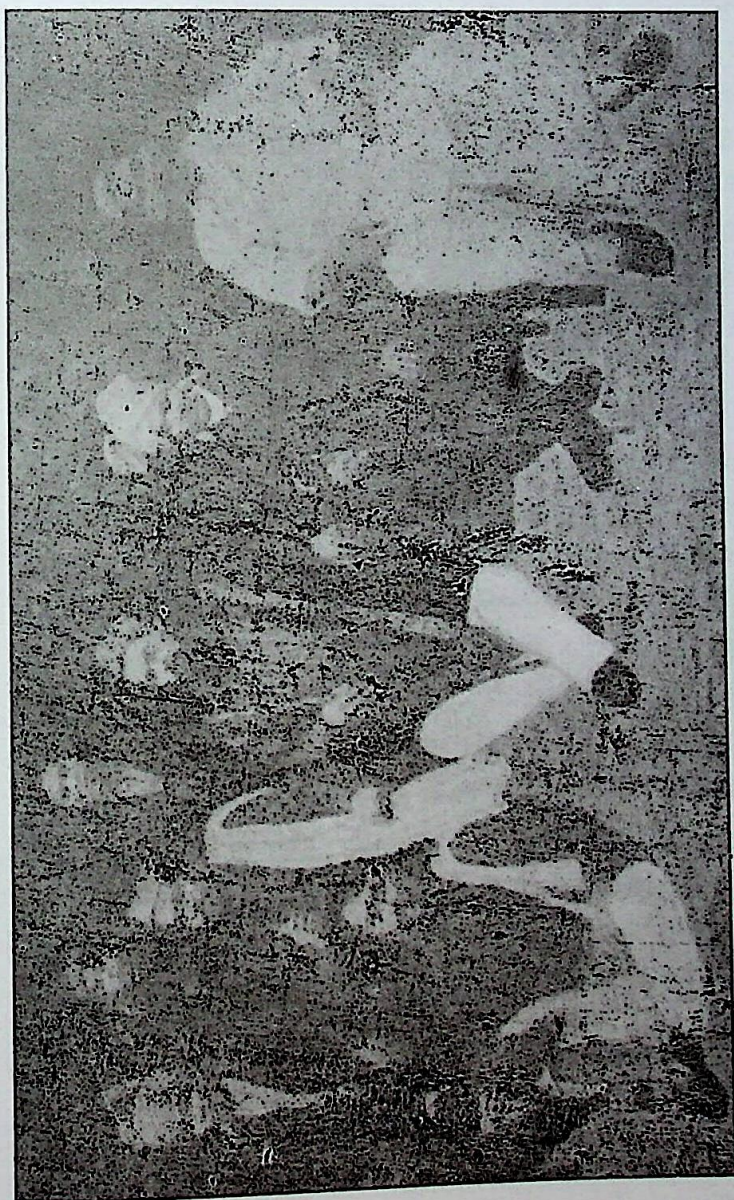
बनारस के संगीत घरानों में सबसे प्राचीन एवं समृद्ध घराना पियरी घराना ही है। बनारस की सभी विधाएँ गायन, वादन, नृत्य में पियरी घराने के कलाकारों ने पूरे देश में अपना नाम किया साथ ही बनारस को संगीत जगत् में सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाया है।

यह घराना वृन्दावन के प्रसिद्ध संत संगीतज्ञ राधावल्लभ सम्प्रदाय के संस्थापक स्वामी हित हरिवंश जी से संबंधित है। स्वामी हित हरिवंश जी अष्टछाप के सूरदास जी आदि के समकालीन थे। बनारस के पियरी घराने के पूर्वज उसी काल के स्वामी हित हरिवंश और महाप्रभु वल्लभाचार्य जी पूज्य चरण की परम्परा जुड़े हैं।

विगत दो वर्षों से अधिक की खोज बीन के बाद पियरी घराने से जुड़ी कुछ सामग्री प्राप्त हुई। इनके परिवार के वयोवृद्ध सदस्यों की बतलाई हुई और दूसरे संगीतज्ञों द्वारा कुछ महत्वपूर्ण रचनायें मिली हैं। इस परम्परा के वर्तमान संगीतज्ञ पंडित सुरेन्द्र मोहन मिश्र 'मोहन जी' भी अपने पूर्वजों की प्रामाणिक सूचना एकत्रित कर रहे हैं हो सकता है कि आगे इस पर कुछ प्रकाश पड़े।

12वीं शताब्दी में काशीराज्य की दो राजधानियाँ थीं कनौज और बनारस। बुजुर्गों ने बताया है कि इस परिवार के पूर्वजों की एक शाखा बनारस में थी जो बंगाल के श्यामल वर्मा के काल में वहाँ चली गई। मुस्लिम आक्रमणों

बनारस का पियरी घराना



उपर खड़े - गोपाल जी, पं. ठाकुर प्रसाद जी। दूसरी पंक्ति बैठे - पं. छोटे रामदास,
पं. पशुपतिसेवक, पं. शिवसेवक, पं. बड़े रामदास, हथवा नरेश। नीचे पंक्ति में - लल्लूबाबू.

से ध्वस्त होने के पहले ही इस परिवार के कनौज शाखा के लोगों को बलरामपुर गोंडा, उत्तर प्रदेश में विष्णु मंदिर की सेवा के लिए भेज दिया गया था। यहाँ से इनके पूर्वज पुनः मुस्लिम आक्रमण होने के बाद वृन्दावन चले गये।

पाण्डित्य के साथ इनके परिवार में आस्था पहले से ही थी। ये सभी लोग वैष्णव ही थे जब ये वृन्दावन पहुँचे तो वहाँ राधावल्लभ संप्रदाय के स्वामी हित हरिवंश और पूज्य चरण महाप्रभु वल्लभाचार्य जी के पुष्टिमार्ग की संगीत सेवा सूरदास जी आदि के वैष्णव सेवा में होने वाली संगीत परम्परा का विशेष ज्ञान प्राप्त हुआ। उस समय मुगल बादशाह अकबर ने अपनी राजधानी आगरा को बनाया था। वृन्दावन में स्थानीय मुस्लिम उपद्रवों से सेवा में जो विघ्न आता था उससे बचने के लिए पुष्टिमार्ग के ठाकुर जी को लेकर लोग राजस्थान चले गये और पियरी घराने के पूर्वज आगरा से दूरस्थ बनारस चले आये।

इस घराने का प्रामाणिक उल्लेख हित हरिवंश के समय से प्राप्त होता है। लेकिन पं. ठाकुर दयाल जी के बाद से ही वंशावली का क्रमबद्ध इतिहास प्राप्त होता है। ठाकुर दयाल जी के पूर्व देवी प्रसाद, दिलाराम मिश्र, जगमन मिश्र, चिन्तामणी मिश्र, ये नाम प्राप्त हैं लेकिन इनका क्रमबद्ध इतिहास खोज का विषय है। ठाकुर दयाल जी मुगल दरबार के सदारंग और अदारंग के समकालीन घनिष्ठ मित्र थे। परस्पर अदान-प्रदान स्वरूप इनके परिवार में सदारंग की बन्दिशों का भंडार बना रहा।

ठाकुर दयाल जी के तीन पुत्र- 1. श्री मनोहर मिश्र, 2. श्री हरिप्रसाद मिश्र, 3. श्री विश्वेश्वर मिश्र संगीत के क्षेत्र में उच्चकोटि के कलाकार थे। बड़े दोनों भाई 'प्रसिद्ध-मनोहर' की जोड़ी नाम से पूरे देश में प्रसिद्ध हुये। दोनों भाई, मनोहर बनारस से कलकत्ते तक और प्रसिद्ध जी बनारस से नेपाल तक संगीत के प्रचार-प्रसार में लगे रहे। दोनों ने गायन के क्षेत्र में ख्याति अर्जित की। पटियाला नरेश के दरबार में 40 दिन तक आयोजित अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन में 'प्रसिद्ध-मनोहर' सर्वोच्च गायक घोषित हुये थे। उन्हें उस समय 'श्रुतिधर' उपाधि से सुशोभित किया था तथा पटियाला नरेश के साथ अनेक कलाकार इनके गंडाबद्ध शिष्य हो गये थे। पटियाला नरेश ने अपार धनराशि, हीरे, जवाहरात एवं तीन गाँव शिवपुर, जुडपुर, परमपुर, इन्हें भेंट स्वरूप दिये थे। इनके तीसरे भाई श्री विश्वेश्वर मिश्र गायन के साथ-साथ



पं. लक्ष्मीदास मिश्र (पियरी घराना)

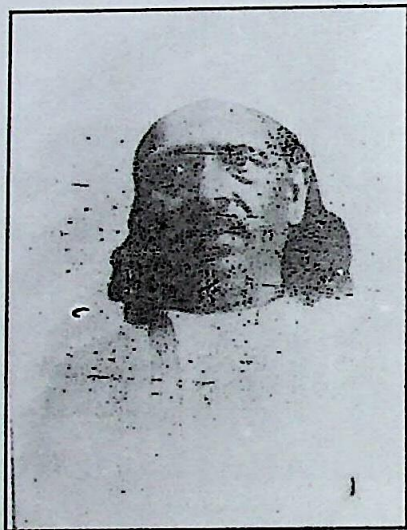
सितार में ख्याति प्राप्त कलाकार हुये। ये बनारस की व्यवस्था देखते थे।

पियरी घराने श्री मनोहर मिश्र के पुत्र श्री रामकुमार मिश्र और पौत्र श्री लक्ष्मीदास मिश्र ने भी बनारस घराने का नाम पूरे देश में फैलाया। श्री लक्ष्मीदास मिश्र ने वीणावादन में अधिक यश फैलाया। पिता एवं बाबा का कार्य क्षेत्र बंगाल होने से बंगाल में आपके अनेक शिष्य तैयार हुये।

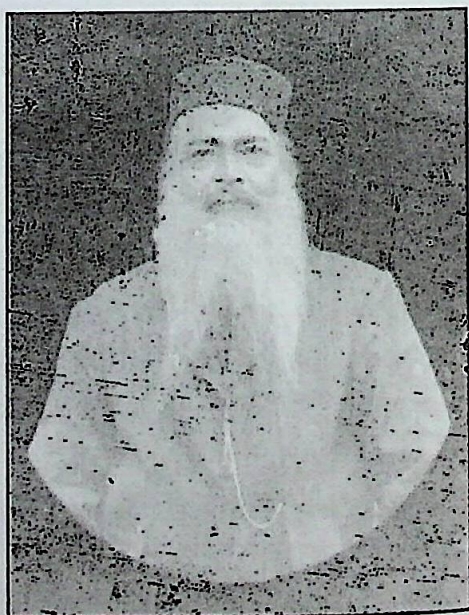
प्रसिद्ध जी के घराने में इनके दो पुत्र- 1. पं. शिवसहाय जी, 2. पं. रामसेवक जी दोनों ही धुरंधर गायक वादक हुये। प्रसिद्ध जी अधिकतर नेपाल रहे लेकिन बाद में बनारस आकर विद्यादान देने में उन्होंने अपना समय व्यतीत किया। बड़े पुत्र श्री शिवसहाय जी की संगीत की शिक्षा अपने पिता प्रसिद्धजी एवं चाचा श्री मनोहर जी से हुई। आपके पास टप्पे का भंडार था। पं. शिवसहाय जी की शिष्य परम्परा में श्री ठाकुर प्रसाद मिश्र और पं. दरगाही जी मिश्र हुये जिन्होंने ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा होरी सभी की शिक्षा प्राप्त की थी। ठाकुर प्रसाद जी को 'टप्पैल' कहा जाता था। बहुत टप्पे उन्हें याद थे किंवदन्ति है कि शिवसहाय जी बाद में साधु हो गये थे। द्वितीय पुत्र रामसेवक जी ने काशी के क्वींस कालेज से इण्टर की परीक्षा उत्तीर्ण की थी इसके अतिरिक्त वे अरबी, फारसी, उर्दू, बंगला आदि अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे, इन्होंने गायन, वादन (तबला) दोनों में प्राविण्य प्राप्त

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./221

बनारस का पियरी घराना



पं. शिवसहाय मिश्र

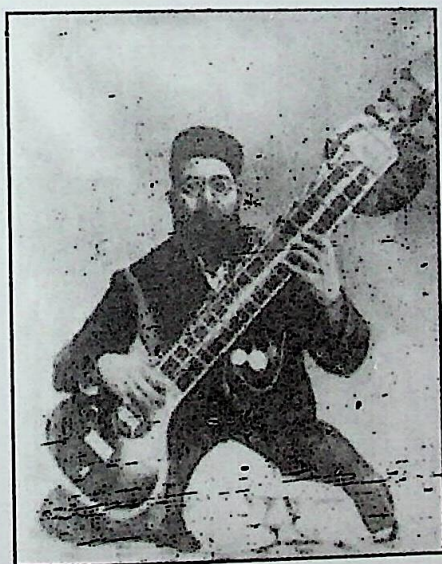


पं. रामसेवक मिश्र

किया था। इन्होंने 'तालप्रकाश' एवं 'तबला विज्ञान' नामक दो ताल से संबंधित पुस्तकें लिखी। 'तालप्रकाश' के मुख पृष्ठ की छाया प्रति संलग्न है। आपने बनारस व नेपाल दोनों जगहों पर संगीत की शिक्षा देने का कार्य किया।

पं. रामसेवक जी के बाद उनके दो पुत्र शिवा-पशुपति जी ने प्रसिद्ध-मनोहर जी के समान संगीत में यश कमाया। जेष्ठ पुत्र पशुपति सेवक-अपने युग का धुरंधर बीनकार एवं सितारवादक हुये। गायन में तो उस समय सभी कलाकार विद्वान होते थे। छोटे पुत्र शिवसेवक जी भी गायन-वादन में निष्णात् थे। इस शिवा-पशुपति जोड़ी को कोई शेर-बब्बर कहते थे क्योंकि इनके समय इनकी बराबरी करने वाला कोई कलाकार नहीं था।

शिवसेवक जी के तीन पुत्र थे- 1. रामकृष्ण सेवक, 2. श्री भवानी सेवक, 3. श्री विष्णु सेवक इन्होंने भी पियरी घराने का नाम किया। रामकृष्ण सेवक पुत्र मारूती सेवक (मिठु लाल जी) भी अच्छे गायक थे।



पुत्र पशुपति सेवक



पुत्र शिवसेवक

(संगीत का बनारस घराना)

अध्याय-4 बनारस की संगीत परम्परा./223

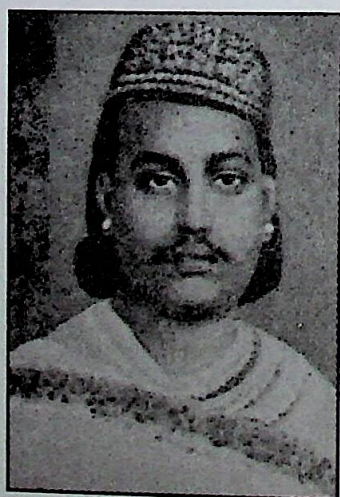
भवानी सेवक जी के पुत्र सुरेन्द्र मोहन आज पियरी घराने के प्रतिनिधि के रूप में हैं जो संशोधन कार्य कर रहे हैं। इनके पुत्र भी संगीत जगत् में कार्यरत हैं। विष्णु सेवक जी ने अपनी कार्यस्थली मालदा बनाई वहीं पर संगीत की सेवा करते रहे।

पं. शिव सेवक जी के पुत्र

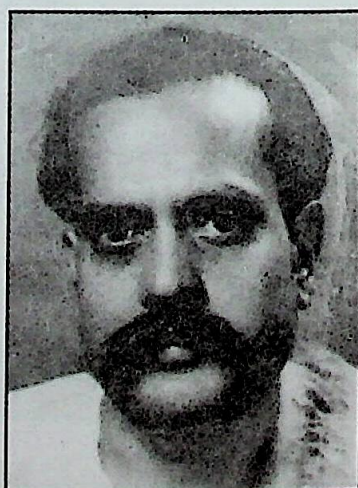


पं. रामकृष्ण सेवक

पं. रामकृष्ण सेवक



पं. भवानी सेवक



पं. विष्णु सेवक

इस पियरी घराने की विशेषता यही है कि गायन, ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, होली, चैती, कजली अनेक विधाओं में प्रवीण तो थे ही साथ ही अनेक तंत्री वाद्य, अवनद्ध वाद्य के साथ नृत्य में भी प्रवीण थे। सभी संगीतज्ञों ने पूरे देश में अपने-अपने समय में ख्याति अर्जित की। पूरे भारत में संगीत फैलाने का श्रेय पियरी घराने को है। बनारस का संगीत घराने से ही विकसित होकर बनारस-घराना बना।

संगीत के बनारस घराने की विशेषताएँ

- (1) चारों अंग (ध्रुपद, धमार, ख्याल टप्पा, ठुमरी) के पटु गायक।
- (2) आलापचारी में भाव को प्रधानता।
- (3) स्वर और लय पर समान रूप से अधिकार।
- (4) तानों में स्पष्ट उच्चार के साथ तैयारी।
- (5) बोलबांट और बोलबनाव दोनों प्रकार की ठुमरी के ज्ञाता, बोलबनाव ठुमरी में भावपूर्ण लगाव तथा बोलबांट में लय के साथ खिलवाड़ करने की क्षमता।
- (6) लोक संगीत की होरी, चैती, झूला, कजली विधाओं का शास्त्रीय संगीत विधि से विलंबित भाव प्रधान बोलबनाव द्वारा विस्तार।
- (7) गायकी पर खण्डमेरु पद्धति का प्रभाव।
- (8) गुरु शिष्य परम्परा की शिक्षा पद्धति।
- (9) सभी कलाकार गायन की सभी विधाओं जैसे ध्रुपद, धमार, ख्याल, चतुरंग, सरगम, टप्पा, टपख्याल, ठुमरी, दादरा, होरी, चैती कजली के साथ अनेक वाद्यों को बजाने में प्रवीण, साथ-साथ कुछ विद्वान नृत्य में भी पारंगत हुये।
- (10) भारत में जगह-जगह कार्यक्रम देने से एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान जैसे उर्दू, फारसी, नेपाली, पंजाबी, बंगाली, ब्रजभाषा, हिन्दी, अंग्रेजी आदि।
- (11) उच्चकोटि की साहित्यिक रचनायें शब्द, स्वर, लय, ताल से युक्त, रागों के भावानुसार रचने की क्षमता। वाद्य वादन में भी सुन्दर बन्दिशें

रचने की क्षमता।

(12) बनारस में गायन के साथ शहनाई और सारंगी तबला वादकों की लंबी सूची के साथ बीन, सितार, बांसुरी, हार्मोनियम आदि वाद्यों के वादकों की भी लंबी सूची है जिन्होंने अपने वादन की परम्परा को पूरे देश-विदेश में फैलाकर बनारस को संगीत जगत में समृद्ध बनाया।



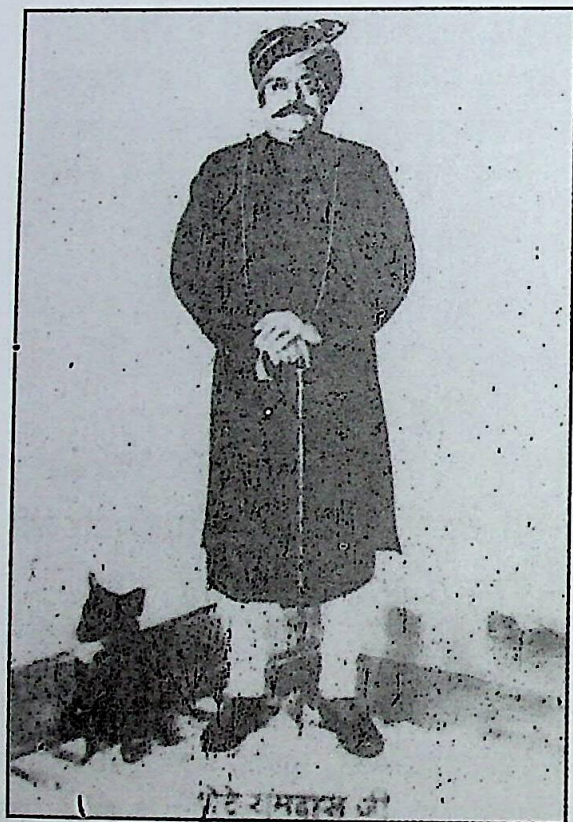
अध्याय-5

पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदासजी की संगीत-परम्परा एवं विशेषताएँ

सर्वविद्या की राजधानी काशी की कला और संस्कृति पूरे विश्व में निराली है। यहाँ की मौज-मस्ती, रहन-सहन, धार्मिक आस्था, सात वार नौ त्यौहार के लिए प्रसिद्ध है। बनारस में संत-महात्मा, अमीर-गरीब, उच्च कोटि के साहित्यकार तो साथ ही निपट गँवार (काशी के प्रभाव से भी साहित्यिक चुटकियाँ लेने के अभ्यस्त), संगीतज्ञों के साथ-साथ सभी कलाओं के कलाकार हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि 64 कलाओं के साथ इन सभी का संगम यहाँ मिलता है। वस्तुतः काशी एक लघु विश्व का प्रतीक है जहाँ की सभी भाषाओं रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार आदि में बनारसीपन का पुट है।

ऐसी ही काशी में पं. शिवकुमार शास्त्री का परिवार है जिसमें पूरे बनारस व बनारसीपन का दिग्दर्शन होता है। शिवकुमार शास्त्री के पूर्व की छठी पीढ़ी में कन्हैयालाल जी हुए। उनकी परम्परा में आने वाले सभी दिग्गजों से विरासत में प्राप्त साहित्य, संगीत, कला, आयुर्वेद, भारतीय व्यायाम और राष्ट्रवादी रुझान को इस सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी ने बखूबी

अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../227



पं. छोटे रामदास जी
आकर्षक व्यक्तित्व



रेकार्ड का लेबल

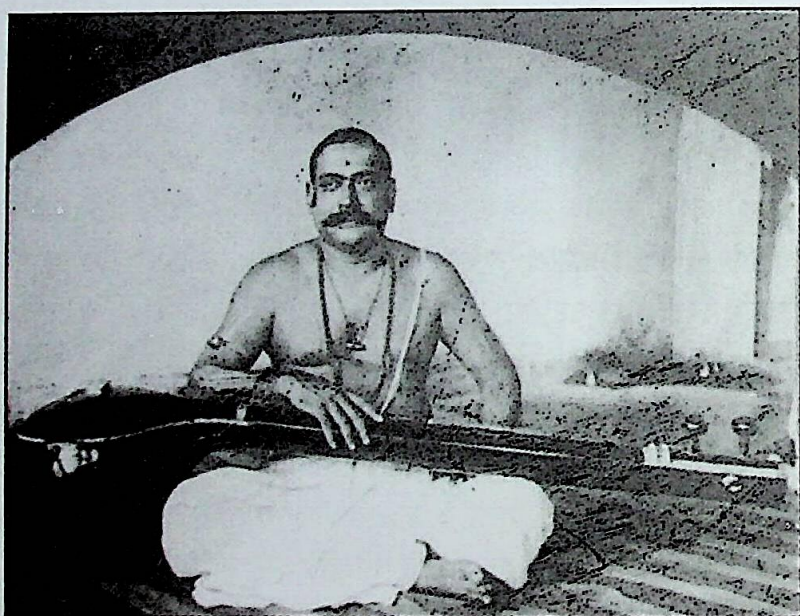
228/संगीतमय बनारस

आत्मसात् करके सुरक्षित रखा है। शास्त्रीजी की स्मृति अलौकिक है। इन विविध क्षेत्रों के अतिरिक्त अधुनातन ज्ञान-विज्ञान के इस चलते-फिरते मिनी विश्व-कोश के रूप में शास्त्रीजी ने पीढ़ियों से चली आ रही कतिपय विशेषताओं को अपने परिवार में सुरक्षित रखी है। चूँकि आपके परिवार में बनारस तथा खाँटी बनारसीपन की झलक मिलती है इसलिए यह कहना अत्युक्ति न होगी कि आपके इस परिवार की विशिष्टताओं में बनारस की ही विशिष्टताएँ अनुस्यूत हैं। पं. शिवकुमार जी के संगीत गुरु पं. छोटे रामदास रहे हैं।

पं. छोटे रामदास- पियरी घराने के एक और नक्षत्र संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी अपने समय के बनारस के चौमुखी धुरंदर विद्वान गायक थे। आपके पिता श्री कन्हैया लाल जी महाराज मांडा के श्री रामप्रताप सिंह के दरबारी गायक थे। आपको गायन, बीन, सारंगी, हार्मोनियम, जलतरंग, वायलिन, पैर से बजने वाले आर्गन आदि की शिक्षा आपके पिता कन्हैया लाल और नाना पं. ठाकुर प्रसाद मिश्र से मिली थी। पियरी घराने की गायकी की तालीम पं. रामसेवक मिश्र जी से मिली। दिलबहार, सितार, बीन, सारंगबीन आदि की शिक्षा पं. लक्ष्मीदास से प्राप्त हुई। बेतिया घराने धनू मिश्र के पास 21 वर्ष ध्रुपद, धमार सीखा। उन्हें तबला की शिक्षा अपने चाचा श्री विश्वनाथ जी से मिली। कर्नाटक संगीत शैली की शिक्षा नाना ठाकुर प्रसाद जी से मिली जिसमें कर्नाटक त्रिमूर्ति संत त्यागराज, मत्तु स्वामी दीक्षितार, श्यामा शास्त्री इनकी रचनायें नाथ नामक्रिया, कर्नाटकी, सिम्हेन्द्रमध्यम भी आप गाते थे। जिनका सार्वजनिक प्रदर्शन 1930 ई. पहले दक्षिण भारत में कर चुके थे। इतने विद्वानों से अलग-अलग विधाओं को सीखकर कुशलता प्राप्त करना सबके लिये संभव नहीं है। पं. छोटे रामदासजी की योग्यता देखकर ही इन सब धुरंदर विद्वानों ने इन्हें संगीत की सब विधाओं की शिक्षा देकर संगीत नायक बना दिया। ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, गुल, सिंधी-पंजाबी काफिया के गायक; बीन, सितार, सारंगी, दिलबहार, जलतरंग, हार्मोनियम, वायलिन, तबला, पखावज, पियानो, एकार्डियन, सुरबहार, सुंदरी, इसराज, तारशहनाई, डफ, चंग, मुरचंग,

अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../229

खोल, गोपीचन्द आदि बजाने वाले पं. छोटे रामदासजी ने अनेक रियासतों में, राजा-रजवाड़ों के यहाँ, अनेक रईसों के यहाँ अपने कार्यक्रम दिये। इनको लोग टप्पा के बादशाह कहते हैं। टप्पा गाने में इनके समान कोई नहीं हुआ। बकौल हरिशंकर मिश्र, भारतरत्न बिस्मिल्लाह खाँ तथा बनारस के सभी वयोवृद्ध कलाकार इसके प्रमाण हैं।



बनारस के पियरी घराने के संगीत साधक पं. छोटे रामदास

पं. किशन महाराज जी ने बताया कि पं. छोटे रामदासजी जब तक दोनों तंबूरे की जोड़ी एकदम एक स्वर में नहीं मिलती थी तब तक अपना कार्यक्रम नहीं देते थे। एक स्वर में मिलाने का तात्पर्य ऐसा कि एक कोने में यदि एक तंबूरा बजे तो दूसरे कोने में रखे तानपूरे के तार अपने आप झंकृत हो। वे ऐसा ही तंबूरा मिलाते थे।

पं. छोटे रामदासजी के अनन्य शिष्य पं. शिवकुमार शास्त्री ने अपने गुरुजी की दिनचर्या की जानकारी प्रदान की। उन्हीं के शब्दों में- “प्रातः 4 बजे के पहले बिस्तर छोड़कर नित्यकर्म से निवृत्त होकर रियाज करने बैठते

थे। रियाज सबेरे छः-सवा-छः बजे तक करने के बाद टहलने जाते थे। उसके बाद 1 छँटाक भींगा चना, 1 छँटाक बदाम और 1 छँटाक किशमिश खाते थे। रियाज के बाद 1000 दंड, 1500 बैठक, 500 हाथ जोड़ी और 200 हाथ गदा फेरते थे। कसरत करते थे, तेल मालिश करके शरीर स्वस्थ रखने का विशेष ध्यान रखते थे। रियाज के बाद जाकर गाय का 5 किलो धारोष्ण दूध पीते थे। स्नान के बाद पूजा करते थे। इनके कसरत करते समय चेला लोग रियाज करते थे। पूजा करने बाद रोज ठाकुर जी को भोजन की थाली का भोग लगाकर ही प्रसाद रूप में भोजन ग्रहण किया जाता था। स्वयं तरकारी खरीद कर लाते थे। भोजन के बाद चेला लोगों को बिदाई दी जाती थी। भोजन के बाद हुक्का पिया, पान खाया, घड़ी देखकर आधा पौन घंटा सो जाते थे। दोपहर 3 बजे उठकर, निपटकर हुक्का पिया (इनका हुक्का चाँदी का था।) फिर साज मिलाया। सब साज रोज मिलाकर थोड़ा बजाना। ठीक पाँच बजे दोपहर की बैठक बंद। पाँच बजे शाम को नहाकर बढ़िया कपड़ा पहनकर तालीम देने जाना अथवा कहीं गुरुजी स्वयं मेरे पिताश्री पं. रामशंकर वैद्यजी के पास मिलते चले आते थे। रात को 10 बजे तक घर पहुँचकर रियाज करने बैठ जाते थे। रोज सबेरे भैरव व रात को दरबारी का अभ्यास होता था। रात में धीमी आँचपर रक्खा भैंस 5 सेर का दूध पकाकर डेढ़ सेर किया हुआ, गुलाबी रंग का हो जाता था, उस पीते थे। दिन में 1 समय सुबह भोजन करके रात को दूध पीकर सो जाते थे। बाई साहेब हुस्नाबाई को तालीम देने जाते समय और चेलो की तालीम का समय बदल देते थे।” मरने के 4 महीने पहले तक 300 दंड, 700 बैठक और 300 हाथ जोड़ी फेड़ी थी ऐसी थी संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी की दिनचर्या।

अधिकतर उस्ताद बाहर कार्यक्रमों में व्यस्त रहते थे। हर साल भादों में 1 महीने का कार्यक्रम महाराज रायपुर करते थे। वहाँ 10-12 दिन रहते थे। 1 सप्ताह महाराज अलवर के यहाँ अवश्य जाते थे। बाकी सभी रियासतों में पटियाला, रामपुर, सिंगरामऊ, महमूदाबाद, राजाखनियाधाना, माण्डा, त्रिपुरा, रीवा, नेपाल, जगमनपुर, जम्मू-कश्मीर आदि में अपनी मर्जी के

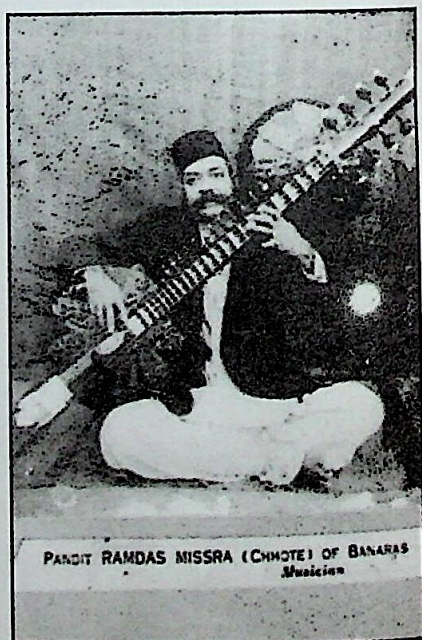
अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../231

संगीत नायक पंत्र छोटे रामदास जी



कौमुदकी वीणा बजाते

सरस्वती वीणा बजाते



अनुसार जाते थे। विश्वकवि रविन्द्रनाथ ठाकुर के कलकत्ता स्थित जोड़ासाकू कोठी पर 1 साल में दो बार आपका कार्यक्रम अवश्य आयोजित होता था। वसंत पंचमी एवं वर्षा ऋतु में रविन्द्रनाथ जी को बीन पर मल्लार राग

अवश्य सुनाते थे। बंगला प्रथम वैशाख पर अलग कार्यक्रम होता था। आपको अनेक भाषाओं, संस्कृत, फारसी, उर्दू, बंगला, नेपाली, हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, पश्तो और मराठी का ज्ञान था। इन सभी भाषाओं में रचनायें गाते थे। ख्याल गायन में भैरव, विलावस्त, गौड़सारंग, ईमन, बिहाग, वसंत, बहार, सोहिनी, देस, गांधारी, दरबारी आपके प्रिय राग थे। साजगिरी, जिलफ, देस, मांड, बहार सोहिनी आदि रागों में टप्पा गाते थे। जिस दिन ख्याल गाते थे उस महफिल में केवल ख्याल और टप्पा गाते थे। यदि ठुमरी, दादरा गाना हो तो केवल ठुमरी की महफिल होती थी। 3-4 घंटे ठुमरी गाकर श्रोताओं को भाव-विभोर कर देते थे। ध्रुपद धमार चतुरंग तराना आदि और कुछ नहीं गाते थे। डॉ. बी.आर. देवधर आपकी 1935-39 ई. की इलाहाबाद की महफिल की प्रशंसा करते थकते नहीं थे। जिसमें आपने दो घंटे राग हिजाज गाया था।

ऐसे विलक्षण संगीत प्रतिभा के धनी संगीत नायक पंडित छोटे रामदास देखने में अत्यन्त सुन्दर, आकर्षक व्यक्तित्व, ईश्वर प्रदत्त शरीर सौष्ठव जिसे नित्य कसरत से आकर्षक बनाया था, स्वभाव से मनमौजी और निरभिमानी कलाकार थे। संगीत मंचपर अपनी भव्य आकृति एवं व्यक्तित्व से आप किसी नवाब-नरेश की तरह शोभायमान होते थे। अनेक बार लोगों ने धोखा खाया। पं. किशन महाराज जी ने बताया कि किसी नवाब की बग्घी में जा रहे थे तो लोगों ने इन्हें ही नवाब समझ कर इनका सम्मान किया। आपके शिष्यों में उपेन्द्रनाथ डे, सोहनी, तारा, हुस्नाबाई आपके भाई गोपाल मिश्र, गांगुली ओमिबाबू, दामोदर मिश्र, वर्तमान में पं. शिवकुमार शास्त्री एक मात्र शिष्य जीवित हैं जिनके द्वारा भी मुझे पं. छोटे रामदासजी के बारे में जानकारी प्राप्त हुई।

पं. शिवकुमार शास्त्री जी ने उस्ताद से सितार और गायन की शिक्षा ली उनके पास से लेखिका को इस पियरी घराने की अनेक बन्दिशें प्राप्त हुई हैं जो लिखित रूप में कहीं भी नहीं हैं, मौखिक परम्परा से इन्हें याद हैं। उनके सितार वादन के लिये बनारस के प्रसिद्ध तबला वादक पं. कण्ठे महाराजजी के शिष्य कविराज आशुतोष भट्टाचार्य जी ने साक्षात्कार में मुझे

अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../233

बताया कि शिवकुमार जी ने सितारवादन में अपने उस्ताद की वादन शैली को पूरी तरह से आत्मसात् किया है लेकिन उन्होंने इसे पेशे के रूप में न अपनाकर शौकिया सीखा। यदि वे मंच पर बजाते तो आज अवश्य उनका नाम बड़े सितार वादकों में चमकता। गायन के क्षेत्र में मैं स्वयं देख रही हूँ कि उन्हें उस्ताद की चीजें कंठस्थ है। उस्ताद का 1 रिकार्ड जिसमें राग सोहिनी की बन्दिश “मग में श्याम छुवो न गात” हे जो मुझे भी सिखाई है, उसे सुनने का अवसर मिला। उसे सुनकर उस्ताद की गायकी की कल्पना करना भी मेरे लिये असंभव है। मेरे गुरुजी पं. शिवकुमार जी शास्त्री ने मुझे उसी परम्परा पर पूरी शिक्षा देने का प्रयास किया है। मैं उसमें से कितना ग्रहण कर पाई हूँ स्वयं यह कहना कठिन है। इतना ही कह सकती हूँ से सब संगीत जगत के फरिश्ते हैं जिन्हें भगवान ने उसी काम के लिये भेजा है। ज्ञात रहे मेरे गुरुजी पेशे से बहुत बड़े वैद्य हैं लेकिन संगीत को जीवन का एक आवश्यक अंग मानकर उसे सीखां और उसमें संगीतकार की अपेक्षा अधिक कुशलता प्राप्त करके दिन-रात उसी में तल्लीन रहते हैं।

पं. शिवकुमार शास्त्रीजी के जीवन में संगीत उनकी जीवनी शक्ति है। लेखिका को उदारमन से बनारसी गायकी जो उन्हें अपने पिता पं. रमाशंकर वैद्य एवं गुरु पं. छोटे रादासजी से प्राप्त है निःशुल्क दान देते रहते हैं। लेखिका की झोली छोटी पड़ रही है। पं. शिवकुमार शास्त्री पेशेवर कलाकार न होते हुए भी संगीत में इतने पारंगत हैं मानो स्वयं में एक संस्था हैं। मेरे प्रशिक्षण की विगत वर्षों की अवधि में पं. शिवकुमार शास्त्रीजी की पत्नी ने जिन्हें मैं संस्कारवश भाभी कहती, मुझे स्नेहपूर्ण संरक्षण दिया और उन्हीं के संबल से मेरी तालीम चलती रही है।

पं. शिवकुमार शास्त्रीजी के संगीत गुरु पं. छोटे रामदास की संगीत परम्परा को विस्तार से जानने के लिये उनके एकमात्र जीवित शिष्य सभी प्रामाणिक विवरण प्राप्त करने का मैंने प्रयास किया है।

पं. छोटे रामदासजी की संगीत परम्परा में विलक्षणता और सौम्यता का सुन्दर समन्वय रहा है। पूर्व में उल्लिखित विवरण के अनुसार प्रसिद्ध-मनोहर जी के समय में उनके बराबर कोई भी बड़ा गवैया हिन्दुस्तान में नहीं था।

संगीत नायक पं. छोटे रामदास जी मिश्रा विभिन्न वेष में



उन्होंने पटियाला नरेश के यहाँ सैकड़ों गवैयों का गंडा बाँधा था। प्रसिद्ध-मनोहर जी के समकालीन ननकू रामजी के पुत्र जगदीप जी ने भी प्रसिद्ध-मनोहर जी से तालीम शुरू की थी। जगदीप जी के पूर्वज बनारस के कबीरचौरा के ही मूल निवासी थे। इन्हें राजदरबार से हरसुआ या हरुआँ में माफी के खेत और जमीन मिली थी। जगदीप जी के पूर्व हरिहरपुर, जिला आजमगढ़ के थे ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है। हरिहरपुर में एक परिवार के पूर्वज जयदीप हो गये हैं। संभवतः उन्हीं से लोग भ्रम में पड़ गये हैं।

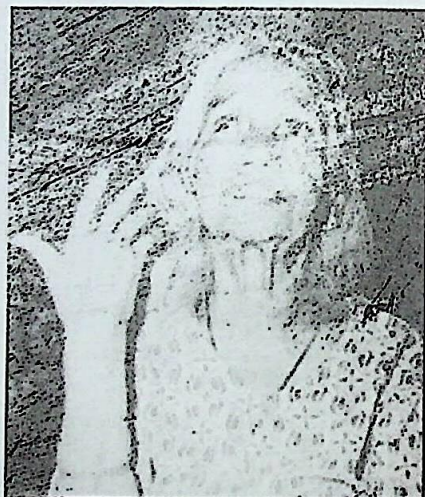
वस्तुतः प्रसिद्ध-मनोहर यही वह अमर व्यक्तित्व है जहाँ से पं. शिवकुमार शास्त्री के पूर्व की संगीत परम्परा सप्रमाण अनुरेखित की जा सकती है। जगदीप जी ने प्रसिद्ध मनोहर के साथ ही शिवसहाय जी से भी संगीत की तालीम ली। जगदीप जी के सुननेकार मौजुद्दीन खाँ हुये। मौजुद्दीन खाँ ने जगदीप जी की गायकी की बन्दिशें केवल बड़ी मोती बाई को सिखायी।

ठाकुर प्रसाद जी के पिता मक्कूजी मूलतः रामनगर और बनारस के निवासी थे। रामनगर में इनका पैतृक निवास तो था ही, उसी के निकट

कटेसर गाँव के पास इनका बगीचा भी था। इन्हें हरिहरपुर, जिला आजमगढ़ में माफी की जमीन राज दरबार से मिली थी। इसीलिये इन्हें हरिहरपुर का मूल निवासी समझने लगे थे। अपने घर की तालीम के साथ-साथ ठाकुर प्रसाद जी ने शिवसहाय जी से संगीत की सभी विधाओं का तालीम ली थी।



मौजुद्दीन खाँ



मौजुद्दीन खाँ की एकमात्र
शिष्या बड़ी मोतीबाई



मौजुद्दीन खाँ (रिकार्ड का लेबल)

236/संगीतमय बनारस

ठाकुर प्रसाद जी के दामाद कन्हैया लाल जी का पैतृक मूलस्थान बनारस ही था। उनका एक आवास ईश्वरगंगी, नईबस्ती में था। ठाकुर प्रसाद जी 10-12 वर्ष की आयु में ही बहुत सुरीले गायक हो गये थे। कन्हैया लाल का विवाह बचपन में ही ठाकुर प्रसाद जी की कन्या से हुआ था। कन्हैया लाल जी बचपन से ही गंगा, विश्वनाथ की सेवा में लीन रहा करते थे। इनके छोटे भाई विश्वनाथ जी पियरी घराने के रामसेवक जी के शिष्य और अपने समय के बेजोड़ तबला वादक थे। इनके तबला बजाने के प्रेम एवं धार्मिक आस्था का प्रमाण यह कविता है—

“मानो विश्वनाथ, विश्वनाथ पै प्रसन्न होय बोलन के बूँद-बूँद हार पहिरायो है।”

पं. हरिशंकर जी भी इनके तबला वादन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। वे साधु प्रवृत्ति के थे। कोई उन्हें कोई संतान नहीं थी।

कन्हैया लाल जी के तीन पुत्र- 1. महादेव जी, 2. छोटे रामदास और 3. गोपालदास। गोपालदास अविवाहित रहे। वे गाना-बजाना-नाचना सभी जानते थे। गाने के साथ वायलिन भी बजाते थे। ये भी युवावस्था में पं. छोटे रामदास जी के साथ कलकत्ते में रहने लगे। बहुत ही संतोषी प्रकृति के थे और संगीत में परम निष्णात्। प्रौढ़ावस्था में वहीं इनका देहांत हो गया। पं. छोटे रामदासजी का जन्म संभवतः 1889 में हुआ और 1962 में मृत्यु। ठाकुर प्रसाद जी ने शताधिक वर्षों की आयु प्राप्त की थी। उनकी शिष्या बाई साहेब हुस्ना-बाई थीं। उन्होंने बाद में पं. छोटे रामदासजी गुरुपूजा करके उनसे भी शिक्षा प्राप्त की थी। पं. छोटे रामदासजी के संगीत की विशेषताएँ, उनकी दिनचर्या का विवरण पूर्व के पृष्ठों में दिया जा चुका है। इनकी शिष्या बाई साहेब हुस्नाबाई अपने समय की बेजोड़ गायिका थी उनका विवरण जानना भी आज के श्रोतृवृंद के लिये आवश्यक है।

हुस्नाबाई

हुस्नाबाई श्रीकृष्ण की परम भक्त थीं। पं. शिवकुमार शास्त्रीजी के प्रपितामह श्री गिरिधारी महाराज जी ने ही हुस्ना बाई को कृष्ण पूजा का पथ-प्रदर्शन किया था। हुस्ना बाई ने अपने समय में ढाई-तीन लाख रुपये

अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../237



बाईसाहेब हुस्नाबाई बनारस की प्रतिष्ठित गायिका

लगाकर वाराणसी कैण्ट रेल्वे स्टेशन के पास श्रीकृष्ण धर्मशाला बनवाया था जिससे बड़ी धर्मशाला आज भी कोई बनारस में नहीं है। वहीं पर बहुत बड़ा कुआँ और राधा-कृष्ण का मंदिर भी बनवाया। धर्मशाला में इनका आदमकद तैलचित्र लगा था। आज वह नहीं है।

हुस्नाबाई गंधर्व कुलोत्पन्न थीं। इसमें मातृप्रधान परम्परा चलती है। गंधर्व, किन्नर, अप्सरा तीनों कुलों की में परम्परा माता के नाम से ही चलती है। उन्होंने बाबू अयोध्या प्रसाद के पति के रूप में मान लिया था जिनसे आजीवन संबंध निभाया। इनकी एक पुत्री तारा उर्फ बाबा थी जो हुस्नाबाई की वृद्धावस्था में अस्मध्य रोग से पीड़ित हो गई थी जिसका चिकित्सा में इन्होंने पानी की तरह पैसा बहाया। उस समय ये मन से टूट गई, बाहर कार्यक्रम देना बंद कर दिया लेकिन संगीतानुराग को नहीं छोड़ा।

अपने समय की बेजोड़ गायिका हुस्नाबाई थी जिन्हें सब “सरकार”

कहकर संबोधित करते थे। जिस समय हुस्नाबाई अकेली ऐसी थी जो जोड़ी तंबूरे पर गाती थी। गाने का अभ्यास के समय इनके साथ ठाकुर प्रसाद के साले शंभू सारंगी संगत करते थे। बाद में इनके साथ महफिलों में सुरसहाय जी सारंगीवादन ओर बलदेव सहाय तबला संगत करते थे। ये ख्याल, टप्पा, ठुमरी, दादरा, ग़ज़ल, आदि गाने की अनेक विधाओं में प्रवीण थीं। नाच का विशेष प्रशिक्षण लखनऊ के महाराज कालिका बिन्दादिन के पिता तथा कालका महाराज से उन्होंने प्राप्त किया था। बाई साहेब गलियों में कभी, कहीं भी पैदल नहीं गईं। हमेशा तामजाम (एक तरह की खुली पालकी) पर ही जाती थी।

इनका रहन-सहन शाही थी। चाँदी बैठकी हुक्का चैन से पीना इनका शौक था। काशी के वृद्धों का कहना है कि बाई साहेब शाम को गुलाबजल से स्नान करती थी तो पूरी गली गुलाबजल से महकती थी। लोगों को यह पता लगता था कि 'सरकार' का स्नान हो गया। परिष्कृत रुचि का ही परिचायक है इनका रहन-सहन इनके दरवाजे पर दरबान बैठा रहता था जिसकी अनुमति के बिना इनके कोठे पर कोई जा नहीं सकती था। पुराने लोग बताते हैं कि हुस्नाबाई 104 वर्ष की होकर दिवंगत हुई। यह कथन तथ्यपरक लगता है क्योंकि भारतेन्दु कालीन महाराज ईश्वरी नारायण, प्रभुनारायण और उदितनारायण तीनों महाराज के काल में यह दरबार की गायिका रही। यह जिस प्रकार अदब, तहजीब, लिहाज के लिये मशहूर थीं उसी प्रकार अपनी विद्वता के लिये भी। काव्य, गीत, उर्दू के शेर लिखती थी। अंग्रेजी का भी ज्ञान था। दीवान-ए-हुस्न नामक उर्दू रचनाओं का संग्रह छपा था, ऐसा सुना है। ये बहुभाषी थीं। जयदेव कृत "गीत गोविन्द" को स्वरबद्ध करके बहुत सुंदर ढंग से गाती थीं।

इनके ऊपर औघड़ बाबा कीनाराम और वल्लभकुल के महाराज श्री दोनों की सदैव कृपा बनी रही। 1901 ई. के पहले ही हुस्नाबाई रिकार्ड एक तरफ बजने वाले तवे पर बन चुका था। उनके बाद ही किटीजन और गौहर का रिकार्ड बना था।

ऐसी परम्परा रही है पियरी घराने की जिसमें पं. छोटे रामदासजी को

अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../239

एक-से-एक धुरंदर संगीतज्ञों ने तालीम दी, उसी प्रकार हुस्नाबाई भी इसी घराने की थीं। इन दोनों कलाकारों ने अपनी परम्परा के विख्यात संगीतज्ञ बनकर समाज के सामने यह उदाहरण प्रस्तुत किया कि बनारस का पियरी घराना बनारस का सर्वोच्च घराना है और स्वयं योग्य, उच्चकोटि के कलाकार बनकर अपनी गुरुदक्षिणा को चुकता किया।

पं. शिवकुमार शास्त्री की पारिवारिक पृष्ठभूमि

बनारस में सुड़िया के वैद्य परिवार की ख्याति देश-देशांतर में पीढ़ी-दर-पीढ़ी बनी हुई है। इस परिवार के वैद्य लोग काशी नरेश के राजवैद्य भी रहे हैं। इस परिवार की वंश परम्परा और शिष्य परम्परा में सम्प्रति शिवकुमार शास्त्री के पूर्व की छः पीढ़ियों के प्रमुखों के नाम अग्रिलिखित हैं



पं. शिव कुमार शास्त्री

: पं. कन्हैया लाल जी, पं. गिरधारी लाल जी, पं. बाबूनन्दन जी, पं. त्र्यंबक शास्त्री जी, पं. रघुनन्दन जी, पं. रामशंकर जी। पं. शिवकुमार शास्त्री के बाद की पीढ़ी अभी भी पारिवारिक उत्तरदायित्व का निर्वाह कर रही है। शिवकुमार शास्त्री के तीनों पुत्र रामकुमार जी, नन्द कुमार जी, समीर कुमार जी, औषधालय में आयुर्वेद की चिकित्सा का कार्य पिछले 18-20 वर्षों से कर रहे हैं। आगे इनके पौत्र चि. उत्पल और चि. ईशान से भी उम्मीद है कि परम्परा का निर्वाह करेंगे।

इनके औषधालय में बिना भेद-भाव के गरीबों को निःशुल्क परामर्श और औषधी देने की परम्परा अभी भी चल रही है। विख्यात संगीतज्ञ वी.जी. जोग साहब की चिकित्सा अन्तिम समय तक आप ही कर रहे थे। 1927 ई. इनके आवास की गली का नाम, “पं. रघुनन्दन वैद्य गली” राजवैद्य पं. रघुनन्दन जी के नाम पर से स्थानीय निकाय द्वारा रक्खा गया है।

कहते हैं कि कन्हैयालाल के पूर्व पुरुषों की 38-40 पीढ़ियों की वंशावली आज से करीब 800 वर्षों पहले तक इस परिवार में सुरक्षित थी जो पारिवारिक बँटवारे के समय किसी ने गायब कर दी। इस परिवार में दो-ढाई सौ वर्ष पहले कभी सोमयज्ञ भी किया गया था। अग्निहोत्र को पूरे विधानपूर्वक धारण करने वाला ही सोमयज्ञ का अधिकारी होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इस परिवार के पूर्वज अग्निहोत्री भी थे।

इस परिवार में अष्टांग आयुर्वेद और रसशास्त्र के साथ- 1. वेदाङ्ग, 2. तंत्र-आगम, 3. षड्दर्शन, 4. साहित्य, 5. व्याकरण, 6. ज्योतिष, 7. कर्मकाण्ड और 8. इतिहास पुराण सभी की परम्परा निरंतर चली आ रही है।

ऐसा मानते हैं कि पूज्य चरण गोसाई जी महाराज श्री विठ्ठलनाथ जी के समय से इस परिवार में भगवान श्रीकृष्ण की बालरूप-सेवा के साथ युगल-विग्रह की भी सेवा, श्री वल्लभकुल पुष्टिमार्ग के अनुसार, चली आ रही है। इसीलिये इस परिवार में जब सोमयज्ञ हुआ था तब प्रत्यक्ष पशुबली नहीं दी गई थी। वैष्णव परम्परा का निर्वाह करने वाले इस परिवार का दैनिक जीवन शुद्ध आहार-विहार का अभी तक अनुसरण कर रहा है।

पिछली कई शताब्दियों से, बनारसी जीवन के सभी पक्षों से यह
अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../241

परिवार जुड़ा रहा है और बनारस की सभी गतिविधियों में इस परिवार का प्रभाव एवं योगदान रहा है। इस ज्वलन्त प्रमाण निम्नलिखित तथ्यों में निहित है—

1. संस्कृति, हिन्दी साहित्य और संगीत इस परिवार में जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं। इस परम्परा में सभी व्यक्ति ख्याति प्राप्त वैद्य के साथ-साथ कुशल संगीतज्ञ और साहित्य, संगीत के संरक्षक भी होते रहे हैं। परिवार परम्परा की निर्वाह करते हुये पं. शिवकुमार शास्त्री वैद्य के रूप में विख्यात हैं जिन्हें लोग “पीयूषवाणी” कहते हैं। गुरुजनों द्वारा प्राप्त सभी विद्याओं, परम्पराओं का निर्वाह करते हुये निधि के रूप में प्राप्त संगीत को भी इन्होंने सुरक्षित रक्खा है। इनकी परम्परा में विद्या बेची नहीं जाती। देश और विदेश में इन्हें बहुसंख्यक लोग विविध विषयों के विद्वान, साहित्य, लेखन, रंगकर्मी और संगीतज्ञ के रूप में सम्मान देते हैं।

2. इनके पूर्वजों में कन्हैया लालजी अवध के नवाबों के लिये दवा बनाते थे जिसके लिये नवाबों की तरफ से मखमल की थैली भरकर अशर्फियाँ आती थीं।

3. परिवार के सभी व्यक्ति अध्ययनशील थे। अतः हस्तलिखित एवं प्रकाशित दुर्लभ पुस्तकों का विशाल संग्रह, प्राचीन सिक्कों का संग्रह इस परिवार में है।

4. इस परिवार के लोग पशु-पक्षी पालन के शौकीन रहे हैं इसका प्रमाण इनका एक मकान सी.के. 16/65 के पूरे मकान में लगभग 10-12 हजार कबूतर पाले थे। आज भी प्रतीक स्वरूप कबूतर देखने को मिलेंगे। एक मकान में गोशाला, अस्तबल में, घोड़ा, गाय, हाथी, कभी पाले जाते थे। इन सबके दाना-पानी का गोदाम, इनके सेवकों के लिये रहने का स्थान, जनानखाने का अलग मकान, औषधालय और बहुत बड़ा बगीचा ये सब प्राचीन धरोहर अब नये वातावरण से प्रभावित होकर परिवर्तित अवश्य हुये हैं लेकिन अभी उतने विशाल रूप में परिवर्तित न होकर कबूतर, गाय कुत्ते तोता, काकातुआ, विभिन्न प्रकार के पक्षी आदि इस परिवार के सदस्य रूप में विद्यमान हैं।

5. परिवार के सभी सदस्यों को शास्त्र कंठस्थ रहा है। पुस्तकें देखने की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती है जिसका सबसे बड़ा प्रमाण आज भी मेरे गुरुजी पं. शिवकुमार शास्त्री हैं जिन्हें हम लघु विश्वकोश कह सकते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं, मिलने वाले सभी का अनुभव यही है।

6. जड़ी-बूटियों से औषधि निर्माण का कार्य घर में होता है। उत्तम नाड़ी परीक्षण द्वारा रोग का सही निदान करके परिवार में गरीबों का निःशुल्क उपचार करते हैं। इस परिवार की एक और विशेषता है कि संगीतज्ञों से कभी शुल्क नहीं लिया जाता है। बनारस के अधिकांश कथक परिवारों का इलाज इनके यहाँ होता रहा है।

7. रहन-सहन, खान-पान, फकीरी वेश-भूषा शुद्ध भोजन, बातचीत में साहित्यिक पुट के साथ बनारसी लिहाड़ापन, सभी सदस्य संगीत के प्रेमी, ऐसी है इस परिवार की पृष्ठभूमि।

पंडित शिवकुमार शास्त्री जी के परिवार द्वारा संगीतज्ञों को प्रोत्साहन

बनारस के सामान्य से लेकर विख्यात और श्रेष्ठतम संगीतज्ञों ने और सभी संगीत घरानों के संगीतज्ञों ने श्रद्धा और भक्ति पूर्वक वैद्यजी के दरबार में यथासमय, यथावश्यकता अपनी कला का प्रदर्शन किया है और नियमित उपस्थिति दर्ज की है। इन सभी को इस परिवार का संरक्षण और प्रोत्साहन मिलता रहा है। बनारस की सभी गणिकाओं ने भी वैद्यजी के दरबार में अपनी कला का समय-समय प्रदर्शन किया है और उनको भी उचित सम्मान मिलता रहा है। सर्वश्री प्रसिद्ध-मनोहर जी से लेकर सुखदेवमहाराज 'शुकरेजी', बड़े रामदासजी, छोटे रामदासजी आदि सभी इस परिवार से जुड़े रहे हैं। हुस्नाबाई से लेकर बड़ी मोती, रसूलन और सिद्धेश्वरी को भी इसी परिवार से प्रोत्साहन मिला और ये लोग ख्यातिलब्ध हो गईं।

बनारस के विख्यात गायक उस्ताद मौजुद्दीन खाँ की पहली महफिल राय लल्लन जी व छक्कन जी के यहाँ और सुड़िया के वैद्यजी के यहाँ ही हुई थी; कारण वैद्यजी के यहाँ मौजुद्दीन खाँ के गुरु पं. जगदीप जी नियमित रूप से बैठते थे।

बनारस का ऐतिहासिक कजली गायक भैरो हेला हर साल वैद्यजी के
अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../243

यहाँ नियम पूर्वक कजली गाता था। भैरो हेला की कजली सुनने के लिये गुरुदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर भी एक-दो बार आये थे। वैद्यजी के परिवार में मांगलिक अवसरों पर बनारस की सर्वश्रेष्ठ संस्कार के गीत-गाने गौनहारिनें; आती थी जिसमें श्रीमती धनवन्ती का नाम उल्लेखनीय है। आज से 80-90 वर्ष पहले का बनारस का सबसे विख्यात “भाँड़” था “अजूबा”। भाँड़ लोग अपने नाम के पहले शायर लिखते थे। अतएव शायर अजूबा भाँड़ और उनके ख्यातिप्राप्त चेला शायर मुकुन्दी भाँड़ को भी वैद्यजी के परिवार की छत्रछाया प्राप्त थी। ये लोग भी वैद्यजी के यहाँ मांगलिक उत्सवों पर अपना तमाशा दिखलाते थे।

बनारस में पानी कल बनने के समय भदौनी के राममन्दिर के संरक्षण के लिये जो क्रान्ति हुई थी, इतिहास में उसे रामहल्ला के नाम से जानते हैं। शास्त्रीजी के पूर्वजों ने रामहल्ला क्रान्ति में भाग लेने के कारण जेल में बन्द होने का श्रेय प्राप्त किया था। यह परिवार बनारस की रामलीला, कृष्णलीला और नृसिंहलीला तीनों लीलाओं का भक्त परिवार रहा है।

इस परिवार में कभी किसी ने नशा नहीं किया, जुआ नहीं खेला। दूसरों को भांग पिलाया लेकिन स्वयं कभी सेवन नहीं किया। लाटरी का टिकट कभी किसी ने नहीं खरीदा। कोठे पर जाकर गाना सुना लेकिन नाच गाने के अलावा कोई संबंध नहीं। परिवार में सभी सदाचारी और सच्चरित्र और निरभिमानी रहे हैं। संगीत का नशा सबको रहा। पं. शिवकुमार शास्त्री के बाबा बाबूनन्दन वैद्य स्वयं गवैया और सितार वादक थे। गुरुजी पं. त्र्यंबक शास्त्री जी प्रकांड विद्वान, सर्व विद्याओं के ज्ञाता, गायक संगीत शास्त्रज्ञ थे। राग के सब श्लोक कंठस्थ थे। इनके यहाँ कलाकार अपने संगीत का प्रदर्शन करने जाते तो क्रिया के साथ शास्त्र की भी अच्छी परीक्षा होती थी।

बनारस के संगीतज्ञ सुरसहाय, दरगाहीजी, मिठाई लाल, बलदेव सहाय, आदि बाबू नन्दनजी, रघुनन्दन जी वैद्य के समय इनके घर में आकर अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। इन्हीं के समय भारतेन्दुजी के भारतेन्दु-मंडल के सभी साहित्यकार इनके दरबार की साहित्य चर्चा में उपस्थित रहते थे।

पं. शिवकुमार शास्त्री के पिता पं. रामशंकर जी वैद्य उच्चकोटि के वैद्य थे जिनके यहाँ बर्मा से लेकर काबुल तक, राजा-महाराजाओं का, अमीर-

गरीब सभी का इलाज होता था। वे बहुत अच्छे गायक, सितार, वायलिन, हार्मोनियम वादन के शौकिया कलाकार थे। बनारस के सभी गायक वादक भक्ति-भाव से इनके घर जाकर अपना गाना-बजाना सुनाकर अपने को धन्य मानते थे तथा इनका आशीर्वाद लेते थे।

पिता रामशंकर जी 1902 ई. में स्थापित जैन नाटक मण्डली के 1923 ई. में सेक्रेटरी, दीन सुकवि मण्डल के संस्थापक रहे थे। जयशंकर प्रसाद, निराला, बेचन शर्मा उग्र, विनोद शंकर व्यास, शान्तिप्रिय द्विवेदी, रत्नाकर जी आदि अनेक बड़े-बड़े स्वनामधन्य साहित्यकार के अंतरंग साहित्य मण्डल में थे। कर्मकाण्डी, विद्वान, ज्योतिषि, भांडू, गौनिहारिन, गवैया, गणिकायें सभी समय-समय पर आपके दरबार में उपस्थित रहते थे। संगीतज्ञों में शुकरेजी, बड़े रामदास, छोटे रामदास आदि अनेक संगीतकार आपके यहाँ उपस्थित रहते थे। लखनऊ के कथक आचार्य, अच्छन महाराज, शंभू महाराज सभी आपके पास आते थे।

बनारस में अनेक संगीत संस्थाओं, नाटक मण्डलियों के संस्थापक, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष रहे। इस परिवार की एक अलौकिक विशेषता ऐसी रही है जिसे परिवार का कोई भी सदस्य, उद्धाटित ही नहीं करता है। संभवतः वह है स्वान्तःसुखाय की ललक, आत्मविज्ञापन से परहेज तथा मीडिया से यथासंभव दूर रहने की प्रवृत्ति। इन प्रवृत्तियों को द्रष्टा या योगी अनुभूत मात्र कर सकता है। इस अप्रतिम विशेषता के फलस्वरूप ही संगीत आदि की परम्पराएँ इस परिवार में मूल रूप से अक्षुण्ण रह सकी हैं। ऐसी निगमागम शास्त्रसंमत परम्परा, विविध विद्या प्रवीण, ललित कला प्रवीण परिवार की जन्मजात पृष्ठभूमि को प्राप्त कर पंडित शिवकुमार जी शास्त्री अपने परिवार को आज सुशोभित कर रहे हैं। उन्होंने अपने परिवार की सभी विशेषताओं को जन्मजात संस्कारों के रूप में प्राप्त किया। अपने परिवार के साथ-ही-साथ अपने नाना पं. मदनमोहन मालवीय जी जिसे पूरा विश्व जानता है, इनके संस्कारों का भी प्रभाव आपके व्यक्तित्व पर दीखता है।

पंडित शिवकुमार शास्त्री जी की संगीत शिक्षा

पूज्य गुरुवर पं. शिवकुमार जी शास्त्री के बारे में लिखने का सामर्थ्य
अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../245

मेरी लेखनी में नहीं है। इनके पूर्वजों को मैंने देखा नहीं केवल इतिहास के रूप में जाना। इनको मैंने गुरु स्वीकार किया अतः जो कुछ भी मैं लिखूँ बहुत कम है। पिछले 16-17 वर्षों में जितना जानने का प्रयत्न कर रही हूँ बड़ा विशाल व्यक्तित्व नज़र आता है। फिर भी थोड़ा सा प्रयास कर रही हूँ उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने का।

आपको पं. मदन मोहन मालवीय जी ने दीक्षा दी थी। प्रकाण्ड पंडित, अनेक विद्याओं के विद्वान, साहित्यकार, संगीतज्ञ शिवकुमार जी 4 वर्ष के थे तभी पट्टी पूजाकर अध्ययन चालू हुआ। मंत्र, श्लोक रटना प्रारम्भ हुआ। 4-5 वर्ष के थे तब नारियल के तुंबे से बने सितार से सितार की शिक्षा प्रारम्भ हुई। संगीत के गायन वादन की अनेक बन्दिशें याद होती चली गईं। माता-पिता के धार्मिक संस्कारों का परिणाम यह हुआ कि गीता, रामायण



पं. शिव कुमार शास्त्री सितार वादक

246/संगीतमय बनारस

कंठस्थ हो गया। शिवकुमार जी को 5 वर्ष की अवस्था में पिताजी ने हार्मोनियम पर गाना सिखाया। 1947-48 ई. में विधिवत पं. छोटे रामदासजी से शिक्षा प्रारम्भ हुई। इनकी जीजी को 1943 ई. से 45 ई. तक उत्साद घर पर आते थे। अतः जीजी को सिखाई सब बन्दिशें कंठस्थ हो गई। अनेक कलाकारों का घर में आवागमन होने के कारण संगीत संबंधी ज्ञान में वृद्धि होती गई। बड़े रामदासजी की बन्दिशें भी सीख ली।

उस्ताद छोटे रामदासजी अधिकतर कलकत्ते में रहते थे लेकिन बनारस आने पर इनको दिन के राग दिन में, रात के रागों को रात में सिखाते थे। 6 वर्ष केवल दो राग ईमन और बिहाग, उसके बाद 4 वर्ष केवल देस सितार पर सिखाया। गायन में सबेरे खाली भैरव की विलंबित की स्थाई तथा शाम को उनके घर जाकर ईमन की विलंबित स्थाई सीखना, ऐसी थी इनके संगीत-शिक्षण की विधि। तबला-संगत के लिये फुल्लर जी आते थे।

शरीर बलवान रहे इस बनारस की परम्परा के पालन के लिये 200 दंड, 200 हाथ जोड़ी रोज फेरना, सुबह शाम संध्या करके ही जल ग्रहण करना इनका नित्यकर्म था। इसके अतिरिक्त क्रिकेट, बैडमिंटन आदि अनेक खेल के खिलाड़ी, काव्यरचनाकार, साहित्यकार नाटक के अभिनेता निर्देशक, हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत पर समान अधिकारी ऐसे हैं मेरे गुरुजी पं. शिवकुमार शास्त्री जिन्होंने पियरी घराने की संगीत परम्परा को सुरक्षित रखकर लेखिका को बनारस घराने की गायकी से अवगत कराया। उन्होंने पं. छोटे रामदास, पं. बड़े रामदास, कन्हैया लालजी की बन्दिशें भी लेखिका को सिखाई हैं।

अपनी भारतीय संगीत पर शास्त्रीजी के अपने विचार

1. जो अंतर में रहेगा वही जंतर में बजेगा।

बुद्धि से गाना-बजाना नहीं हो सकता है। जो अंतःकरण या मन में है वही कण्ठ से या वाद्य से निकलेगा। इसीलिये मन-मिजाज जिसका बना रहता है वहीं गा बजा सकता है।

2. “यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्ड”

अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../247

शरीर को घट या पिण्ड कहते हैं। शास्त्र कहता है कि ब्रह्माण्ड में है वहीं पिण्ड में है इसीलिये साधक यम-नियम, आहार इत्यादि से युक्त आचार-विचार वाला होता है और गुरुपदिष्ट मार्ग का पथिक बना रहता है। तब उसका मन निर्मल होता है और तब वह निर्मल मनवाला। इसके लिये तुलसीदास जी ने अपने रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में कहा है—

3. “निर्मल मन अहीर निजदासा”

और साधते-साधते इसी घट के भीतर मूलशक्ति का जागरण होता है जैसे कामायनी में जयशंकर प्रसाद जी ने कहा है—

वह मूलशक्ति उठ खड़ी हुई अपने आलस का त्याग किये।

तब उस व्यक्ति के पिण्ड या घट में गुरुकृपा, भगवात्कृपा से नाद प्रकट होता है। जब वह नाद प्रकट होता है तब मूल शक्ति का जागरण होता है तभी शरीर और मन के सभी संचित मल जलकर भस्म हो जाते हैं। ऐसे साधक को गुरुकृपा से संगीत मिलता है, तब वह किसके लिये गाता है? “ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति”

—श्रीमद्भगवद्गीता

अपने हृदय के देवता को प्रसन्न करके स्वयं उसी आनन्द में मग्न हो जाता है और उसी आनन्द रस के प्रभाव से ऐसे व्यक्ति का गाना, बजाना, नाचना दूसरे को भी आनंदित करता है।

4. “प्रसादस्तु प्रसन्नता” प्रसन्नता का बोध दूसरों को होता है उतनी देर वे भी “स्वात्मानन्द” का अनुभव करते हैं। उससे उनको जो बोध होता है उसी को शास्त्रों में “रसौ वै सः” कहा है। यह हमारी गुरु परम्परा में संगीत का आधार है। इसीलिये हमारी परम्परा में आनन्दकंद भगवान् श्रीकृष्णचन्द और आनन्दमूर्ति, आनन्दवन विहारी भगवान् शिव की सेवा के बिना जीवन व्यर्थ मानते हैं। उसी सेवा विधान में संगीत भी अनिवार्य है।

5. वैद्यक परम्परा में गात्र वीणा और दण्डवीणा में साम्य होने से उसका बजाना नाड़ी ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनिवार्य है। इसीलिये वैद्यक-परम्परा में भी हमारे यहाँ संगीत महत्वपूर्ण है। इस परम्परा में राग-विराग समान रूप से जीवन में रहता है।

सूरदास जी ने कहा है—

अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल
काम कोध को पहिर चोलना
कण्ठ विषय की माल

इसकी भी पहचान कभी-कभी होती है। इसीलिये हमारे गुरु घराने की परम्परा में संगीत शिक्षा प्राप्त करना सरल नहीं है। घर में रहकर फकीरी करने की हिम्मत हो तो विद्यार्थी टिक पाता है।

7. कबीरदास ने लिखा है—

कबीरा खड़ा बजार में लिये लुकाटी हाथ
जो घर जाँरे आपना चलै हमारे साथ।

8. बाबा कीनाराम ने लिखा है—

कीनाराम फकीरी सहज नहीं
पग धरत दूध याद आवत छड़ी को

ऐसा जीवन जिसको जीना हो उसी के लिये हमारे घर की विद्या सुलभ है। परमवैद्य- नारायण या विष्णु, परमभिषक=शिव इन दोनों के बिना आयुर्वेद की चिकित्सा नहीं, इन्हीं दोनों की कृपा के बिना संगीत भी नहीं प्राप्त होता है।

9. इसी अनुशासन का पालन करते हुये गुरुजनों ने अपना जीवन सार्थक किया। हमारी परम्परा में त्रिभुवन में किसी को वैरी नहीं मानते हैं—
“न मे वैरी कश्चित् त्रिभुवन”

10. योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य च वैद्यकेन।

यो ऽ पा करोत्तं प्रवरं मुनीनाम् पातंजलिंप्रांजलिरानतोऽस्मि॥

वाणी की शुद्धि के बिना स्वर श्रुति का ज्ञान संभव नहीं है।

इस प्रकार पं. शिवकुमार शास्त्रीजी ने अपने पूज्य गुरु पं. छोटे रामदासजी की संगीत परम्परा का बखूबी निर्वाह किया है और उस संगीत परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए लेखिका को इस घराने की शिक्षा प्रदान की है।

अध्याय-5 पं. शिवकुमार शास्त्री के गुरु पं. छोटे रामदास जी...../249

प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका वनमाला पर्वतकर भी संगीतज्ञ-घराने की है। जिनके पितामह “लयभास्कर” लक्ष्मण राव पर्वतकर “खाप्रुमाम” और पिता रामकृष्ण लक्ष्मणराव पर्वतकर गोवा के उच्चकोटि के तबला वादक एवं गायक थे। ऐसे परिवार से संगीत-संस्कार को जन्मजात रूप में ग्रहण करके संगीत की विश्वविद्यालयीन उपाधि प्राप्त कर वे पं. शिवकुमार शास्त्रीजी के पास बनारस घराने की शिक्षा ग्रहण करने में प्रयत्नशील हैं। सफलता गुरु कृपा, नारायण, विश्वेश्वर की कृपा से प्राप्त होगी।



अध्याय-6

क. वैशिक परम्परा

जब से ज्ञात इतिहास है तभी से बनारस में वैशिक परम्परा चली आ रही है। वात्सायन के कामसूत्र के निर्देशों के अनुसार ही प्रायशः यहाँ की यह परम्परा बनी रही है। पिछली शताब्दी में यह परम्परा क्षीण होती छिन्न-भिन्न हो चुकी है।

बनारस में वैशिक परम्परा के अन्तर्गत- 1. गधर्व, 2. किन्नर, 3. अप्सरा, 4. भड्डर (भांट) और 5. रमजने समाज रहे हैं। इन सभी समाजों में मातृवंश चलता है। अन्य वर्णों में पितृप्रधान वंश चलता है। बनारस में शताब्दियों से यह परम्परा चलती आ रही थी कि सुलझे दिमाग के रईसों के घर के नौजवानों को सामाजिक अदब, कायदा और तहजीब सीखने के लिये ख्यातनामा चुनिंदा गणिकाओं के यहाँ भेजा जाता था।

पूर्ववर्ती अध्यायों में यथास्थान बनारस की वैशिक परम्परा की गणिकाओं का उल्लेख हो चुका है। इस अध्याय में विगत दो-ढाई सौ वर्षों की प्रमुख गणिकाओं के उल्लेख-मात्र हैं। पूरा विवरण प्रस्तुत करने के लिये एक स्वतंत्र बृहद् पुस्तक की आवश्यकता पड़ेगी।

चित्रा और इमामबांदी नाम की दो गणिकाओं का 18वीं शताब्दी के

अध्याय-6 (क) वैशिक परम्परा/251

मध्य में बहुत नाम था और ये गाने-बजाने-नाचने में निपुण थीं। इन लोगों ने टप्पा गायकी पियरी घराने से ही प्राप्त की थी। अंग्रेजों के गजेटियर में ऐसा उल्लेख मिलता है कि उस समय की बनारसी गणिकायें बहुत ही प्रवीण हो गई थीं। तत्कालीन बनारस में विख्यात कथक नृत्य करने वाले “प्रसिद्ध” का उल्लेख है। जो पियरी घराने से अलग कोई दूसरे प्रसिद्ध थे।

मोहम्मद शाह रंगीले के समय दालमंडी में 3 तवायफें गुलबदन, गुलशन और गुलबहार ये नाम प्राप्त होते हैं। गणिकाओं में- दुलारी, कज्जन किशोरी, रुक्मिणी, छित्तन, श्यामा, शिवकुंवर, तौखी, उन्नी बुन्दी, हुस्नाबाई, विद्याधरी, बड़ी मोती, अनवरी, मुश्तरी, बड़ी मैना, छोटी मैना, केसर, भौंफटी केसर, शहाजहाँ बानो, माहेलका, माहेजबी नूरजहाँ, टामी, काशीबाई, जूही, पन्ना, बिजली जान, माधवी जान, ताराबाई, कमलेश्वरी, राजेश्वरी, सिद्धेश्वरी, छोटी मोती, अनवरी (दूसरी), माननकी, चंपा, तपेस्वरी, सोहिनी, मोहिनी-सोहनी, सगी बहनें रसूलन, विठ्ठलबाई (छ अंगुली वाली) बिट्टन, रामदुलारी, मलकाजान, मलकाबाई, दुर्गेशनन्दिनी, रमजानी, कमला, राधा, शैलबाला, भारतेन्दुजी की प्रेयसी मल्लिका, चन्द्रावती आदि और भी बहुत से नाम हैं।



विद्याधरी



रसूलन बाई



सिद्धेश्वरीदेवी

इन्होंने अलग-अलग गुरुओं से सीखा और ऐसा गाना, बजाना, नाचना किया कि पूरे भारत में धाक जमाई।

बनारस की गणिकाएँ महफिल में लटके-झटके वाले गाने के लिये प्रसिद्ध थीं। महफिल जमाने के लिये खेमटा, कहरवा, सादरा, लावनी, भजन, चेतावनी, ग़ज़ल, टप्पा कुछ द्रुत लय के ख्याल की बन्दिशें गाती थीं।

जैसे भैरवी में- चला रे परदेसिया नैना लगाके
रसूलन बाई का-

फुलगेंदवा न मारो मैका लगत जोबनवा में (करेजवा) चोट
800 वर्षों के प्रभाव से हिन्दू गणिकायें भी मुसलमान की रखैल हो गई तो इन्हें मुसलमान मान लिया गया ऐसे सामाजिक विद्रूपों की अनेक कथायें मिलती हैं।

गणिकाओं को महफिल जमाने के लिये चलती-फिरती बन्दिशें सीखनी पड़ती थी क्योंकि व्यवसाय करना पड़ता था।

शिवकुंवर, बड़ी मोती, काशीबाई ख्याल गायकी का काम करती थी।

अध्याय-6 (क) वैशिक परम्परा/253

गौहर ने हुस्नाबाई से भैरवी का दादरा “नैया मोरी मझदार, डगमग डोलेरे” सीखा था। जिसकी अदाकारी उससे नहीं हो सकी। पहले वह बनारस में आसभैरव पर रहती थी बाद में कलकत्ते में जाकर बस गई।

गणिकाओं के गाने का घाटो-

एही ठैयां मोतिया हेराय गइली राम कहवां में ढूँढ़।

सास से पूछली ननदिया से पूछली देवरवा से पूछत लजाय गइली राम॥

भैरवी का खेमटा-

गुलनारो में बसे राधा प्यारी

अनवरी नामक बनारस की कोठेवाली जिसका एक रिकार्ड “मार डाला रे मार डाला रे” एक तरफ, “दूसरी तरफ छोटी-मोटी सुईयाँ रे”, केवल दो रिकार्ड जिसको सुनने दूर-दूर से लोग आते थे। ऐसी ही चीजों से वह प्रसिद्ध हो गई।

जानकी बाई मिर्जापुर की थी। बनारस में चौक पास नारियल बाजार में आबाद होकर नाम कमाया। एक बदमाश ने छुरे से बुरी तरह से घायल करके छोड़ दिया। मलहम पट्टी होने पर छप्पन घाव निकले। उसी बदमाश के डर से भागकर इलाहाबाद में बस गई। कालांतर में इलाहाबाद की छप्पन छूरी जानकी बाई नाम से मशहूर हुई। गाना बनारस का गाती थी अब यह कहाँ की मानी जायें?

आज से लगभग 175 वर्ष पहले रेशम कटरा निवासिनी कुलसुम बेगम 100 बरस के ऊपर होकर अल्लाह को प्यारी हो गई थी। जिनके पेशवाज और गहनों की खास बात थी फिरोजे और हीरों से जड़े हुये गहने ही पहनती थी। गाने, बजाने, भाव बताने में उस समय उनका पूरे देश में नाम था। कोठे पर आने के पहले वह बहुत बड़े राजपूत परिवार की वधू थी। षड्यंत्र पूर्वक उनके पति को मारकर अंग्रेजों के एक हिन्दुस्तानी चमचे दरोगा ने उनको कोठे तक पहुँचा दिया। उस समय उनकी अवस्था 18 वर्ष की नहीं हुई थी। बनारस के एक सोमंयाजी पंडितजी को उन पर दया आई।

पं. जी भी यहाँ हनुमान जी की सेवा करते थे और यह कुलसुम बेगम भी मंदिर के बाहर से हनुमानजी का दर्शन करती थी। सोमयाजी पं. जी की कृपा से इन्हें गाने, बजाने, नाचने का उच्च प्रशिक्षण मिल गया और उन्हें धन और यश भी मिला परन्तु उन्हें संतान नहीं हुई, न ही किसी को उन्होंने वैशिक परम्परा में पाला। मूलतः वह फरूखाबाद की निवासिनी थी पर नाम हुआ बनारस में। अब यह कहाँ की थी?

न्यू थियेटर्स के हिन्दी देवदास फिल्म में शरद बाबू के उपन्यास की “चन्द्रमुखी” का अभिनय करने वाली बनारस की ही कलाकार थी। उस फिल्म में उसने बनारस की कजली जैसी गायी है। वह आदर्श गायन है जो जनमानस में समा गया था। कजली-

नहीं आये घनश्याम घेरी आई बदरी।

किदार शर्मा ने जब पहली बार चित्रलेखा उपन्यास पर फिल्म बनाया, उसमें उस्ताद झंडे खाँ ने संगीत दिया था। इस फिल्म के सभी गाने भैरवी में ही थे। फिल्म की नायिका थीं ‘मेहताब’। इस फिल्म में पार्श्व गायन किया था बनारस की रामदुलारी ने, जिसकी गाई बनारसी भैरवी पूरे देश में अत्यन्त लोकप्रिय हो गई।

एक गायिका बनारस से कलकत्ते जाकर अंगूरबाला नाम से प्रसिद्ध हुई। यह भी बहुत मधुर ठुमरी दादरा गाती थी।

1. जद्दन बाई बनारस में चौक में रहती थी। यहाँ से कलकत्ते, फिर वहाँ से बम्बई चली गई। हिन्दू, मुसलमान दोनों जमात की गणिकाओं ने मातृ वंश-परम्परा का निर्वाह किया जिसका एक उदाहरण जद्दन बाई की लड़की नर्गिस और लड़का अनवर हुसैन हैं। जबकि पिता बनारस के खन्ना जी थे।

इन्हीं सब गणिकाओं ने बनारस की संगीत परम्परा का नाम पूरे देश में फैलाया।

विगत 150-60 वर्षों में जिन गणिकाओं ने हल्की-फुल्की बंदिशों से अलग हटकर अपनी गायकी और कथक शैली के भाव प्रदर्शन से ख्याति

प्राप्त की उनमें प्रमुख नाम उल्लिखित हैं- शिवकुंवरबाई, बड़ी मैना, विद्याधरी, चन्द्रावती, काशीबाई आदि।

“हुस्नाबाई” इस परम्परा में अपना अलग एक व्यक्तित्व स्थापित करने वाली कलानिपुण गायिका हो गई हैं। इन्हें नाच और गाने दोनों पर समान अधिकार प्राप्त था। इनके बाद उस्ताद मौजुद्दीन खाँ की एक मात्र शिष्या बड़ी मोतीबाई ने भी अपनी गायकी श्रेष्ठतम कायम रखी।

सन् 1945 ईस्वी तक बनारस की रसूलनबाई और सिद्धेश्वरी देवी ने बनारस की गायकी को पूरे देश में लोकप्रिय बनाया और यश प्राप्त किया।

ई. सन् 1945 के बाद से वैशिक परम्परा धीरे-धीरे लुप्त होती गई।



ख. संगीत की बनारसी महफिल

भारतीय जीवन के सोलह संस्कारों में मंगल संस्कारों के अवसरों पर धार्मिक विधि-विधान में भी संगीत अनिवार्य माना गया है। बनारस के विशाल क्षेत्र में किसी भी मंगल कार्य को आरम्भ करने के लिये पाँच सुहागिन एक साथ बैठकर ढोल धरने की पूजा विधि-विधान पूर्वक करके, ढोल, मजीरा बजाकर मंगल गीत गाती हैं उसी के बाद धार्मिक अनुष्ठान आरम्भ होते हैं।

शुभ कार्यों में वारवधू का आगमन मंगल दायक माना जाता रहा है इसी का परिणाम विगत कई शताब्दियों से “महफिल” के नाम से मंगल कृत्यों से जुड़ा है। इसी प्रकार अति प्राचीन काल से चली आ रही स्वांग और तमाशे की परम्परा को सम्पादित करने वाली “भांड” इन महफिलों में नृत्य, गायन, वादन के पहले तमाशे का प्रदर्शन करते थे।

बनारस के पुराने मकान वास्तुशास्त्र सम्मत विधि से ही बनते थे। उसी के आँगन में रंगमंडप बनाकर भांड और संगीत का आयोजन महफिल में होता था। जिसके पास विस्तृत स्थान होता था और अतिथियों की संख्या अधिक होती थी उसे अस्थाई रंगमंडप बनवाना पड़ता था। यह अस्थाई रंगमंडप भी वास्तुशास्त्र के विधान के अनुसार ही बनाया जाता था। कालांतर में महफिल सजाने वाले वास्तुशास्त्र अनभिज्ञ हो चुके थे परन्तु अपने पूर्वजों

का अनुकरण करते रहते थे। फलतः शास्त्र से अनभिज्ञ होने पर भी रंगमंडप शास्त्रीय विधि विधान के ही अनुसार बनता था। रंग-बिरंगे झाड़फानूस आदि महफिल की सजावट में लोग अपने वैभव का सुरुचि पूर्ण ढंग से प्रदर्शन करते थे। बनारस में महफिलों को सजाने वाले आखिरी लोकप्रिय, सुप्रसिद्ध और शौकीन व्यक्ति हो गये हैं बाबू गोबरधन दास। 4-6 जगहों से महफिल सजाने का सामान इकट्ठा करके महफिल सजाकर, उसमें भांड, तम्बूशा, नाचना, गाना सभी होता रहे, इनके ऐसे लोगों का यही शौक था। ऐसे कुछ लोग और भी थे।

सम्पन्न लोगों के यहाँ तीन-तीन रात की महफिलें और भैरवी की महफिल भी आवश्यक थी। भैरवी की महफिल का तात्पर्य दिन में होने वाली महफिल है। इन महफिलों में उठने, बैठने और कार्यक्रमों का एक निश्चित शिष्टाचार बना था। दूल्हे के बैठने के लिये मखमली गलीचा और मसनद, उसके ऊपर मखमली शाहनशी, उसके आगे केवल चाँदी के या सोने-चाँदी की गंगा-जुमना, पानदान, अतरदान, गुलाबपाश और गुलदान सजाये जाते थे।

विवाह की महफिल में दूल्हे के ठीक सामने कार्यक्रमों का आयोजन होता था। जिन मेहमानों की सबसे ज्यादा इज्जत होती थी उन्हें दूल्हे के ठीक बगल में बैठाया जाता था। सभी लोग धोती, कुर्ता, टोपी, दुपट्टा या चूड़ीदार पैजामा शेरवानी, टोपी या साफा बाँधे कंधे पर बढ़िया से बढ़िया दुशाला ओढ़े महफिल के चारों तरफ दालान में बैठते थे। दूल्हे की चौकी के ठीक नीचे बाल मण्डली जमी रहती थी।

कुछ वैष्णव परिवार ऐसे थे जहाँ पर पुष्टिमार्ग के महाराज की पधरई भी होती थी। इस आयोजन ने महाराजश्री के साथ वैष्णव मण्डली का भी सम्मान किया जाता था। दूल्हे की जगह पर महाराजश्री बैठते और उनके बगल दूल्हा। इन महफिलों में भी गाने, बजाने, नाचने का भव्य आयोजन होता था।

बनारस में नगर में गिनती के परिवार ऐसे रहे हैं जहाँ पुष्टिमार्ग गोपाल मंदिर के महाराजश्री और काशीराज दोनों आते थे। जिसमें एक घर सूड़िया

के वैद्यजी का और दूसरा घर भारतेन्दुजी का उल्लेख्य है। कुछ दूसरे प्रतिष्ठित परिवारों की महफिल में जैसे हिन्दी, ब्रजभाषा के अंतिम महाकवि बाबू जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' राजा राजेन्द्रनाथ मिश्र, कलकत्ते वाली कोठी के बाबू गोपालदास के यहाँ भी संगीत की महफिलें होती थीं जिसमें मंदिर के महाराजश्री पधारते थे।

राय लल्लनजी और छक्कनजी के पूरे परिवार में संगीत को कई पीढ़ियों तक संरक्षण दिया है। इनके यहाँ की महफिले यादगार महफिलें थी।

गुलाबबाड़ी

बनारस की गुलाबबाड़ी जो चैत्र मास में चैती गुलाब की पंखुड़ियों से सुसज्जित, चैती गुलाब पुष्पों की भीगी सुगन्धि से सुवासित गुलाबी वातावरण, गुलाब प्रकाश, श्वेत परिधान, गुलाबजल, गुलाबइत्र, से सराबोर वातावरण में आयोजित महफिल काशी या बनारस की विशिष्ट महफिल है जो काशी के रसासिक्त और उदारमना रईस और कलाकारों की परिकल्पना है जो अन्यत्र कहीं देखने नहीं मिलती। इस महफिल में बनारस के नामी कलाकारों के साथ गणिकायें भी अपनी कला का प्रदर्शन करती रहीं। इसमें पहले ख्याल गाने के पश्चात् चैती के प्रकार गाने की परम्परा और उसके बाद दूसरे दिन प्रातः यह भैरवी गाकर समाप्त होती थी।

जब बिजली नहीं थी तब गाने, बजाने, नाचने वालों के दोनों तरफ कम से कम दो "मशालची" मशाल जलाकर भव्य प्रकाश देते रहते थे। महफिल में लगे शीशों से वह प्रकाश और बढ़ जाता था। नर्तकी के साथ उसके संगतकार आगे-पीछे होते ही रहते थे, मशालची भी उनके आगे और पीछे आवश्यकतानुसार करते रहते थे।

इसी तरह गाने, बजाने वालों के साथ दोनों तरफ मशालची खड़े रहते थे। महफिल में उठने बैठने की, पान और अतर दिखलाने की और एक बन्दिश खतम होने के बाद अंतराल में भोजन करने वाले उठ के चले जाये और दूसरे आगत बैठते जाये इसकी परम्परा थी। इन सभी कार्यों के लिए एक निश्चित तहजीब थी। विशिष्ट और साधारण व्यक्ति इनके बैठने के स्थान निश्चित थे। आज के सामाजिक वातावरण में पुरानी तहजीब नहीं रही।

अध्याय-6 (ख) संगीत की बनारसी महफिल/259

उदाहरणार्थ बारात निकलती है और घोड़ी पर दूल्हा सूट, बूट, टाई, पहनकर बैठता है। बनारसी महफिलों में सम्मिलित होने वाले सभी व्यक्ति समायोचित वेशभूषा में ही उपस्थित रहते थे।

आज बनारस में गाने, बजाने, नाचने की जो शैली है वह बनारसी महफिलों की शैली से पूर्णतः अलग हो चुकी है।



ग. बनारस के संगीत से जुड़े मेले

क. मंदिरों में जन्मोत्सव- बनारस के सभी मन्दिरों में और घर-गृहस्थ परिवारों में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी और रामनवमी आदि का उत्सव 1 दिन से दिन 6 तक का आयोजित होता था, जो भगवान की छट्टी करके ही सम्पन्न होता था। बनारस में उत्सव या त्योहार का अर्थ गंगास्नान, देवदर्शन, पूजापाठ, मिष्ठान्न, भोजन और गायन, वादन, नृत्य।

इन आयोजनों में भगवान के सजे हुये विग्रह के सामने यथाशक्ति महफिल सजाकर कथा, गाने-बजाने-नाचने का आयोजन नगरव्यापी थी।

इन आयोजनों में वारवधुओं के अतिरिक्त नामी संगीतज्ञों का भी कार्यक्रम होता रहता था। कहीं-कहीं केवल हरि कीर्तन होता था। जन्मोत्सवों के इन आयोजनों में जन्म अवसरों पर गाई जाने वाली लोकशैली की सोहर भी गाई जाती थी और क्लासिकल शैली की बधाई भी।

आगत सभी दर्शनार्थियों को भगवान का प्रसाद देकर ही बिदा करने की विधि थी।

ख. कजली और झूला- बनारस में सावन भादों में दुर्गाजी का मेला, सारनाथ का मेला और शंखतीर्थ (शंखुधारा) का मेला कजली गायन के विशेष अवसर थे। स्त्रियों के अनेक झुंड इस मेले में कजली गाते जाते थे और दर्शन करके मेले का मजा लेते चले आते थे। शंखुधारा के इस

महोत्सव से प्रेरित होकर हिन्दी “महाकवि पद्माकरने” कुछ कवित्त भी लिखे हैं। श्रावण शुक्ल पक्ष को संस्कृत में हिंडोल कहते हैं। बनारस के सभी मंदिरों में भगवान को पालना या झूला में झूलाने की परम्परा के साथ श्रावण शुक्ल पक्ष के सभी दिनों में विशेष श्रृंगार झांकी के सामने हिंडोला, पालना और झूला गाने की परम्परा रही है।

श्रीवल्लभकुल पुष्टि मार्ग के बनारस के मन्दिर में अभी भी यह परम्परा पूरे वैभव के साथ चल रही है। ऐसे ही गृहस्थ परिवारों में भी झूला का श्रृंगार करते हैं। इस आयोजन में कहीं लोकगीत की शैली में झूला के पदों का गायन होता है और कहीं बनारसी क्लासिकल शैली में।

भगवती का एक स्वरूप ‘कज्जली’ नाम से है जिसका अर्थ है जो जीवन के सभी कल्मषों को दूर करके वाली। भादों की तीज को जिस तिथि पर भगवती के इस स्वरूप की पूजा होती है बनारस में उसका नाम ही कजली तीज है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का नाम ही कजली पड़ गया है। बनारस में और अन्य स्थानों पर भी दूर-दूर तक कज्जली तीज की पूजा विधि-विधान पूर्वक करने से पहले ही जवारा बो देते हैं। कजली तीज को उसी जवारे को मंगल फल की कामना से एक-दूसरे के कान पर खोसते हैं और कजली खेलते हैं।

कभी बनारस में आज से 40-50 वर्ष पूर्व तक कजली तीज की रात्रि जागरण (रतजगा) 3 दिनों तक अलग-अलग स्थानों पर होता था जिसमें कजरी और झूमरी गाकर नाचने की भी प्रथा थी। स्थानीय लोकसंगीत की इस विधा की अंतिम विशेषज्ञ मीरघाट, बनारस निवासी “मन्त्रो” थी। अभी भी थोड़ा बहुत कजली गाने का आयोजन होता है। वर्तमान में बनारस की लोकशैली के गीतों को गाने वाली एक विशेष घरेलू महिला है “श्रीमती माया” इन्होंने स्वयं ढोलक बजाकर गाते हुये पुरानी धुनों को अभी भी जीवन्त रक्खा है।

ग. होली-चैती और खमसा- होली जलने के बाद रंग खेलने वाले दिन की शाम को हजारों व्यक्ति चतुषष्ठी योगिनियों कादर्शन करने चौसठ्ठी घाट स्थित मन्दिर जाते हैं। कभी बनारस में 8-10 मुहल्लों के बीच एक पूरा

झुंड महिनो पहले से शहनाई के साथ होली, चैती, खमसा गाने का अभ्यास करते थे।

रंग खेलने वाले दिन को बनारस में धुरड्डी कहते हैं। इसी दिन शाम को झकाझक सफेद धोती-कुर्ता और दुपलिया टोपी से सुसज्जित अलग-अलग झुंड शहनाई वादकों के पीछे होली गाते हुये मंदिर तक जाते थे। दर्शन करके लौटते समय चैती का प्रकार “घाटो” गाते चले आते थे। रास्ते में गले मिलते, एक-दूसरे के मुँह पर अबीर पोतते, तगड़ी भांग की लहरों पर झूमते ये गैर पेशेवर बनारसी ऐसे होली-चैती गाते थे कि सुनने वाले मस्त हो जाते थे। ऐसे ही कुछ झुंड खमसा गाते हुये निकलते थे जो अब बनारस से लुप्त हो गया है।

घ. भादों की छठ का बाबा कीनाराम के यहाँ का मेला- बनारस में औघड़ संत बाबा कीनाराम की जहाँ समाधि है और क्रीकुंड है उस पूरे परिसर को बाबा कीनाराम का स्थल कहते हैं। भादों में बाबा के यहाँ वार्षिक उत्सव में छठ से सप्तमी-अष्टमी तक तीन दिन संगीत का अखण्ड आयोजन होता है। इस आयोजन में सभी संगीतज्ञ स्वयं उपस्थित होकर अपनी-अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। औघड़ बाबा कीनाराम की परम्परा में संगीत का क्या स्थान था इसका प्रमाण उनका संलग्न चित्र और उन्हीं की रचना की छाया प्रति परिशिष्ट में है।

3 दिन के इस अखण्ड संगीत मेले में सभी संगीतज्ञ अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन करते हैं। ऐसी जनश्रुति है कि सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले गद्दी पर जो बाबा विराजमान थे उन्होंने किसी गणिका की संगत करने के लिये बनारस के विद्वान सारंगी व तबला वादक को कहा। उन लोगों ने बाबा के आदेश के उत्तर में कहा कि वे लोग गणिकाओं के साथ वाद्य-वादन नहीं करते। बाबा ने हँसते हुये उत्तर दिया- “जल्दी ही ऐसा दिन आवेगा कि आप सभी इन्हीं के पीछे खड़े होकर बजावेंगे और तभी रोजी-रोटी चलेगी।” इतिहास साक्षी है कि ऐसा ही हुआ। अभी भी यह मेला तो होता है परन्तु केवल भजन-कीर्तन का ही आयोजन होता है।

ड. शिवरात्रि- शिव की नगरी का सबसे प्रमुख दिन। इस दिन पूरी

अध्याय-6 (ग) बनारस के संगीत से जुड़े मेले /263

नगरी शिवमय होती है। पूरे नगर में शिवजी के दर्शन के साथ रात्रि-जागरण करने के लिये जगह-जगह पर गाने-बजाने-नाचने के कार्यक्रम होते हैं। कुछ मन्दिरों में ग्रामीण वर्ग, ढोलक के साथ बाबा विश्वनाथ के गीतों को गाने में मग्न रहता है। कुछ जगहों पर शास्त्रीय संगीत की महफिलों का आयोजन पूरी रात के लिए होता रहा है जिसका रूप आज भी देखने को मिलता है।

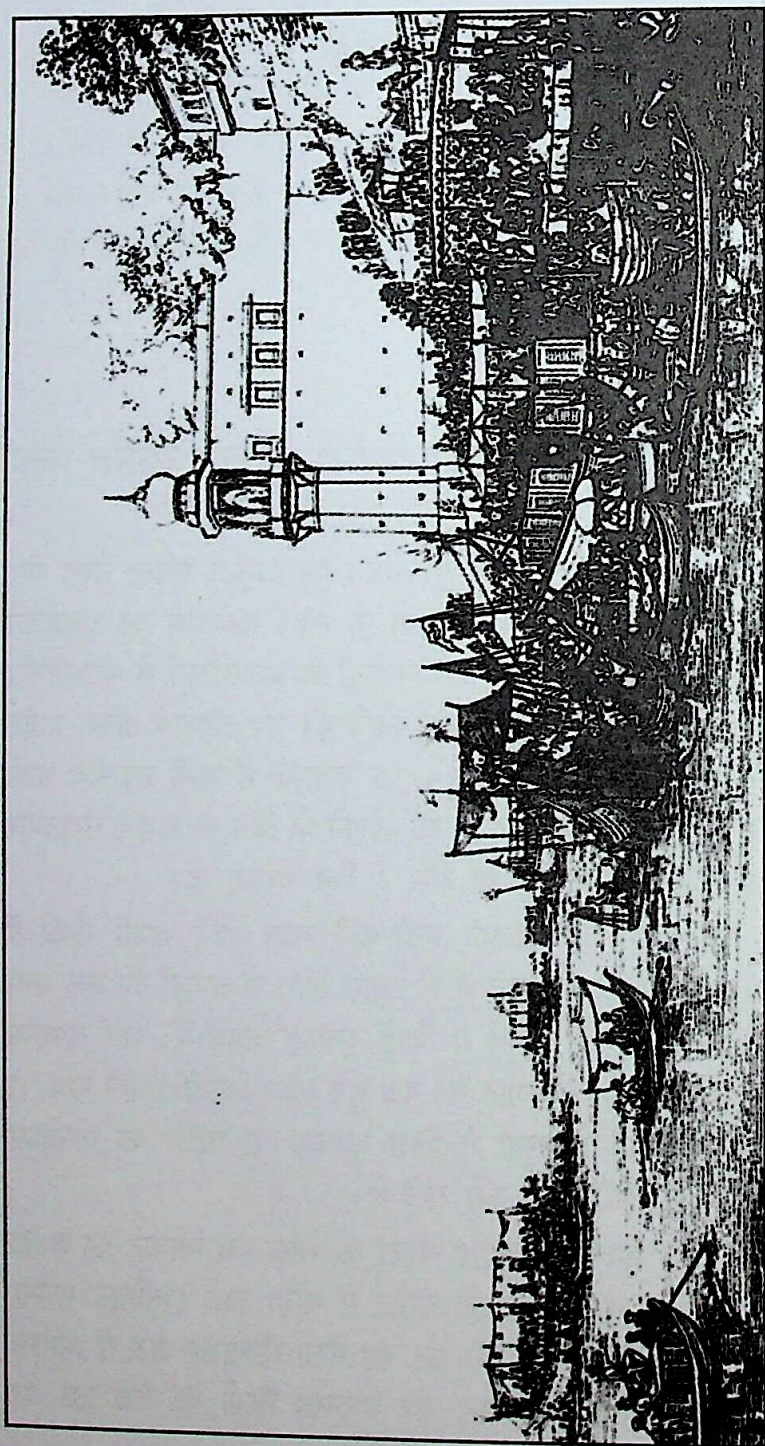


घ. बुढ़वा मंगल-बनारस का बेजोड़, अनूठा संगीत मेला

बुढ़वा मंगल का मेला कभी पूरे भारत का अनूठा संगीत मेला था। होलिका दहन के साथ, प्राचीन काल से ही मदन महोत्सव का आयोजन धार्मिक अनुष्ठान से जुड़ा रहा है। प्राचीन ग्रंथों के अवलोकन से मंगलोत्सव और छत्रमंगलोत्सव नाम भी प्रकाश में आये हैं। यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि इन्हीं उत्सवों का नाम 14-15 शताब्दी में कभी स्थानीय भाषा में बुढ़वा मंगल हो गया। बनारस में रंग खेलने के दिन से अगले मंगलवार को ही यह मेला आरम्भ होता था और 3 दिन चलता था।

गंगा की लहरों पर खेलती बड़ी-बड़ी माल ढोने वाली नौकाओं (पटैले) पर महफिल सजाने वाले भी थे। कुछ लोग दो बजड़ों को एक साथ बाँधकर उस पर महफिल सजाते थे जिन्हें दुक्कड़ कहते थे। जन सामान्य एक बजड़े पर ही महफिल सजाते थे। बचे हुये लोग अपनी-अपनी नाव पर ही तत्कालीन बनारसी वेशभूषा में जिस दुक्कड़ या पटैले का कार्यक्रम पसन्द हो उसी के चारों तरफ जमे रहते थे।

बताते हैं कि पहली रात बुढ़वा मंगल का मेला पंचगंगाघाट पर जमता था। दूसरी रात दशाश्वमेध घाट के बगल में घोड़ा घाट (वर्तमान राजेन्द्र प्रसाद घाट) पर जमता था। तीसरी रात यह मेला शिवाला घाट से आरम्भ होकर, भोर होते-होते गंगा के उस पार रामनगर किले के नीचे घाट पर



बनारस का बुढ़वा मंगल बाहा दृश्य
जेम्स प्रिंसेस की पुस्तक से (1820-1804 ई.)

जाकर जम जाता था।

इस मेले में पहली रात काशी नरेश अपनी “मोरपंखी” नामक विशाल नौका पर आते थे। इस नाव में आगे मोर का सिर और पीछे मोर का पंख बना था। बीच में विशाल स्थान में महाराज बनारस की महफिल सजती थी। दूसरी, तीसरी रात महाराज बनारस जिस नौका पर आते थे उस विशाल नौका का नाम था “घुड़दौड़”। इसके अगले भाग में दौड़ते सफेद घोड़े बने थे। महाराज बनारस की महफिल इसी घुड़दौड़ पर सजी रहती थी।

महाराज बनारस की मोरपंखी पर पहली रात इस मेले का गाना शुरू करती थी शिवकुंवर बाई। जब तक विद्याधरी बाई की महाराज के दरबार में ड्योढी नहीं बंद हुई थी। तब तक दूसरी रात महाराज बनारस की नौका पर यही गाती थी। आखिरी तीसरी रात को महाराज बनारस की घुड़दौड़ पर महफिल शुरू करते थे संगीत नायक छोटे रामदास और बाई साहेब हुस्नाबाई जब गाना शुरू करती थी तो मेले की दूसरी महफिले शांत हो जाती थी। बाईसाहेब का गाना रामनगर किले के नीचे जाकर भोर में सम्पन्न होता था। ख्याल गायन के बाद चैती और चैतागौरी और अन्त में बाईसाहेब भैरवी का दादरा गाती थी जिसके बोल हैं—

बोले बोले चिरैया बृजवासी

और इसी भैरवी के साथ बुढ़वा मंगल मेला भी सम्पन्न हो जाता था। गोपाल मंदिर के तत्कालीन महाराज श्री, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और सुड़िया के वैद्य जी की भी महफिल दुक्कड़ पर ही सजती थी। यह तीनों दुक्कड़ महाराज बनारस की नौका के बगल में ही रहते थे और दूसरी तरफ तत्कालीन दूसरे रईसों के महफिली दुक्कड़ इत्यादि रहते थे। इस मेले में भाग लेने के लिये पूरे भारत में गाने, बजाने, नाचने वाले तो आते ही थे, कौवाला और भांड भी आते थे। किसी महफिल में चूड़ीदार पायजामा, कुर्ते पर जरी के काम की छोटी सदरी (वास्कट) पहनकर सिर पर कामदार दुपल्ली टोपली के नीचे बड़ी जुल्फी से बहता रहे तेल ऐसे “लवंडे” पैरों में घुंघरू बाँधकर नाचते गाते थे। जिसका एक अत्यन्त लोकप्रिय बोल है—

तेलियानारा बहे पनारा, राजघाट की काई रे!

अध्याय-6 (घ) बुढ़वा मंगल-बनारस का बेजोड़/267

सात हाँथ का बिच्छू मारा मेरा नाम सिपाही रहे।

चली चल रामनगर चौक! चली चल रामनगर चौकस!! चली चल रामनगर चौकस!!!

नाच की लय और ताल पर तिहाई मारकर जब सम आता था तो लोग इनाम फेंकते थे और वाह! वाह! कहकर तारीफ करते थे। किसी दुक्कड़ पर अनेक नावों का बोझ बढ़ जाता था। उस बोझ को कम करने के लिये, दूसरी नाव लगाने वाले “काट दे लहासी”, आवाज लगाते थे और गंडासे रस्सा काट दिया जाता था। इसी महफिल में भांडू का तमाशा चलता था। कहीं जोड़ी सारंगी पर कोठेवालियों का नाच-गाना होता रहता।

इस मेले में नाव पर हलवाई की अनेक दुकानें सजी रहती थी जिस पर लोग अपनी पसन्द की चीजें खरीदते और खाते रहते थे। नाव पर ही पान की दुकानें और भांग-बूटी आदि का भी प्रबन्ध रहता था।

पुराने लोग बतलाते हैं कि इस मेले में नौकाओं की इतनी संख्या होती थी कि गंगा पार आने जाने के लिए नाव पर पैर रखकर पार कर लेते थे।

बनारस में रहने वालों के हृदय में जो उल्लास था, उसकी पूरी अभिव्यक्ति बुढ़वा-मंगल का संगीत मेला था। इस मेले में नाचने-गाने-बजाने वालों की इतनी बड़ी संख्या एकत्रित होती थी, और ऐसे धुरंधर गुणी जनों का समूह रहता था कि इस अवसर पर अपना अलग रंग जमाना भी अत्यन्त स्पर्धात्मक कार्य रहता था। इसी के साथ दूर-दूर से आये रसिकों को और स्थानीय कनरसियों को लुभाना भी कठिन कार्य था। इस अग्नि परीक्षा में बनारस की जिन गणिकाओं और गुणीजनों ने अपनी छाप छोड़ी और ख्याति अर्जित की उनका नाम भारतीय संगीत के इतिहास में अपना विशेष स्थान बना चुका है।

इस मेले के आयोजन की एक विशेषता और रही है- इस मेले के लिये कोई आयोजन समिति नहीं थी और इसके लिये कोई शासकीय आदेश भी नहीं था। बनारस के आबादी की स्वतःस्फूर्त परिणति बुढ़वा-मंगल का मेला था।

सन् 1928-29 के आस-पास इस मेले में कुछ ऐसी अवांछित
268/संगीतमय बनारस

दुर्घटनाएँ घटित हुई जिससे बनारस के धनाढ्य वर्ग और महाराज बनारस ने मुनादी करवा दिया कि अब यह लोग इस मेले में सम्मिलित नहीं होंगे। फलतः यह मेला हमेशा के लिये समाप्त हो गया।

इस मेले में गायकी में पहले दिन होली और दूसरे-तीसरे दिन चैती, घाटों और चैतागौरी का ही बोलबाला रहता है।

शिवकुमार शास्त्री ने ई.1981 में उदाहरण के लिये एक मेला शिवाला घाट पर आयोजित किया था उस अवसर पर बनारस की पुरानी गायकी को फिर से परिश्रम पूर्वक तैयार करके इस मेले में तैयार किया गया था, साथ ही सभी बजड़ों की सजावट उसी पुरानी शैली में की थी। इस अवसर पर रसिक और मर्मज्ञ इलाहाबाद निवासी चौधरी नौनिहाल सिंह, तत्कालीन उत्तर-प्रदेश के शिक्षा मंत्री आदि से अंत तक उपस्थित रहे।

पिछले कुछ दशकों से बनारस में जो सरकारी बुढ़वा मंगल के नाम से आयोजन हो रहा है उसमें न तो बनारस की संगीत परम्परा के लिये स्थान है, न ही व सजावट है और उस तरह के श्रोता भी आज नहीं है।



ड. बनारस की लीलाओं में संगीत

बनारस की लीलाओं में यथास्थान और यथावश्यकता संगीत जुड़ा रहा है। लीला के पाठ के दोहे, चौपाई और सोरठे आदि के साथ ताल के लिये पखावज ही बजती थी। बनारस के पंडित छत्रुदत्त व्यास ने पखावज, तबला, सारंगी, हार्मोनियम के साथ ही कथा कहने की शैली अपनाई थी। इसी शैली में रामनगर में बनारस के रामसेवक मिश्र भी कथा सुनाते थे।

कथा के प्रसंगों के बीच अलग-अलग राग-रागिनियों में प्रासंगिक पद और भजन को सुरीले लयदार ढंग से प्रस्तुत करने के लिये लोग पूर्ण सक्षम थे।

नृत्य संबंधी उदाहरण के लिये रामलीला की फुलवारी लीला का उल्लेख आवश्यक है। जनक वाटिका में स्थित देवी मंदिर में पूजा करने के लिये श्री जानकी जी अपनी सहेलियों के साथ आती हैं। पूजन संपन्न होने के बाद स्तुति गान होता है और साथ में उनकी सहेलियाँ नृत्य करती हैं।

लीला के इस नृत्य को प्रस्तुत करने वाले बनारस के ख्याति प्राप्त अनेक संगीतज्ञ थे जो महिला वेश में पूरी रागदारी और लयदारी के साथ ऐसा नृत्य करते थे कि जनसाधारण भी मुग्ध हो जाता था। ऐसा ही अन्य लीलाओं में भी होता रहता था।

पद- “जय जय जय गिरिराज किशोरी जय महेश मुख चन्द्र
चकोरी।”

(रामचरितमानस)

श्री जानकीजी गाने का पद उसे उनकी सहेलियाँ समवेत-गान करती थी। गमन की लीला में श्री जानकी जी के कोमल चरणों में नंगे पैर चलते जो काँटें चुभ गये उनसे खून बहने लगा और जानकी जी ने बेहाल होकर लछमनजी से कहा- और व्यासजी ने गाना शुरू किया—

लछमन धीरे चलो मैं हारी

इसी प्रकार सभी लीलाओं में बनारस के रागाश्रित संगीत का प्रयोग होता रहा।



च. बनारस के रंगमंच का संगीत

इतिहास में ऐसा उल्लेख मिलता है कि 9वीं, 10वीं शताब्दी में भी बनारस में नाटक मंच पर प्रस्तुत होते थे। कृष्ण मित्र रचित प्रबोध चन्द्रोदय नाटक संस्कृत में बनारस में ही सबसे पहले हुआ था। अवश्य ही उसमें नाट्याशास्त्रनुसार 'कुतुप' में संगीत यथास्थान रहे होंगे। शताब्दियों तक यह परम्परा विच्छिन्न सी रही।

पिछले 100-200 वर्षों में बनारस में हिन्दी, बंगला और संस्कृत नाटकों को आधुनिक रंगमंच पर प्रस्तुत करने का इतिहास मिलता है। ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि आज से 80-90 वर्ष पूर्व "अभिज्ञानशाकुंतलम्" का राजा लक्ष्मण सिंह कृत हिन्दी अनुवाद मंच पर प्रस्तुत हुआ था। प्रसिद्ध फिल्म अभिनेता कन्हैया लाल के पिता बनारस में प्रह्लाद घाट पर रहते थे। इन चतुर्वेदी महाशय ने अपनी एक नाटक मंडली बनाई थी। इनकी नाटक मंडली बहुत दूर-दूर तक जाकर नाटकों को प्रस्तुत करती थी। इनकी नाटक मण्डली में संगीत निर्देशक थे पंडित छोटे रामदास। हार्मोनियम वादक थे रामसेवक मिश्र और प्रमुख गायक थे बड़े रामदास। बनारस की सभी प्राचीन नाटक मण्डलियों का नाटक मंगलाचरण के गायन से शुरू होता था जिसमें मंगलाचरण के रूप में गाये जाने वाले पद क्लासिकल शैली में अधिकतर चौताल में गाये जाते थे। एक पुरानी नाटक मण्डली का मंगलाचरण था—

गाइये गणपति जगवन्दन, शंकर सुवन भवानी नन्दन

नाटकों के बीच में भी होने वाले गाने मनोहर राग-रागिनियों के साथ अलग-अलग तालों में रहते थे।

नाटकों के बीच नृत्य के दृश्य में अधिकतर खेमटा गाते हुये नाचते थे।

1951 ई. में पं. शिवकुमार शास्त्री जी ने अपने नाट्य समूह के नाटकों को आरम्भ मंगलाचरण करने के बाद हिन्दी की वन्दना से करना आरम्भ किया था जिसकी धुन भी शास्त्रीजी ने स्वयं बनाई थी।

हिन्दी वन्दना की रचना “राष्ट्रकवि” पं. माधव शुक्ल जी की है जिसके बोल हैं- “हिन्दी हिन्द देश की बानी”

बनारस में होने वाले बंगला नाटकों में क्लासिकल संगीत के साथ-साथ, बंगाल की लोकधुन और आधुनिक बंगला गान चला आ रहा है। बनारस की नाटक मण्डलियों में पैर से भाँति देने वाला और दोनों हाथों से बजाने वाले हार्मोनियम होते थे। फलतः इन सभी हार्मोनियम वादकों के लिये आर्गन और पियानो बजाना सामान्य बात थी। 1902 ई. में स्थापित जैन नाटक मण्डली में हार्मोनियम बजाते थे बाबू कुंजी लाल। इसी तरह समकालीन अन्य प्रसिद्ध हार्मोनियम वादक जैसे “मुनीम जी” आदि भी नाटकों के साथ हार्मोनियम बजाते थे। इसमें एक उस्ताद थे जो थियेटर के गानों में जगह बेजगह ‘तिहाई’ लगवाते थे, नतीजन उनका नाम ही पड़ गया “चचा तिहाई घुसेड़” नाटकों के गीत क्लासिकल और लोकसंगीत के आधार पर होते ही थे, विदूषकों के गाने के गीत भी रागदारी और लयदारी से बंधे रहते थे। उदाहरणार्थ—

जालीन जहूर मुझसा नूर कोई है न होगा।

दुगुन में : बर बर बर बर बोलू मंतर खोलू जंतर भागे भूत प्रेत बेताल।।

यह विदूषक भी नृत्य करने में इतना प्रवीण होता था कि बर बर बर बर बोलू के साथ पदाविन्यास करते और चक्करदार तिहाई मारकर भी टेक उठाता था। डेढ़ दो साल के लगातार अभ्यास के बाद ही यह गैर पेशेवर नाट्यकर्मियों द्वारा किया नाटक मंच पर पहुँचता था।



अध्याय-6 (च) बनारस के रंगमंच का संगीत/273

छ. बनारस के शौकिया संगीतज्ञ

बनारसी संस्कृति से प्रभावित बहुत विस्तृत क्षेत्र में ऐसे गैर पेशेवर संगीत रसिक हो चुके हैं जो किसी भी दूसरे पेशेवर संगीतज्ञों से कमजोर नहीं हैं। काशी नरेशों की परम्परा में भी, मन्दिरों और मठों की परम्परा में, संत-महात्मा और अमीर-गरीब, धनाढ्य और जनसामान्य, गायन, वादन में प्रवीण होते थे। राजवैद्य, पं. रामशंकर जी का हज्जाम पखंडू ये ठुमरी, दादरा, कजली, होली, चैती, पूरी मजेदारी से गाता था।

श्री औघड़ बाबा कीनाराम के यहाँ भी उनके विभिन्न उत्तराधिकारी तक सब उच्चकोटि के संगीतज्ञ थे। महाराज ईश्वरी नारायण सिंह के आध्यात्मिक गुरु काष्ठजिह्वा स्वामी “देवतीर्थ जी” स्वयं उच्चकोटि के गायक थे। बताते हैं कि तैलंग स्वामी जी की एकमात्र शिष्या थी “शक्ति माता जी” इन माता जी के शिष्य दो सगे भाई थे। कभी सौ सवा सौ वर्ष पहले बनारस में ही रहते थे। यह दोनों भाई दीक्षा लेकर संन्यासी हो गये और यहीं बनारस में शिक्षा लेकर आज से लगभग नब्बे वर्ष पूर्व कलकत्ते चले गये।

वल्लभकुल पुष्टिमार्ग के मंदिर में पूर्ववर्ती महाराज श्री “लालबाबा” गायन, तबला, वादन और नृत्य के धुरंधर आचार्य थे, पखावज तो इनके यहाँ की विशेषता है ही। वर्तमान महाराज श्री स्वयं गायन और पखावजवादन के विशेषज्ञ हैं।

महामना पं. मदन मोहन मालवीय जी भी उच्चकोटि के अभिनेता,

गायक और सितार, बाँसुरी के कुशल वादक थे। बंगाल के राजा राजेन्द्र मित्र की विशाल कोठी अभी भी बनारस में है। इनके परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी संगीतज्ञ हुये। इनके जामातृ परिवार में उपेन्द्रनाथ बसु उच्चकोटि के वीणावादक हुये हैं। मिश्र परिवार के खोखाबाबू उस्ताद आशिक अली खाँ के शागीर्द हुये और श्रेष्ठ सितार वादक भी हुये। इस परिवार में सुरबहार, सितार, विचित्र वीणा, इसराज आदि सभी के वादक गण हो गये हैं। हिन्दी जगत के विख्यात “भारतेन्दु हरिश्चन्द्र” स्वयं संगीत की विधाओं में निष्णात थे। अभी इनकी चौथी पीढ़ी के युवक सरोद और तबला बजा रहे हैं। सुड़िया के राजवैद्य जी की परम्परा में पीढ़ी दर पीढ़ी संगीतज्ञ हुये हैं।

ध्रुपद गायक अघोर बाबू भी ध्रुपद के श्रेष्ठ आचार्य थे। गणपत राव लाण्डे, भैया साहेब के नाम से प्रसिद्ध और कुशल संगीतज्ञ हार्मोनियम वादक हो गये। मराठी एक पर्व पर सबेरे से शुरू हुई गायन की स्पर्धा सायंकाल समाप्त होती थी उसमें एक पक्ष पुरुषों तथा एक स्त्रियों का होता था। विभिन्न राग-रागिनियों में प्रश्नोत्तरी चलती थी।

पं. बेनी माधव भट्ट, विश्वनाथ बुवा, रामचन्द्र बुवा, सोमनाथ बेहरे, रामचन्द्र बुवा चांदवडकर-कीर्तनकार, गंगाधर बुवा चान्दवडकर, विष्णु बुवा कालविन्ट थे समर्पित संगीतज्ञ हो गये हैं। ठुमरी गायक धीरेन्द्र बाबू के चेला वसंत कुमार जायसवाल स्वरूपवान भी थे और धीरेन्द्र बाबू की बन्दिशों के गायक भी। लक्ष्मीकांत पाण्डे अभी वृद्धावस्था में भी गाना, हार्मोनियम, सितार, तबला सभी में निष्णात संगीतज्ञ भी हैं और शिक्षक भी। इनके पिता रामनाथ पाण्डे ख्याति प्राप्त तबला वादक थे जिन्होंने अपने समकालीन देश बड़े-बड़े संगीतज्ञों के साथ तबला संगत किया था।

परम विद्वान आचार्यवर पंडित किशोरी लाल गोस्वामी जी सभी शास्त्रों पर अधिकार रखने के साथ-साथ उच्चकोटि के गायक भी थे। गोस्वामी परिवार के एक व्यक्ति और उल्लेखनीय है “पं. बद्री लाल गोस्वामी”। यह उच्च कोटि के अभिनेता, गायक, सितार आदि और तबला पखावज वादक और मान्य शिक्षक भी हो गये हैं। अहरौरा के जमींदार पाण्डेय जी का परिवार संगीत प्रेमी था और इनके यहाँ पंडित सदायतन पाण्डेय ने पहले गाना सीखा। बाद में उस्ताद आशिक अली खाँ से सितार की शिक्षा ली। ओमियो बाबू प्रसिद्ध सितार वादक हो गये।

अध्याय-6 (छ) बनारस के शौकिया संगीतज्ञ/275

जंगमबाड़ी बनारस निवासी कविराज हरिदास रायचौधरी स्वयं श्रेष्ठ गाये और संगीत प्रेमी थे। इनके वंशज डॉ. उमा बाबू रायचौधरी कुशल वायलीन वादक थे। हरिनारायण मुखर्जी दशाश्वमेध पर रहते थे। अच्छे ध्रुपद गायक थे। देशप्रसिद्ध कविराज उमाचरण महाराज के परिवार में संगीत बना रहा है। इनके पौत्र विख्यात आयुर्वेदाचार्य कविराज आशुतोष भट्टाचार्य ने पूरे देश में अपने तबला वादन से ख्याति प्राप्त की है।

बुलानाला, बनारस निवासी बाबू गोकुलचन्द्र खत्री एक धुरंधर शौकिया संगीतज्ञ हुये। इन्हें लोग मोहरवाले के नाम से जानते हैं। सभी प्रकार की गायकी और सितार से लेकर बुलबुल तरंग और शंखतरंग के सभी वाद्ययंत्रों के यह कुशल वादक हो गये हैं।

गढ़वासी टोलानिवासी दुर्गुबाबू खत्री ने गाना और हार्मोनियम पं. छोटे रामदासजी से सीखा और कुशल गायक वादक हो गये हैं।

खानदानी रईस बाबू नरसिंह दास खत्री ने अपने तबला वादन से लाहौर से कलकत्ते तक ख्याति प्राप्त की। बनारस के विख्यात संकटमोचन के भूतपूर्व महंत पं. अमरनाथ मिश्र प्रसिद्ध पखावज वादक हुये हैं।

बनारस के प्रसिद्ध और लोकप्रिय चिकित्सक डॉ. अचल बिहारी सेठ बड़े ही सुरीले गायक थे। उनके सुपुत्र प्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. आनन्द कुमार सेठ ने पं. महादेव मिश्र से गायन और वायलीन वादन सीखा है। आप भी पं. बड़े रामदासजी जी की अनेकों बन्दिशें पूरी रागदारी से गाते थे।

गोपाल मंदिर से संबद्ध मन्नु जी पखावज और उनके पुत्र श्री तुलसीराम बाबू वृन्दावन दास गुजराती, श्यामदास गुजराती और जमुनादास गुजराती श्रेष्ठ पखावज वादक हैं।

हिन्दू के मूर्धन्य व्यक्तित्व महाकवि जयशंकर प्रसाद जी के एकमात्र पुत्र श्री रत्नशंकर प्रसाद। इन्होंने उस्ताद मुश्ताक अली खाँ से सितार और सुरबहार की प्रशिक्षण दशकों तक लिया। उस्ताद के निर्देशानुसार इन्होंने सुरबहार पर कैद बंद आलापचारी में विशेष प्रवीणता प्राप्त की।

उपरिलिखित शौकिया संगीतज्ञों के अतिरिक्त बनारस में और भी बहुत से ऐसे संगीतज्ञ हो गये हैं। जिनके बारे में गवेषणा करने के लिये बहुत लम्बी अवधि का समय आवश्यक होगा।

उपसंहार

पिछले अध्यायों में हमने देखा कि बनारस की संगीत परम्परा में संगीत नायक पं. छोटे रामदासजी और उनकी गुरु परम्परा का प्रभूत योगदान रहा है। वाराणसी का अपना एक ऐसा महत्व रहा है कि भारत के किसी भी भाग में होने वाली उथल-पुथल का प्रभाव यहाँ के वातावरण पर पड़ा रहा है। गाहड़वाल वंश की राजधानी रहने के बाद विगत आठ सौ वर्षों में बनारस कभी जिले का सदर रहा है लेकिन सूबे का सदर होने का भी इसे राजनैतिक महत्व नहीं मिला। आधुनिक काशी राज्य की स्थापना होने के काफी बाद रियासत की एक बार फिर यह राजधानी बना लेकिन वास्तविक राजधानी गंगा पार रामनगर किले में ही बनी रही।

17वीं शताब्दी के बाद से बनारस कभी मुगलों द्वारा, कभी अवधों के नवाबों द्वारा और फिर अंग्रेज कम्पनी की फौजी कारवाइयों से आक्रान्त होता रहा। पश्चिमी देशों की व्यापारिक कम्पनियाँ भारत के इतिहास में अपने षड्यंत्रों और लोलुपता भरे कारनामों की तस्वीरें उकेरती रही हैं। ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति और उनकी पश्चिमी सभ्यता ने बनारस को उजाड़ा लेकिन बनारस के प्रेमीजनों ने इसे फिर से बसाया, सजाया और सँवारा भी। इसमें पूरे देश के राजा-महाराजाओं की आस्था का भी महत्वपूर्ण योगदान है।

किसी ग्रंथ में प्रतिपादित विषयों का निष्कर्ष या उपसंहार पूर्व अध्यायों

का संक्षिप्त सारांश मात्र नहीं होता है प्रत्युत निष्कर्ष ही ऐसा तत्व है जो अतीत और वर्तमान को लांघकर भविष्य का पथ प्रशस्त करता है।

आज वाराणसी इतना बदल चुका है कि पुराना बनारस कहीं खो गया था। जहाँ कभी बाग-बगीचे थे वहाँ आधुनिक आवासीय घनी बस्तियाँ हैं। बनारसी भाषा में जहाँ “निछदम” था अर्थात् भीड़-भाड़ से दूर एकोत स्थान थे, साथ में जलाशय (पोखरे) थे, कच्ची सड़कें थीं जिस पर गहरेबाज इक्कों पर बैठकर बनारसी जीवों की मंडली बहरी अलंग की मौज लेने जाती थी; वे सभी जगहें और परम्परायें आज भीड़ और शोर गुल में विलुप्त होती जा रही हैं।

हमारे पूर्वजों ने जब काशी क्षेत्र में बनारस या वाराणसी नगर की संरचना की थी तब यहाँ की भौगोलिक और प्राकृतिक दृश्यावली के अनुकूल नगर बसाया था। आज भी यदि बनारस के मौलिक भूगोल के मूल रूप का अध्ययन किया जाय और चीनी यात्रियों के विवरण से भी उसको मिलाकर समझा जाय तो यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ पर ऊँचे टीले थे और जहाँ पर पानी के जमाव के गड्ढे थे उनके साथ प्राकृतिक संतुलन और पर्यावरण को ध्यान में रखते हुये मंदिरों, पुष्करिणी (पोखरे) कुएँ, तालाब, बाजार, हाट और आवासीय भवनों का निर्माण हुआ जहाँ कभी बनारस के प्रधान देवता की 100 फुट ऊँची धातु मूर्ति का विवरण इतिहास में मिलता है आज वह स्थान भी ज्ञात नहीं है। इस तरह इतिहास के थपेड़ों ने बनारस की दृश्यावली को बार-बार ध्वस्त किया और उन्हीं खंडहरों पर बनारस फिर से बनता गया जो हमारे समक्ष है।

कम्पनी के आगमन के समय बनारस में आनन्दवन के वृक्ष बचे हुये थे। दारूकावन यथास्थान बना हुआ था। वर्तमान कमलगड़हा तब पद्मनाभ मंदिर की पुष्करिणी का रूप खो चुकी थी। वर्तमान बकरियाकुंड वक्रार्क और दूसरे मंदिरों के अवशेष अभी भी याद दिलाते हैं; जहाँ गोवर्धनधारी कृष्ण की सुन्दर मूर्ति मिली है। मन्दाकिनी तीर्थ मैदागिन पर अपने विस्तृत, उद्यान के साथ सुशोभित था। जिसमें कम्पनी के फौजियों के डेरा पड़ने के कारण आज भी कम्पनी बाग कहलाता है। मन्दाकिनी नदी वहाँ से बहती हुई

मत्स्योदरी (मछोदरी) तीर्थ से होती हुई जाकर गंगा में मिलती थी।

आज ठठेरी बाजार में बाबू दामोदर दास शाह के फाटक के आगे से खुलानाला बहता हुआ जाकर मंदाकिनी में मैदागिन पर जा मिलता था जिसके बगल में घोड़ा गाड़ी आने लायक कच्ची सड़क थी।

आज गोदौलिया पर जहाँ मारवाड़ी अस्पताल है उसके पास गोदावरी तीर्थ का विशाल कुण्ड था। गोदावरी के प्रवाह में मिसिर पोखरा का जल साथ मिलकर बहता हुआ दशाश्वमेध घाट के बगल में घोड़ा घाट जिसे आज डॉ. राजेन्द्र प्रसाद घाट कहते हैं, गंगा में मिलता था।

आज यहाँ डेढ़सी के पुल नाम का मोहल्ला है वहाँ पर बाबू डेढ़मल की तरफ से बाँस का पुल बनता था जिस पर चढ़कर लोग अगस्तकुण्ड क्षेत्र में पार करके जाते थे।

कबीरचौरा में संगीत विद्वान बड़े रामदासजी का घर है। आज भी विश्वविख्यात नृत्यांगना सितारा देवी का पैतृक मकान इसी कबीरचौरा में है। तबला के आचार्य इतिहास पुरुष रामसहाय जी की परम्परा आज भी इसी कबीरचौरा में सुरक्षित है। इसी परम्परा में बलदेव सहाय जी और कण्ठे महाराज जैसे ताल विशेषज्ञों का नाम सुरक्षित रखा है पद्माविभूषण पं. किशन महाराज ने। शिवदास जी, प्रयाग जी, जगदीप जी, जयकरण जी, मिठाई लाल जी, ठाकुर प्रसाद जी और सुरसहाय जी सारंगीवादक के साथ शंभूजी (बैजनाथ जी के बाबा) आदि के रिहायशी मकान यहीं कबीरचौरा में है। यहीं पर पुरानी टकसाल भी थी जिसमें प्रिंसेप जैसा भला अंग्रेज भी रहता था। वहीं आज मुख्य सड़क पर हनुमानजी का मंदिर जिसकी स्थापना प्रसिद्ध-मनोहर जी के परिवार वालों ने की थी। उसी हनुमान मंदिर के सामने बनारस के प्रसिद्ध अग्रवाल रायवंश का बगीचा भी था जिसका इतिहास प्रसिद्ध गायिका गौहर से जुड़ा था।

मुगल बादशाहों के वंशज जब बनारस आये तब शिवाला नामक मुहल्ले में आबाद हुये। वहीं उनके हाथी रखने का आज भी फीलखाना मुहल्ला है। मुगलदरबार से आये संगीतज्ञ लोग इसी दरबार में आबाद हुये और कुछ थोड़े से वाराणसेय संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय के पास

तेलियाबाग में। आज तेलियाबाग के संगीतज्ञ उजड़ चुके हैं।

संगीतज्ञों का एक और प्रमुख केन्द्र रहा पियरी जहाँ से लोग उजड़कर मालदा, कोलकाता और बनारस के दूसरे स्थानों पर बसे हैं। मुहल्लों के नाम पर दो घराने और हैं रामापुरा और चाहमामा। ये अभी भी कुछ साँस ले रहे हैं। गंगा पार का रामनगर का घराना अब उजड़ चुका है।

बनारस नगर की सीमा बनती वरुणा नदी बारहों महीने पानी से इतनी भरी रहती थी कि उसमें जलमार्ग से यातायात उसके उद्गम स्थल जिला इलाहाबाद से कुछ पहिले तक होता रहा। वरुणा का कछार और सारनाथ के चारों तरफ पूरे क्षेत्र में वन-उपवन थे। इनके बीच में छिपे प्राचीन खण्डहर अपनी धरोहर को संजोये थे। बर्ना का उल्लेख तेग अली के साहित्य में नदी के रूप में मिलता है।

अस्सी घाट पर गिरने वाली असी नदी वर्तमान संकटमोचन मंदिर के पीछे एक बहुत बड़े ताल से निकलकर बारहों महीने जल से परिपूर्ण रहती थी और वहाँ की चारों तरफ झाड़-झंखाड़ और जंगल था। बनारस शहर का यह वातावरण सन् 1945-50 ईस्वी तक भी बहुत कुछ प्रकृति के श्रृंगार से सजा था। सूरज ढलते ही हरिश्चन्द्र स्कूल और टाउनहाल के मैदान में सियार बोलते थे। हरिश्चन्द्र स्कूल के इमली के पुराने पेड़ में लोमड़ी की मांद थी। यही हाल फातमान, रथयात्रा, कमच्छा, शंकूधारा और दुर्गाकुण्ड के आज के क्षेत्र का था। 1916 ई. में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय बनने के बाद सूरज ढले वहाँ पर भी सियार बोलते थे।

बनारस के शहर के इस हरे-भरे तरोताजा वातावरण को बदलने में राजनैतिक उथल-पुथल, व्यक्तिगत अहंकार के तुष्टिकरण की इच्छा, धार्मिक असहिष्णुता और धन पिपासा के साथ गोरे लोगों की कम्पनी के षड्यंत्र भी शामिल रहे। बनारस की रियासत के महाराज के परिवार के बाबू जगत सिंह ने जब जगतगंज मुहल्ला बनवाया तब पूरा मुहल्ला बनवाने के लिये सारनाथ के खण्डहरों के पूरे पत्थर उखड़वा लिये थे। बाबू जगतसिंह के यहाँ भी नाच-गाने की महफिलें होती थीं।

सन् 1930 ई. के आस-पास बनारस की शाही जिलेदार मीर रुस्तम

अली बाबू जगतसिंह के पहले ही सारनाथ के पत्थरों से मीरघाट का पुश्ता और परकोटा बनवा चुका था। ये भी नाच, गाने, बजाने का रसिया था। ऐसा बताते हैं कि उसने अपनी एक कोठी कहीं चेतगंज के पास बनवाई थी जहाँ पर उसकी महफिले बराबर सजती थीं।

बनारस के गंगा पर रेल का पुल बना। पुराने राजपथ का नया नामकरण ग्रैंट ट्रंक रोड पड़ा। नगर के बीच नई सड़के बनीं। इन सभी ने बनारस के परिदृश्य को बदला। बनारस में पीने की जल की सुविधा के नाम पर भदौनी पर पानी कल के बनते समय बहुत से प्राचीन स्मारक ध्वस्त किये गये जहाँ केवल आधा-अधूरा लोलार्क कुण्ड और एक प्राचीन राम मन्दिर बचा। इसी के लिये बनारस में रामहल्ला बलवा हुआ था।

वैशिक परम्परा का निर्वाह करने वाली कोठेवालियाँ दूसरे सब शहरों की तरह सबसे सम्पन्न बाजार और हाट के पास आबाद रहती। बनारस में भी यह आबादी सैकड़ों वर्षों से चौक, दालमण्डी, चाहमामा, पुरानी अदालत; नारियल बाजार, कुण्डीगर का टोला, छत्तातले, आसभैरव, गोविन्दपुरा ओर राजा-दरवाजा, रेशम कटरा तक विस्तृत रही। मैदागिन से अस्सी तक नई सड़क बनने के बाद रियासत बनारस के महाराज ने चौक में आज यहाँ बनारस स्टेट बैंक की ईमारत है वहाँ बगीचे में फौवारा बनवाया था। चारों तरफ बड़े-बड़े व्यापारियों की दुकानें और ऊपर की मंजिलों में कोठेवालियाँ। शाम को फौवारे के चारों तरफ फूल बाजार में माला बेचने वाले जम जाते थे। इसी क्षेत्र में कोठे पर शिवकुंवर, तौखी, मैना, विद्याधरी और जह्नम बाई का भी कोठा था। हुस्नाबाई और बड़ी मोती राजा दरवाजे पर रहती थीं। राजेश्वरी, मानकी और चम्पाबाई नारियल बाजार में रसूलन, केसर, शाहजहाँ आदि दालमण्डी में। चौक के पास ही खाने-पीने के लिये कचौड़ी गली है। ये सभी बाजार सारी रात खुले रहते थे। दुकानों का कारबार बन्द करने के बाद व्यापारी लोग झकाझक सफेद चाँदनी और मसनद लगाकर अपनी हेलीमेली का इन्तजार करते थे। शौकिन लोग भांगबूटी, साफा-पानी देकर झकाझक धोती और अद्धी का कुर्ता पहने दुपलिया टोपी और दुपट्टा लिये पहले इत्र का फाहा लेते थे, फिर माला लेते

थे और तब अपने मिलने-जुलने वाले के दुकान पर बैठते थे। कुछ देर हँसी-मजाक, मनबहलाव के बाद जिसको जिस कोठ पर जाने की रुचि हो उस कोठे में मुजरा सुनने के लिये लोग पहुँच जाते थे।

कोठे के नीचे की दुकानों पर संगतकार जमे रहते थे और वक्त आने पर संगत करने वह भी पहुँच जाते थे। संगत करने वालों में सबसे कम पैसा मजीरे वाले को, उससे ज्यादा तबले वाले को और उससे अधिक सारंगी वाले को मिलता था। अगर खंजड़ी बजाने वाला कोई आ गया तो उसे भी तबले के बराबर पैसा मिलता था। कोठे के मुजरे में कभी पखावज नहीं बजती थी।

वैशिक वृत्ति का दूसरा बाजार नगर की सीमा के पास ही देहाती वातावरण में बनारस में भी कभी रहा है। इन बाजारों में गाना, बजाना, नाचना नाममात्र का ही होता था। कम्पनी के आगमन के साथ अंग्रेजीयत का असर महफिलों पर भी पड़ा। अंग्रेज अफसरों को देशी लोगों से मेल-जोल बढ़ाने के लिये अपने यहाँ महफिलें सजानी पड़ती थी। ऐसी नाच की महफिलों के हुक्मरान और उनके चाटुकार विलायती की चुस्की लेते हुये सोफे और कुर्सियों पर बैठक नाच-गाना देखते और सुनते। जो देशी चाटुकार अंग्रेज अफसरों को खुश करने के लिये अपने यहाँ महफिल सजाते थे वहाँ भी सोफा और कुर्सी का प्रवेश हो गया।

बनारस के संगीत मेले बुढ़वा मंगल का आयोजन मीर रुस्तम अली के बनारस आने के बहुत पहले से ही होता रहा। उस समय लोग बताते हैं कि इसका नाम छत्रमंगल था। यह बुढ़वा मंगल संगीत जगत् के लिये अपनी तरह का बेमिसाल और बेजोड़ मेला था जिसके साथ भांड, स्वांग और तमाशा भी जुड़ा था। सामाजिक विकृतियों के चलते काशीराज महाराज प्रभुनारायण सिंह के समय में सन् 1927-28 ई. के लगभग यह मेला बन्द हो गया।

उस समय से आज तक में बनारस का पूरा माहौल और सांस्कृतिक मिजाज बदल चुका है। बनारस का गाना, बजाना, नाचना बहुत कुछ बदल चुका है। अब न वो संगीत रसिक रह गये हैं और न वैसे संगीतज्ञ जो उस कम्पनी कालीन बनारसी संस्कृति से आज साक्षात्कार करा सकें। फिराक

साहब के शब्दों में—

“इसी खण्डहर में कहीं हैं कुछ दीये टूटे हुये उनीं से काम चलाओ.....”

दयानन्द महाविद्यालय (बी.एच.यू.) के इतिहास विभाग के पूर्व रीडर व अध्यक्ष डॉ. विश्वनाथ भारद्वाज ने एक साक्षात्कार के दौरान विचार व्यक्त किया था कि उनके पूर्वज 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुड़िया और तदनन्तर भारद्वाजी टोला में पंजाब से प्रव्रजित होकर आये थे। अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त सूचना के आधार पर वे कहते हैं कि- “यह सत्य है कि सुड़िया के वैद्य आने वाले यद्यपि यजुर्वेदी रहे हैं तथापि आयुर्वेद चिकित्सक चारों वेदों में से अथर्ववेद के प्रति अधिक भक्ति प्रकट करते हैं क्योंकि इस वेद का आलम्ब लेकर आयुर्वेद के विद्वान उपदेश करते हैं।” परन्तु इस सुड़िया घराने के चिकित्सकों का आयुर्वेद के साथ-साथ सामदेव से भी कम सम्बन्धी नहीं रहा है। गीतं, वाद्यं, नर्तनं च त्रयं संगीतमुच्यते। फलतः धन्वतरि-निवास संगीतशाला भी रही हैं। साम शान्ति व मंगल स्थापित करने वाला गान है। सुड़िया घराने वाले सामग भी रहे हैं और अष्टाङ्ग आयुर्वेद जैसे उपवेद के प्रकाण्ड पंडित भी। इस प्रकार ऋग्वेद के उपवेद आयुर्वेद और सामदेव मानों इस घराने में युगनद्ध हो गये हो। अतः सुड़िया घराने की संगीत-परम्परा पर पृथक् से शोध-कार्य करने की आवश्यकता है। उसकी इस विधा पर भविष्य में अत्यन्त गहनता से शोध किये जा सकते हैं।

बनारस के घरानों में शास्त्रों में लिखित सभी लक्षणों का निर्वाह करते हुये मधुर और समायोचित रागों का ही गाने-बजाने में प्रस्तुत करने के अनुशासन का निर्वाह होता रहा है। कठिन लयदारी का प्रदर्शन न बनाकर मनोरंजन और सहज ढंग से प्रस्तुत करना इस परम्परा की विशेषता रही है। परम्परागत रागों की ही संख्या इतनी अधिक है कि इस परम्परा में संभवतः किसी ने भी नये रागों का निर्माण नहीं किया है। अन्य लोग जिन्हें अप्रचलित राग कहते हैं। इन्हें भी सहज ढंग से सीखाना इस घराने की विशेषता रही है। टप्पा अत्यधिक तेज लय में गाने की इस घराने की विशेषता रही है। इस परम्परा में लगभग 14 हजार राग-रागिनियों को सीखते-सिखाते थे क्योंकि यह मान्यता रही है कि भगवान श्रीकृष्ण की

रासलीला के समय देवरुपा और ऋषिरुपा 16 हजार राग-रागिनियों का अवतरण हुआ था और जिनके साथ 108 ताल भी अवतरित हुये थे। यहाँ संगीत संबंधी कुछ प्रामाणिक पद उद्धृत हैं जो इस घराने में गाये जाते हैं। इनके अवलोकन से शास्त्र संबंधी विवेचन मिलता है—

1. हरिदास स्वामी का पद-

तरैया नाद महानद को मूरछना गमक नीर सुरति अगाध तान तरंग।

ताल तरल बही अलापन औडव षाडव पूरन धार॥

आरोही अवरोही दोऊ कूल, पुर अंश, न्यास ग्राह ग्रह, तान भँवर, सरोज वादी, विवादी सिवार।

नौका अवाज पर राग-रागिनी पथित चढ़त उतारत गुनीजन वार-पार।

‘हरिदास’ ठाकुर-उत्तम नायक धरु धुरपद चन्द गुनवल्ली पत पतार संगीत गीत आधार॥

2. बैजू बावरा का पद-

जय सरस्वती, गंगा, गणेश, ब्रह्मा विष्णु महेश शक्ति सूरज सर्व ध्यावै।

सप्त स्वर तीन ग्राम इकइस मूर्छना उनचास कोटि तान देहो तब आवै॥

उरपति रप लाग-डाट राग-रागिनी पुत्रवधूनसहित कण्ठ समावै।

कहै “बैजू बावरे” सर्व्व देव दया करो राग रंग ताल लय अक्षर गावै॥

3. तानसेन का पद-

नादगढ़, मनराजा, राज सजत छहो राग उमराव बैठे दुरजन पर नीके रक्षा करत।

नाना राग-रागिनी, छत्तीस तुपक भरभर धर सोई, इक्कईस मूरछना गीत

नाल, धारू, धोवा, माटा, परमाटा, चतुरंग।

जम्बू राग जल वै पारसी छन्द रच्यो शत जंजाल त्रेवट, रामचंगी
संगीत दारू तान,

गजा, बाँस, ढाँस, झुमरा गोला भरा।

सुप्तसुर, सप्तपौर औडव षाडव किवाड़।

आरोही अवरोही खाई बनाई कौल तिलाना कोतवाल, धुपद
वजीर प्रबन्ध की निशानी आय लरबे को धाय विद्या की लराई
लरत। 'तानसेन' कहे ऐसो अगम अथाह जाको पार न पावत रच,
पचहारे कहू न लाग लगी कान मगर पकर धारत॥

4. तानसेन का पद-

जो गुणिजन गुरु पावै गावै नीकी तान गुण सो रिझावै।

जब बजावै बीन अच्छी नीकी परमान सोच समझ,

तान लेत, ध्यान धरत जिया में जब सुर संगत पावै धुरन-मुरन
सों बाकी सबझ आवै।

सप्त तीन इकईस बाईसौ लागडाँट खुली मुंदी दरसावै

सप्त अध्याय संगीत मत करके 'तानसेन' प्रभु को रिझावै।

उपर्युक्त पदों में भारतीय गाने, बजाने से संबंधित पारिभाषिक शब्द
आये हैं। इनके अर्थ को स्पष्ट रूप से समझना संगीत की एक महत्वपूर्ण
आवश्यकता है।

मेरी कामना है और विश्वास है कि संगीत प्रेमीजन इनका अनुसंधान
कर बनारस की संगीत परम्परा और भारतीय संगीत परम्परा को समुन्नत करते
हुये और अधिक लोकप्रिय करेंगे।

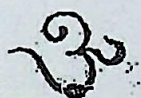
सुखिनि सुख निधानं दुःखितानां विनोदः श्रवण हृदयहारी
मन्मथस्याग्रदूतः।

अति चतुर सुरम्यो वल्लभः कामिनीनां जयति-जयति नादः
पञ्चमश्रोपवेदः॥

वीणावादन तत्त्वज्ञो रागविद्याविशारदः मूर्च्छनाश्रुति सम्पन्नो
मोक्षमार्गञ्जगच्छति॥

भारतीय संगीत का महत्व मात्र कलात्मक या शास्त्रीय नहीं है। मानव के जन्म से मृत्युपर्यन्त यह आनन्द का द्योतक है। इसीलिए नाद को 'ब्रह्म' कहकर रसो वै सः के रूप में परिभाषित किया है। कलात्मकता की दृष्टि से बनारस ने संगीत को बहुत ऊँचा उठाया है। संगीत में जाति-पाति के भेद-भाव से ऊपर उठाकर एक परमतत्त्व में लीन कराने की क्षमता है। सन्तों की भगवद्भक्ति की पराकाष्ठा संगीत द्वारा साध्य है तो आनन्द की पराकाष्ठा सामान्य वर्ग के लिये ध्रुपद, धमार, ठुमरी द्वारा साध्य है। बनारस के संगीतज्ञों ने इन सबको साधकर विश्व के सामने उदाहरण स्वरूप रखा है। आइये! हम सब इसका गहन अध्ययन करके उसी बनारसी मौज-मस्ती में रमकर बनारसी 'जीव' कहलाने की क्षमता प्राप्त करें।

बाबा कीनाराम का विष्णुपद



परिशिष्ट

विष्णु पद राग धवल

स्तुति परण

भूलना लय

रचना बाबा कीनाराम प्राचीन हस्तलिखित प्रति की छायाप्रति

1	धेरे	किरी	तेत	कुं	S	कुं	S
0	अ	इं	ग	हे	S	नि	रि
+	गी	S	त	छ	इं	द	प्र
0	वि	वि	ध	ता	S	न	त
+	अ	इं	म	स	रि	ता	र
0	ध	न	न	घ	इं	न	न
+	चा	S	ल	च	ल	त	भि
0	स	खा	S	स	खी	स	म
2	कुं	S	S	न	ट	व	र
3	व	र	त	ब	द	त	मं
2	बं	इं	ध	उ	घ	ट	त
3	र	इं	ग	उ	म	ग	त
2	ध	इं	ग	S	S	घ	इं
3	धु	S	धु	र	व	ज	त
2	भ	इं	ग	श	S	ज	त
3	बे	S	ष	अ	भि	न	व

[illegible]

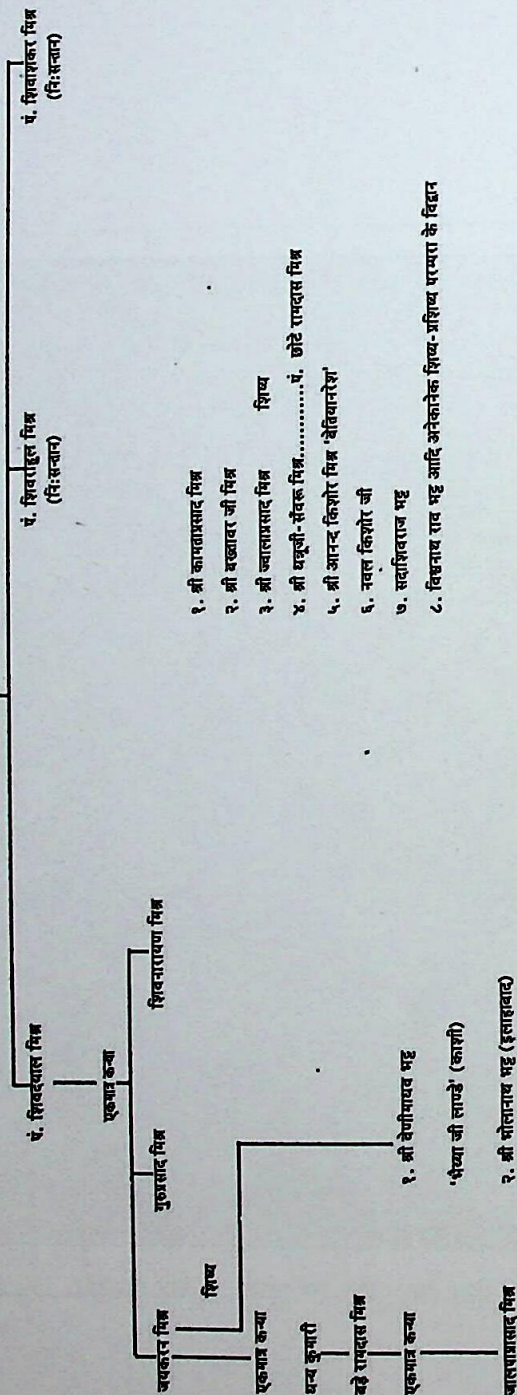


श्री गणेश प्रसाद मिश्र (भददूजी) एवं गुरुजी पं. बड़े रामदास

बाबा कीनाराम का विष्णुपद/291

काशी से सम्बन्धित भेतिया पुण्ड घराना

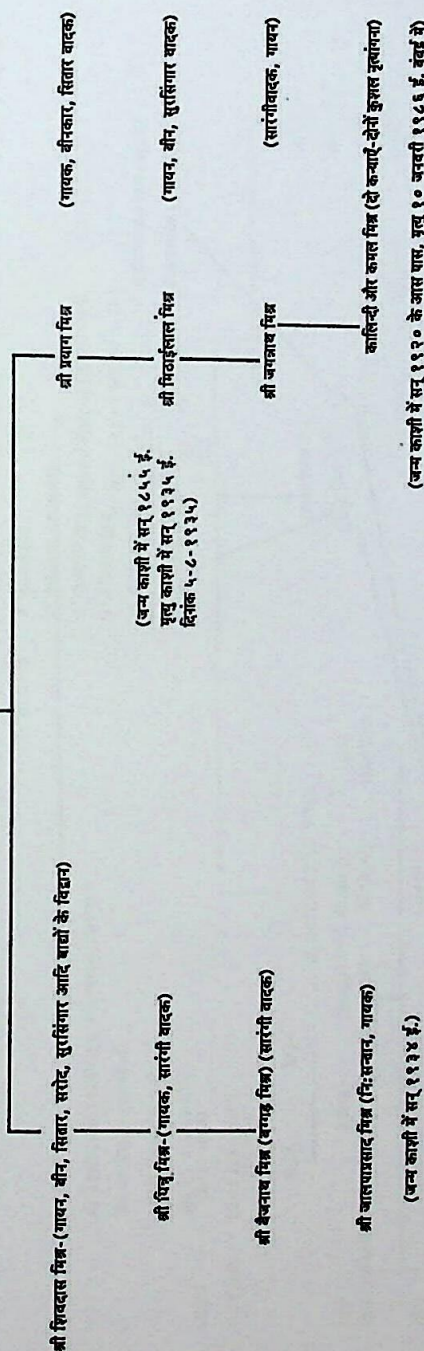
वंश एवं शिष्य परम्परा

[illegible][illegible]

श्री परमहंसजी की कालानुसारी मैं काशी आ बड़े, और यहाँ स्मरणाली हुए । तिनकेने अपने दुगमद बड़े रामदास जी वेणीमाथय भट्ट, भोलाभाय भट्ट को विलक्षण गायक के रूप में स्थापित किया । इस प्रकार बिलिय गृधद धाराना एवं बयास परतान का र्विचर सभितक्षण सिधियों- प्रशिक्ष्यों को संगीत प्रवहाना से वर्गना आ रहा है ।

श्री शिवदास-प्रयाग मिश्र घराना

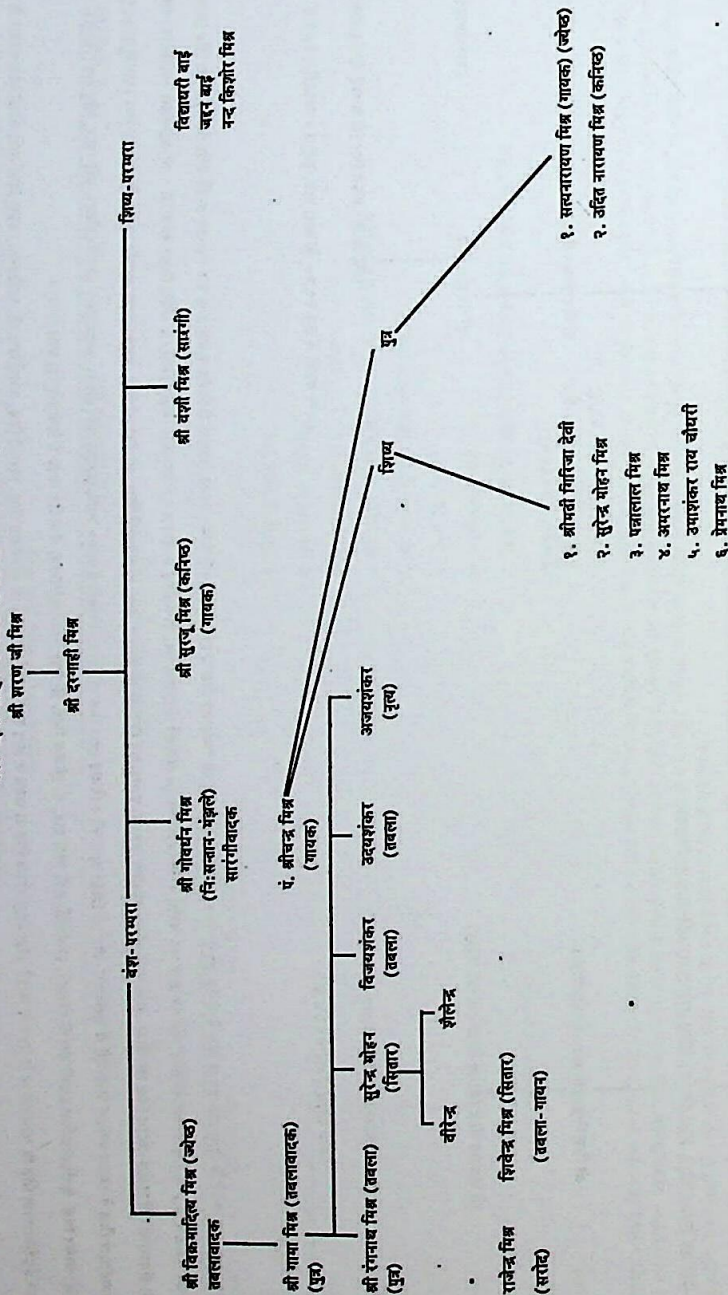
श्री प्रह्लाद मिश्र (पिता-शिवदास-प्रयाग मिश्र)



शिव्य परम्परा- इस घराने के शिवदास-प्रयाग मिश्र ने संगीत की प्राथमिक शिक्षा अपने भाया श्री रामप्रसाद मिश्र से प्राप्त कर अपनी निष्ठा, लगन, साधना से विशेष सुपथ प्राप्त कर बंगाल काशी नरेश ईश्वरीनारायण सिंह (शासन काल सन् १८३५ ई.-सन् १८८९ ई.) के राज दरबार में गानिकार का पद प्राप्त कर काशी नरेश काशी के दूर तय की खयालगायकी के विशेष कलावन मुहम्मद अली (बड़कु मिर्जा) से संगीत शिक्षा ग्रहण की। श्री लक्ष्मीदास-केशवदास-मोहितदास (चिपरी घराना) के सयकालीन शिवदास-प्रयाग मिश्र की शिव्य-परम्परा में इड़िया वदसील फूलपुर-डूलाहाबाद निवासी श्री पदार्थ मिश्र, श्री मुनक्की मिश्र, श्री भरो जी मिश्र (रवतसादाक काशी) एवं श्री निवाहसाल मिश्र (गायक पुत्र) प्रमुख थे।

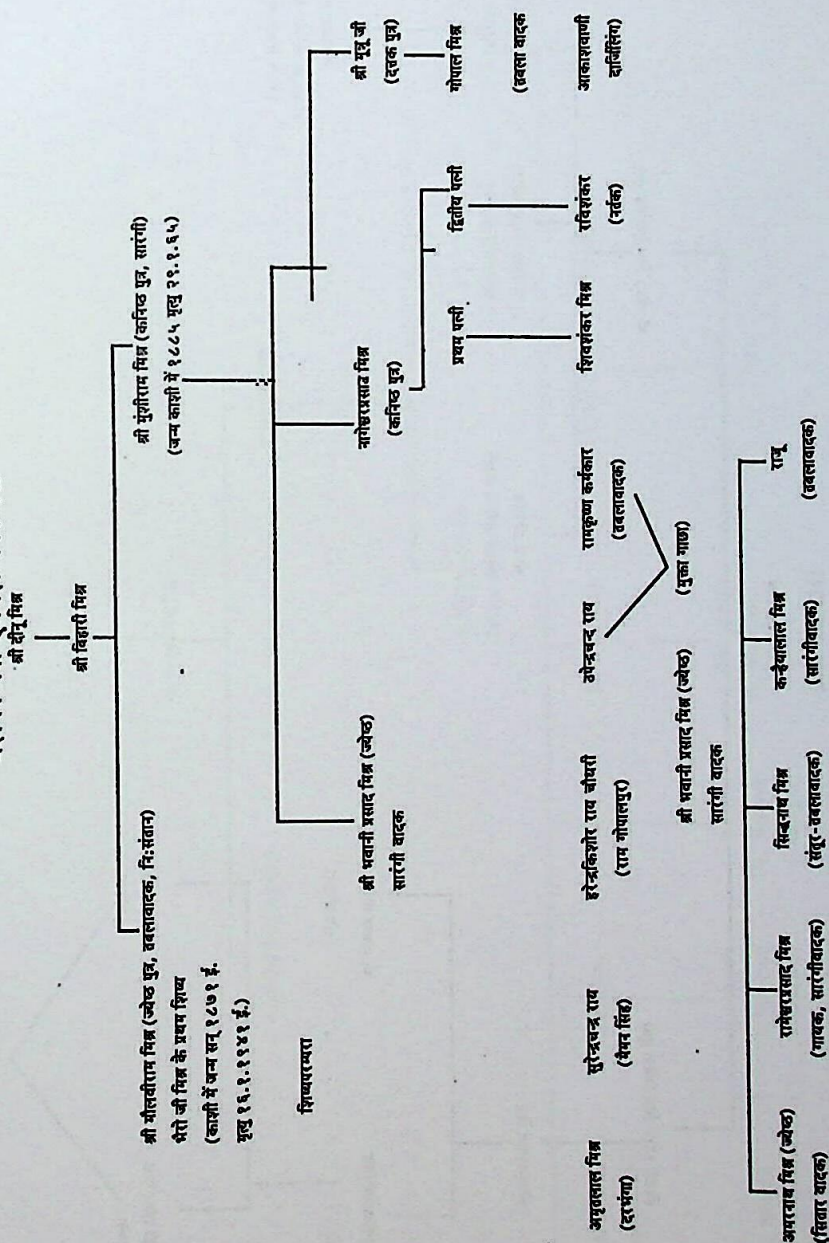
श्री निवाहसाल मिश्र ने उत्साद सादिक अली खाँ से सुरसिंगार-बीन की शिक्षा प्राप्त की। निवाहसाल मिश्र की शिव्य-परम्परा में उत्साद आदि अलीक खाँ (सीणा), श्यामसुन्दर चौधरी (सीणा), धीरेय बाबू, खेदू बाबू (सिवहार), एकनाथ सुपुत्र जगन्नाथ मिश्र, गंगन मिश्र, दुर्गाप्रसाद मिश्र (सभी सारंगी वादक), हुस्नाबाई, मट्टी मोती बाई, पं. श्रीचन्द्र मिश्र, श्री दाद जी मिश्र (गंगवन) ने संगीत जगत में विशेष सुपथ प्राप्त किया।

बंगाल ईश्वरीनारायण सिंह के शासनकाल के उपरान्त काशी नरेश प्रमुनायण सिंह के समय में आप दोनों भाइयों के साथ श्री रामसेवक मिश्र, दगाणी मिश्र, रामसेवक जी, अलीबख्श, बड़कु मिर्जा आदि काशी नरेश दरबार के विशेष कलावन थे।



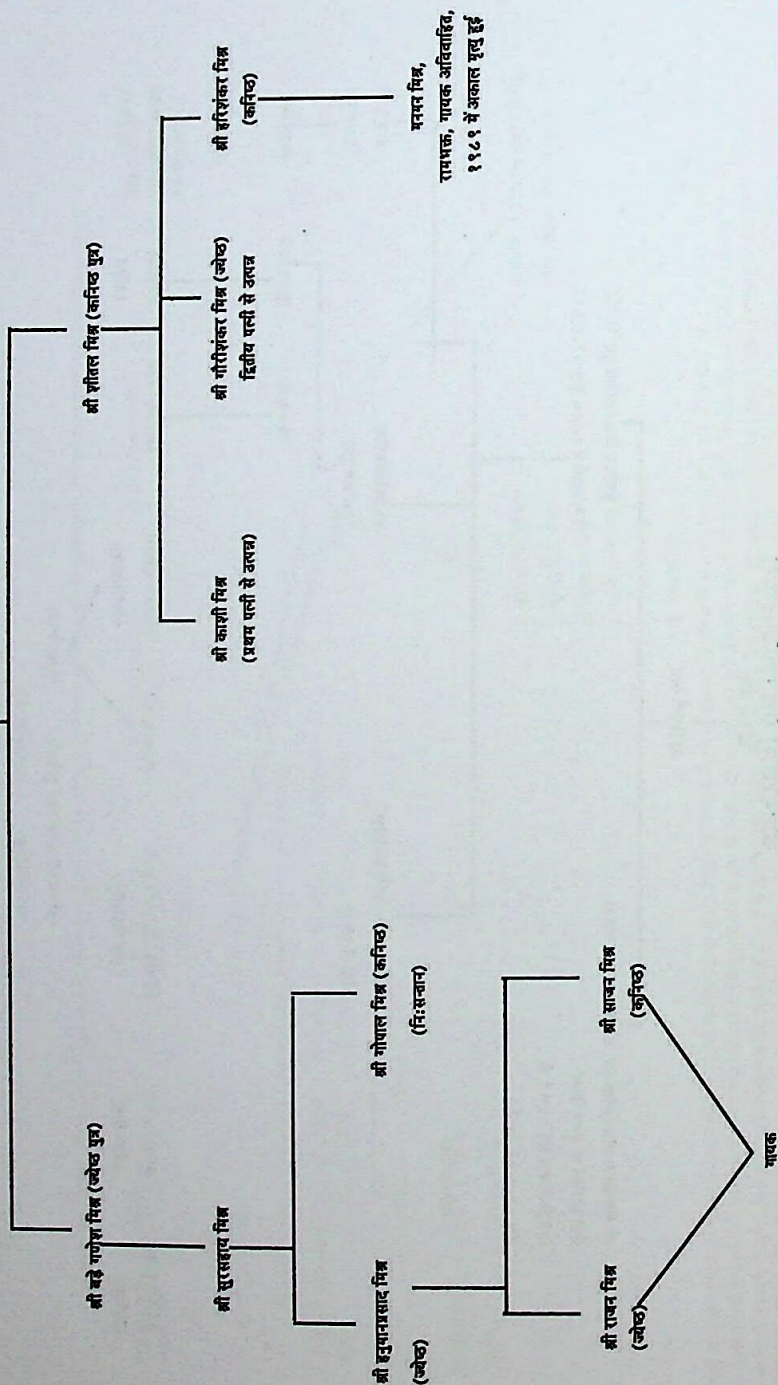
काशी के पिपरी घाटान एवं शिवदत्त-स्वामि मिश्र घाटान की विशेषताओं के कुशल विद्वान श्री दण्णाही मिश्र गावकी-नायकी प्रतिमा के धनो एवं गायन, बौन, सांणी, सितार, सोद, हवला एवं गुंज आदि सभी विषयों के पुर्यय विद्वान थे । संगीत का गभीर षड के अधिकारी विद्वान के रूप में आपकी छ्ताति से विष्णु नागपान भातखण्डे, विष्णु दिगम्बर पदुकरा सोथे संगीत उदाकर मी अपनी संगीत विषयक विस्त्रासाओं के श्रम के लिए आप से विद्वान-विनिमय करते थे । आपने घाटने की गिम्ह-धाम्मा में देश के अत्यन्त लोकप्रिय हवला वादक गुदई म्हााराज, सलत्तन बादु (मुंदग वादक, आरा), वासुदेव मिश्र (गायक, आजगण्ड) वासुदेव मिश्र (हवला वादक, खुष्कफापुर), श्यामा बाई, मोहिनी बाई (काशी), आदि अपनी संगीत साधना से घाटने की गरिमा बढ़ाई है ।

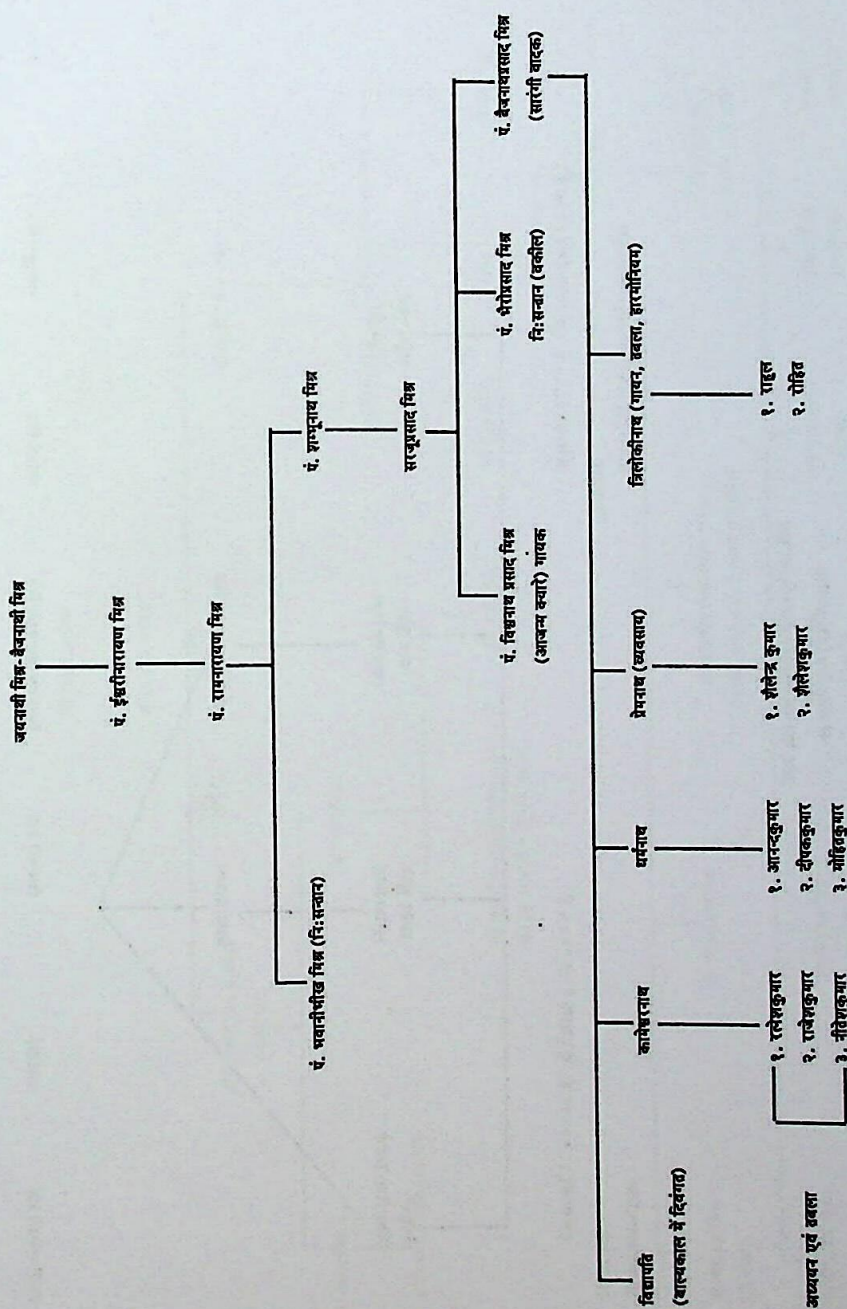
वंशपरम्परा एवं शिष्यपरम्परा



वंश-परम्परा

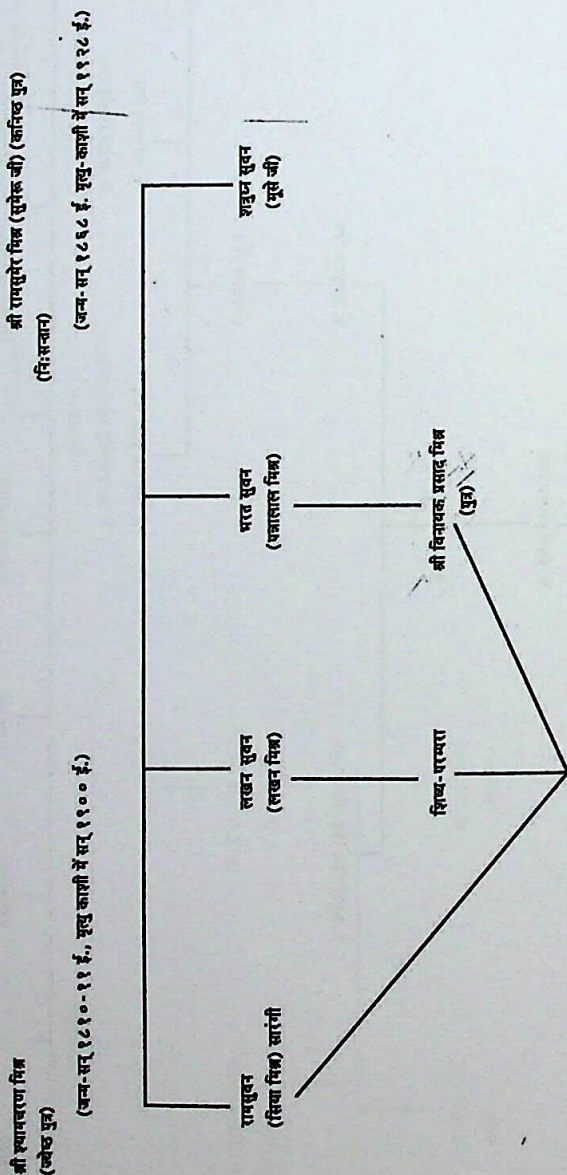
श्री रामचन्द्र मिश्र





बनारस के संगीत घराने की वंशावलियाँ/297

सारांगी
श्री शंकर मिश्र (वसन्त-वाराणसी)
(जबकि भाई नाम अज्ञात निःसन्तान दिवंगत हुए)



इत्यादि

वात्सपुत्र-द मिश्र

गोपाली मिश्र

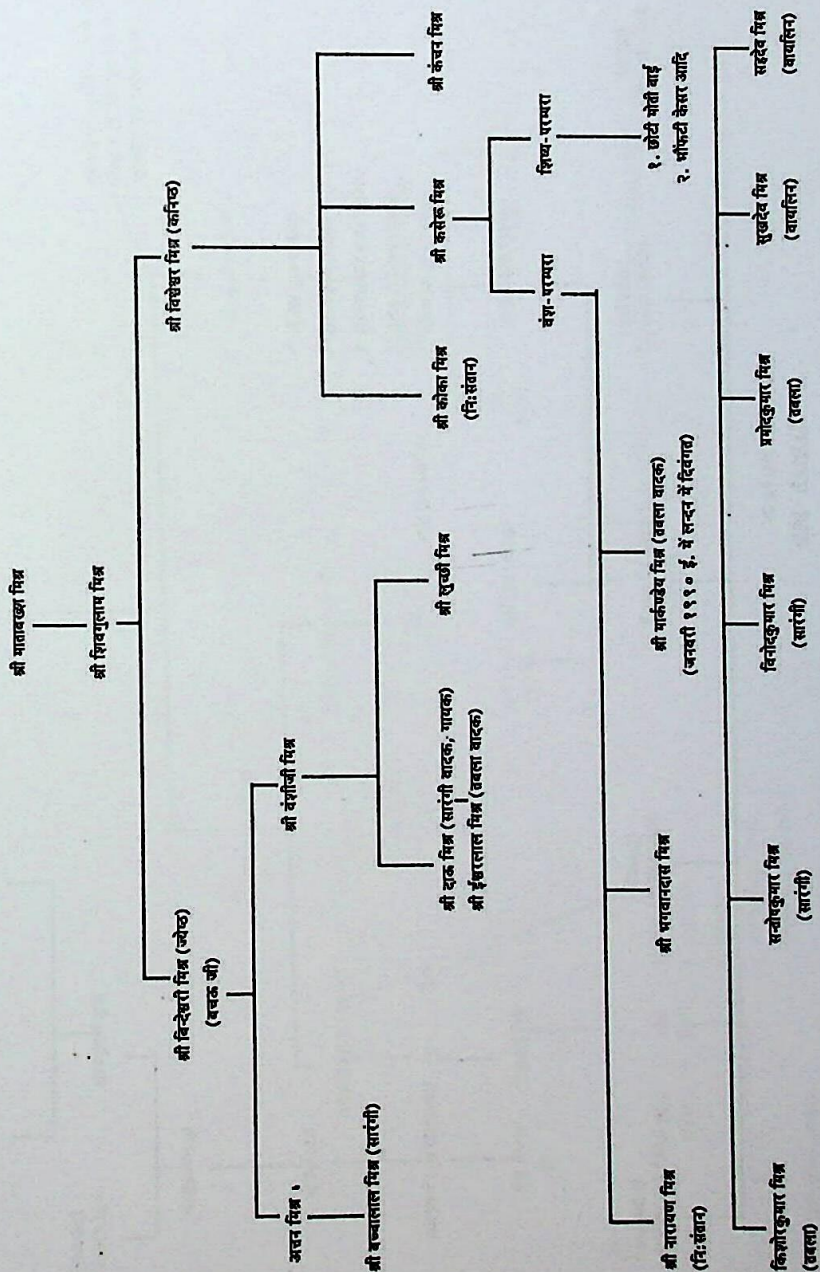
केदारनाथ विद्यालहाय मिश्र

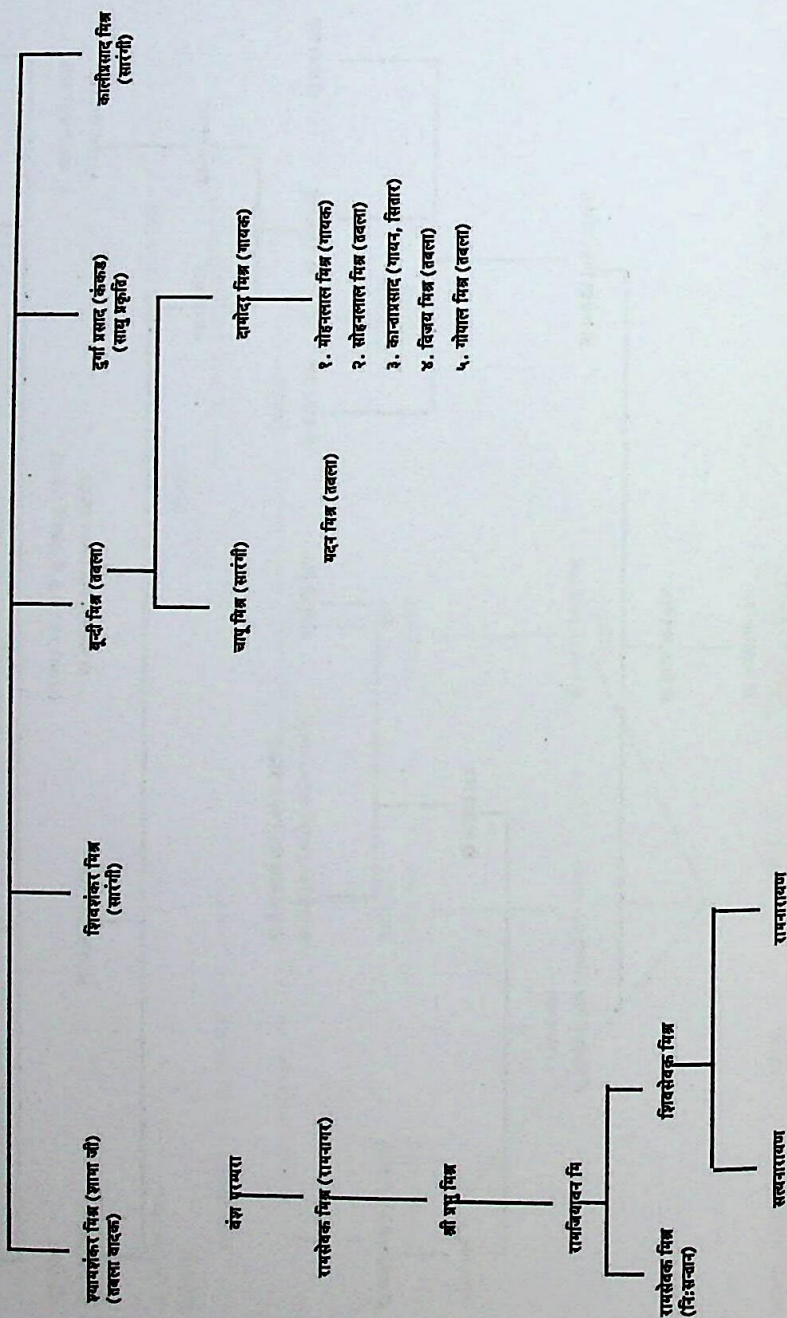
सिन्धुवारी देवी

काशीबाई

श्रीमती रामेश्वरी बाई

वंश-परम्परा





वंश परम्परा

श्री देव जी

बंगेसी भौट-। भौट समाज के अधिकांश
शिव में विशिष्ट विद्वान शिव
कुशल वस्त्र वादक थे ।।

छोटकू जी (कनिष्ठ)

सीताराम मिश्र (ननकू महाराज)

प्रकाश
(वस्त्र)

विकास
(सरोट)

सुभाष
(अध्ययन)

(राजेशचंद्र मोहम्मद के शिष्य)

बड़कू जी (ज्येष्ठ)

हरिदास मिश्र (गद्गू जी)

नर्तक

छाया मिश्र
(सारंगी)

विनोद श्यामाच एवं अन्य विद्य
(वस्त्र)

(नर्तक)

राजेशदास मिश्र (गद्गू जी)

शिष्य

पुत्र

मन्मथदास मिश्र

पुत्र

१. ननकू महाराज (वस्त्र)

२. यमुनाप्रसाद

३. श्यामकुमार

४. धर्मदास मिश्र (गायन)

५. दुर्गाप्रसाद पाण्डेय आदि ।

मोहन

शिष्य

नेत्रनाथ
(विद्यार्)

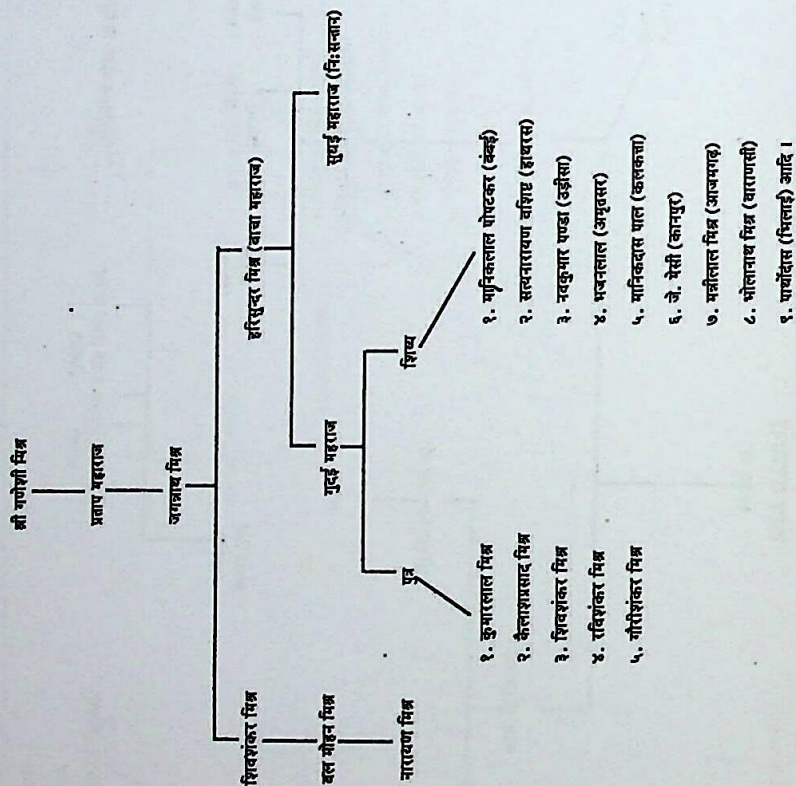
राजेश दास
(वस्त्र)

१. विनोदकुमार (वस्त्र)

२. राजेशकुमार (वस्त्र)

बनारस के संगीत घराने की वंशावलियाँ/301

वंश-परम्परा

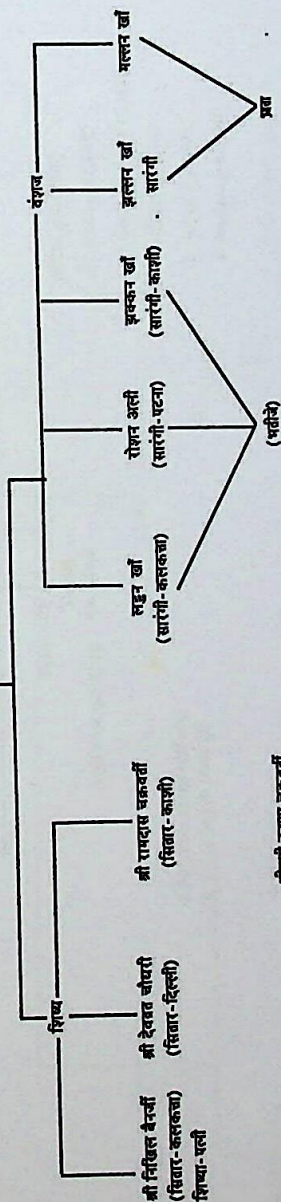


शिवाला फीलखाना घराना

ख्यात गायकी का मेसियानाला-घराना (काशी)
उस्ताद सादिक अली खाँ (छुपद-ख्याल गायक, बौनकार)

उस्ताद आशिक अली खाँ (गायक, बौनकार, सिंघार, वादक)

उस्ताद मुश्ताक अली खाँ (सिंघार-सुरवाह वादक, बौनकार)



श्रीमती कृष्णा चक्रवर्ती
(सिंघार-काशी)

उस्ताद सादिक अली खाँ की वंश-परम्परा सोनिया-घराने के गायक धुन्दू से सम्बन्धित रही है। दिल्ली मुगल दरबार के शाही कलाबन्ध उस्ताद सादिक अली खाँ (बौनकार), उस्ताद अकबर अली (टप्पा गायक), उस्ताद रिश्ता अली खाँ (छुपद गायक) इसी वंश के अनूठे तार थे। मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के सत्ताविहीन होने के साथ ही यह परिवार भी शाही कालिने के साथ संघर्ष के लिए दिल्ली छोड़कर काशी एवं अन्य संगीत प्रेमी रियासतों की ओर बढ़ा। काशी पहुँचने पर काशी नरेश, काशी खासी एवं काशी के गुर्गी संगीतज्ञों ने इन शाही कलाकारों पर इतना ध्यान रखा कि यह परिवार मेसियानाला (शिवाला) गुरुत्वे में संघर्ष के लिए बस गया। उस्ताद सादिक अली खाँ एवं काशी के संगीतज्ञ ने एक दूसरे की विद्वत्ता का लाभ उठाया। काशी के सुपगुरु, रसनिब गायक श्री निखिल बैरवों ने सादिक अली से बौन वादन की शिक्षा प्राप्त की, और उनके पुत्र उस्ताद आशिक अली को बौनवादन की शिक्षा प्रदान की। उस्ताद आशिक अली खाँ तक इस घराने में छुपद, ख्याल, टप्पा, बौन आदि की परम्परा प्रचलित थी। उस्ताद मुश्ताक अली खाँ का विरासत में प्राप्त संगीत शिक्षा के अतिरिक्त सिंघार की ओर विशेष झुकाव हुआ, और अपनी मौलिक परम्परा के एकमात्र वादक के रूप में आपने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। आपके अन्य भाई, व भतीजों का सांगी की ओर झुकाव हुआ, और सांगी वादन क्षेत्र में इन लोगों ने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की।

वंश एवं शिष्य-परम्परा

श्री यदुनन्दन जी

श्री यदुनन्दन जी

चौपल्ली को चौबीस पल्ली तक
विस्तार देने का श्रेय आपको मिला

पुरुषोत्तम मिश्र
शिष्य

श्री यदुनन्दन जी

बचन

कुसुम जी

१. प्रथमसात मिश्र (छप्पा जी)
२. कृष्णकुमार गंगुली (माट्ट बाबू)

१. चयनसात मिश्र (विहार)
२. शान्तिसात (बबला)
३. गणेशप्रसाद (गवर्न)
४. सुखदेव प्रसाद (बैंक अधिकारी)
१. (पुन-निरवार मिश्र (गवर्क)
२. विद्याधर मिश्र (बबला)

पुन

महादेव प्रसाद मिश्र जी झी वंश- परम्परा
रामपुरा
झरिका प्रसाद मिश्र (लोचई जी)

महादेव प्रसाद मिश्र

महेश प्रसाद
(गवर्न)

बहीप्रसाद मिश्र

शिवनाथ

देवव्रत

(सिवा)

भरुणनाथ

कुबेरनाथ

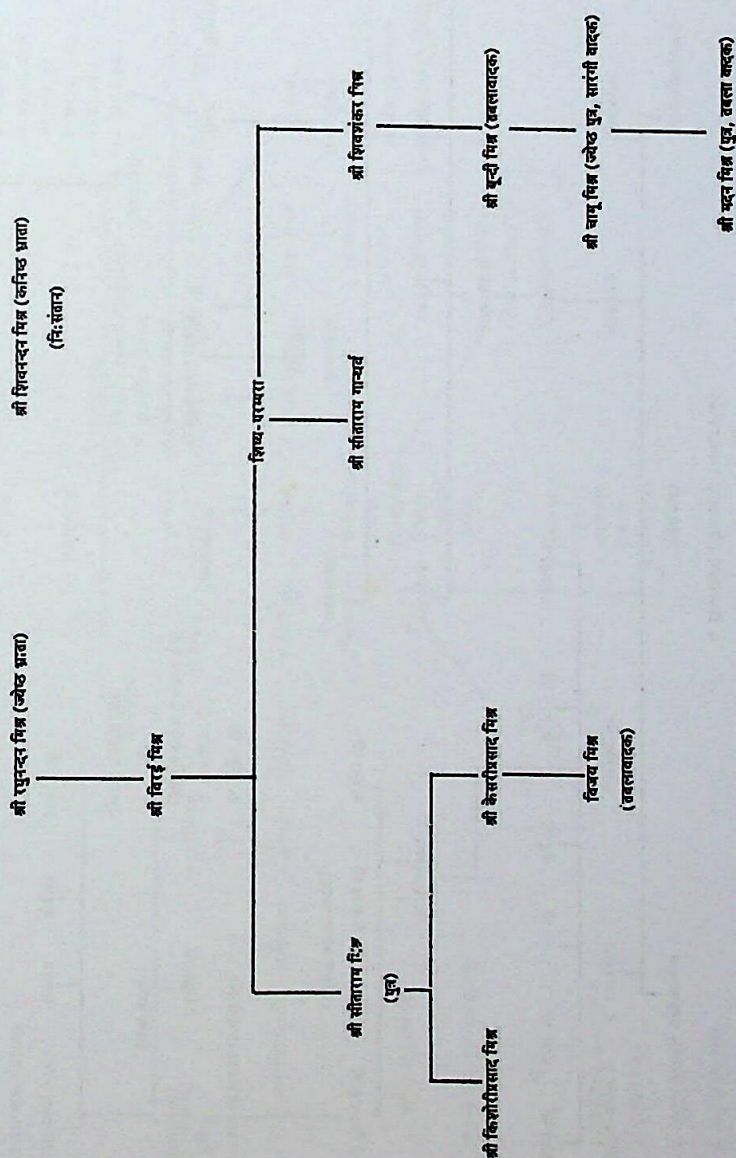
(बबला)

अनरनाथ

बटुकनाथ

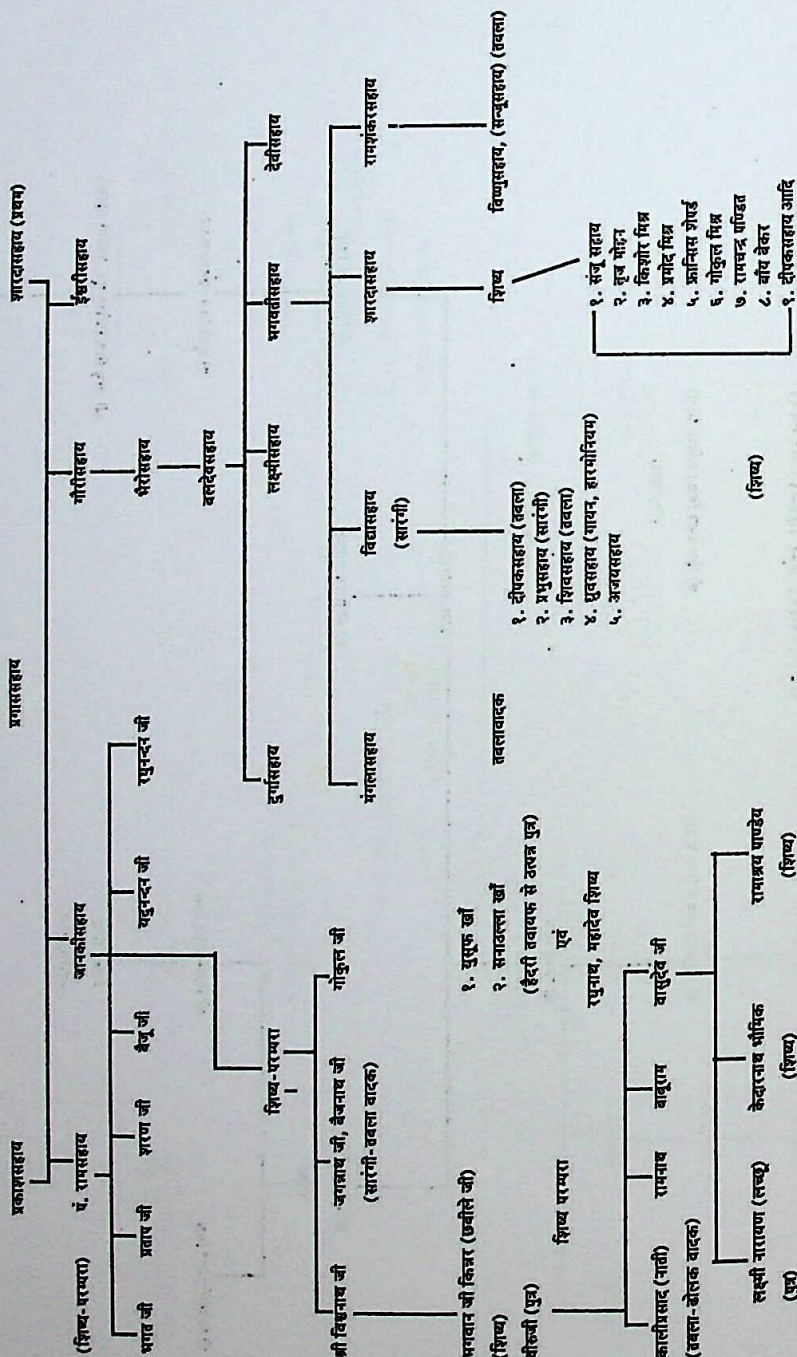
(सिवा)

वंशपरम्परा एवं शिष्य-परम्परा



बनारस के संगीत घराने की वंशावलियाँ/305

पं. सियासहाय-(पितामह पं. रामसहाय जी)



वंश-परम्परा एवं शिष्य परम्परा

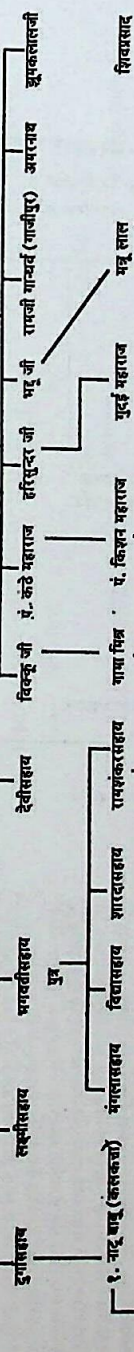
श्री गौरीसहाय (अनुज-शिष्य पं. रामसहाय जी)

भरोसहाय

बलदेवसहाय

वंश-परम्परा

शिष्य-परम्परा



शिव

१. नानू बाबू (किसको)

२. प्यास लाल (कन्या जी)

सातवीं श्रीवास्तव (इलाहाबाद)

शिव

१. गिरीशचन्द्र आचार्य

२. दुर्गाजी यादव

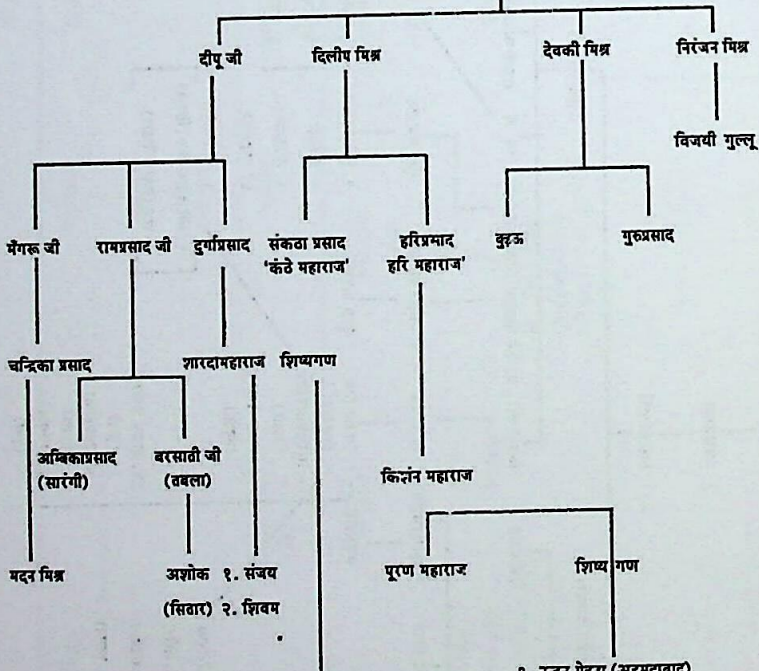
३. प्रभुलाल बाजपेयी

४. अनुपम राय आदि

शिष्य-परम्परा एवं वंश-परम्परा

वाद्य शिरोमणि पं. कंठे महाराज

हीगन मिश्र - झोंगन 'म' (पूर्वज)



१. पं. किरतन महाराज उत्तराधिकारी पुत्र
२. पूरण महाराज (पौत्र)
३. प्रकाश महाराज (दोहित्र)
४. शारदासहाय
५. रामशंकर सहाय (पौत्र तुल्य)
६. नाटू बाबू (कलकत्ता)
७. विश्वनाथ बोस (कलकत्ता)
८. आशुतोष भट्टाचार्य (वाराणसी)
९. जदुनाथ मिश्र (वाराणसी)
१०. सेचन मिश्र (वाराणसी)
११. नन्हु मिश्र (वाराणसी)
१२. बट्टी महाराज (वाराणसी)
१३. गौरीशंकर (वाराणसी)
१४. मोतीराम (वाराणसी)
१५. जे. एन. सुपकार
१६. कामेश्वर नाथ मिश्र इत्यादि

१. नन्दन मेहता (अहमदाबाद)
२. अनिल पलित (कलकत्ता)
३. कपिलदेव सिंह (दानपुर)
४. महेन्द्र सिंह (आकाशबाणी पटना)
५. हरिनारायण शाह (वाराणसी)
६. सुखविन्दर सिंह पिन्की (पंजाब)
७. संदीपदास (पटना)
८. कुनार बोस (कलकत्ता) इत्यादि

जनकीप्रसाद (अवधु) जी का बनारस नृत्य धराना

मनेसी जी- (सहोदर भ्राता)
(अवध निःसन्तान)

दूकान, (अवध)

जनकी प्रसाद
(निःसन्तान)

पूरनलाल

गौरलाल

विहारीलाल

गौरी दार गौरी के सुप्रसिद्ध वंशज

१. किरनलाल

२. मोहनलाल-दीर्घ अवधि तक बनारस में रहे, जिनसे काशी में अवधु पुराणे की नृत्यकला को विशेष लोकप्रियता

३. सोहनलाल

४. मदनलाल

५. रामलाल

६. हनुमानप्रसाद

७. शिवलाल

८. गोपाल-साहीर जा बरे, जिनके शिष्य आशि हुसेन से हजारीलाल अवलाल ने शिक्षा प्राप्त की, और अपनी शिष्या पत्नी सुवधन (बंबई) को नृत्य-शिक्षा देकर कुशल नृत्यांगना के रूप में प्रतिष्ठापित किया ।

९. नवलकिशोर

१०. बंशीधर

११. ओंकार

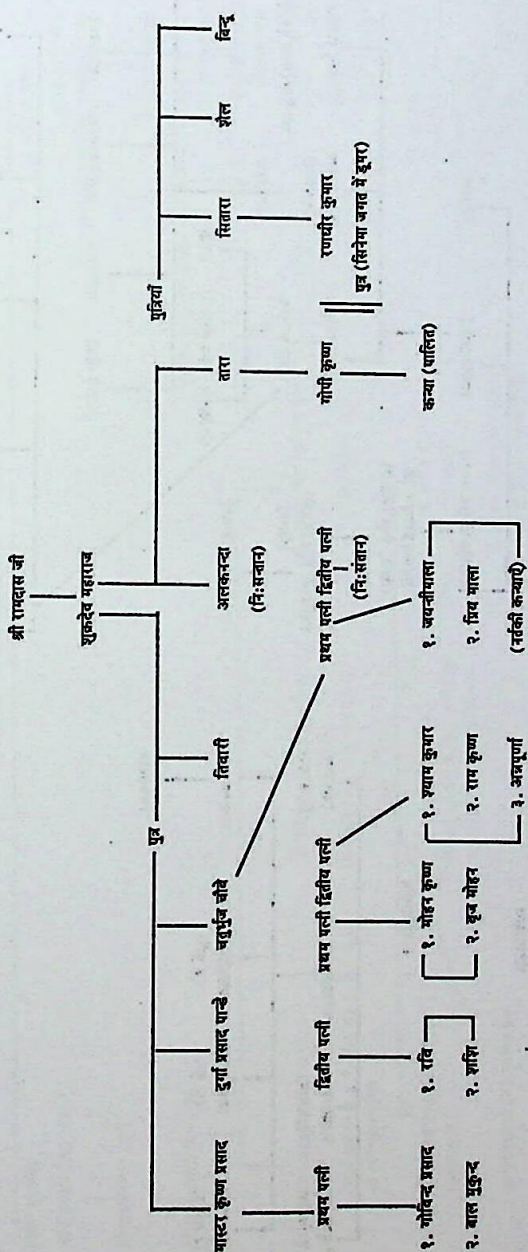
१२. शुक्लदेव

१३. दुर्गा

१४. कुन्दरलाल

१५. कृष्णकुमार (वर्तमान वंशज) देश के सुप्रसिद्ध नर्तक, नृत्य शिक्षक, नृत्य निर्देशक है, जिनके शिष्य-शिष्याओं का विशाल समुदाय जानकी प्रसाद जी के बनारस नृत्य धराने का कुशल प्रशिक्षण प्राप्त कर सभीत की सेवा में संलग्न है ।

नृत्य घराना



१. मायो कृष्ण

२. श्रीराम

घराने से सम्बन्धित शिक्षण

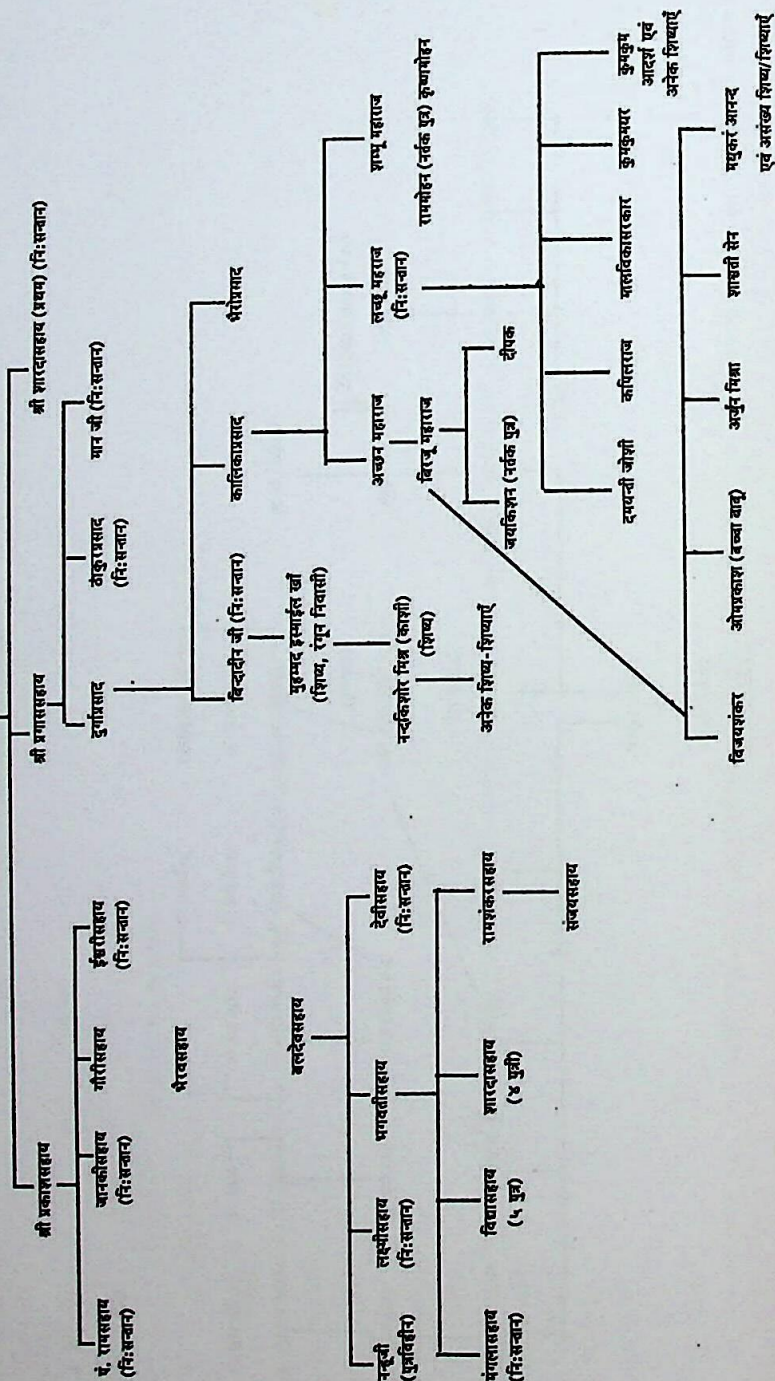
श्रीमदकुमारी, मधुबाला, शशिकला, कुम्हू, सन्ध्या, आशा परीख, नाज, इन्द्राणी तहमान, डेवी ईशानी, कल्पना, कुमुद छगनी, एका खन्ना, विन्दू इत्यादि अभिनेत्रियाँ।

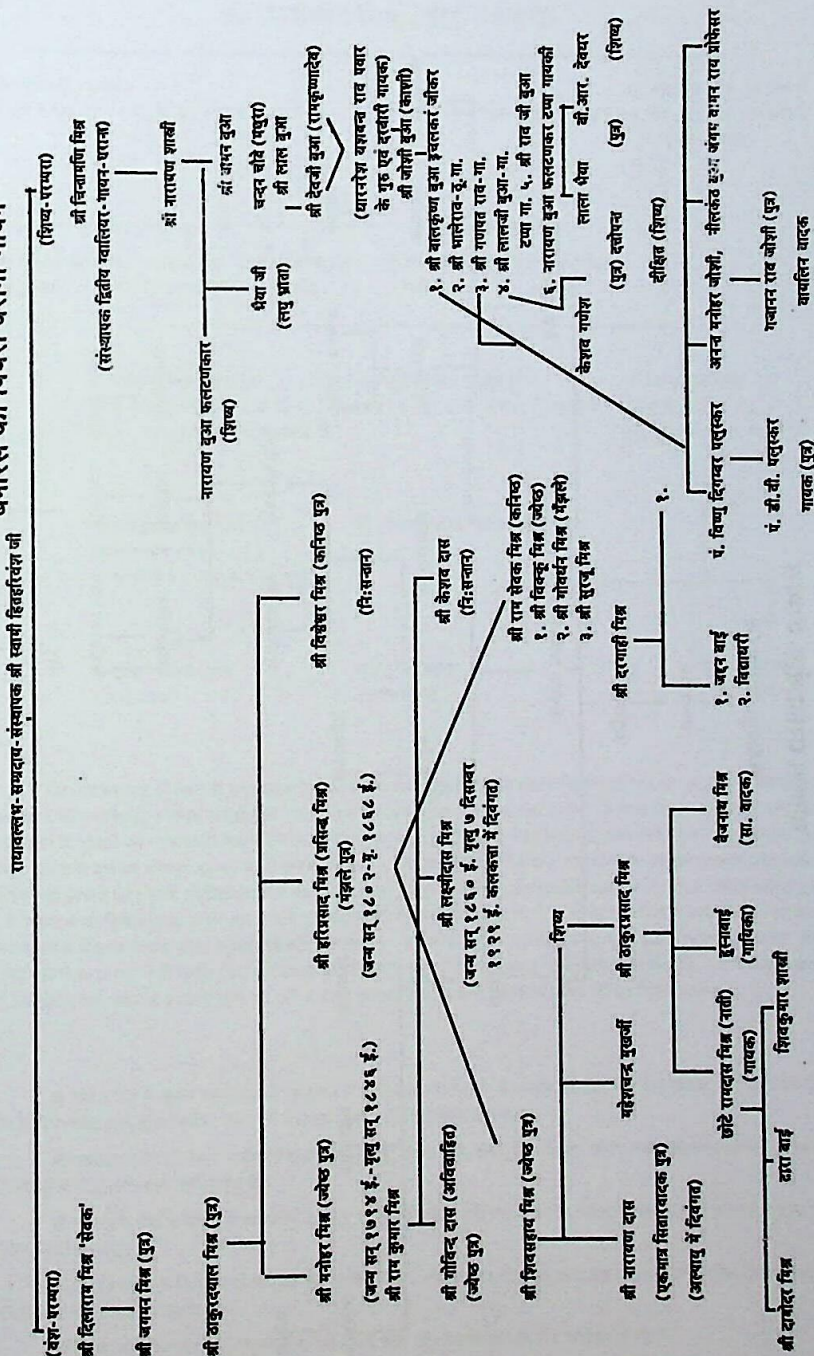
स्त्री चटर्जी, ल्याली चटर्जी, इन्दू पटेल, मधु कालिया, सारथी, लोकनाथ, ओंकार, मधु मिश्रा, प्रभुशंकर, अवधशंकर, अभय शंकर, रविशंकर, स्वस्मिणी, चन्द्रशेखर, भाला प्रसाद, मोहिकुमार, भाला टाउन आदि।

बनारस तबला घराना एवं लखनऊ नृत्य घराना का मूल स्रोत

ईश्वरी प्रसाद मिश्र (पूर्वज) लखनऊ नृत्य घराने के मूल प्रवर्तक

श्री शिष्यासहाय

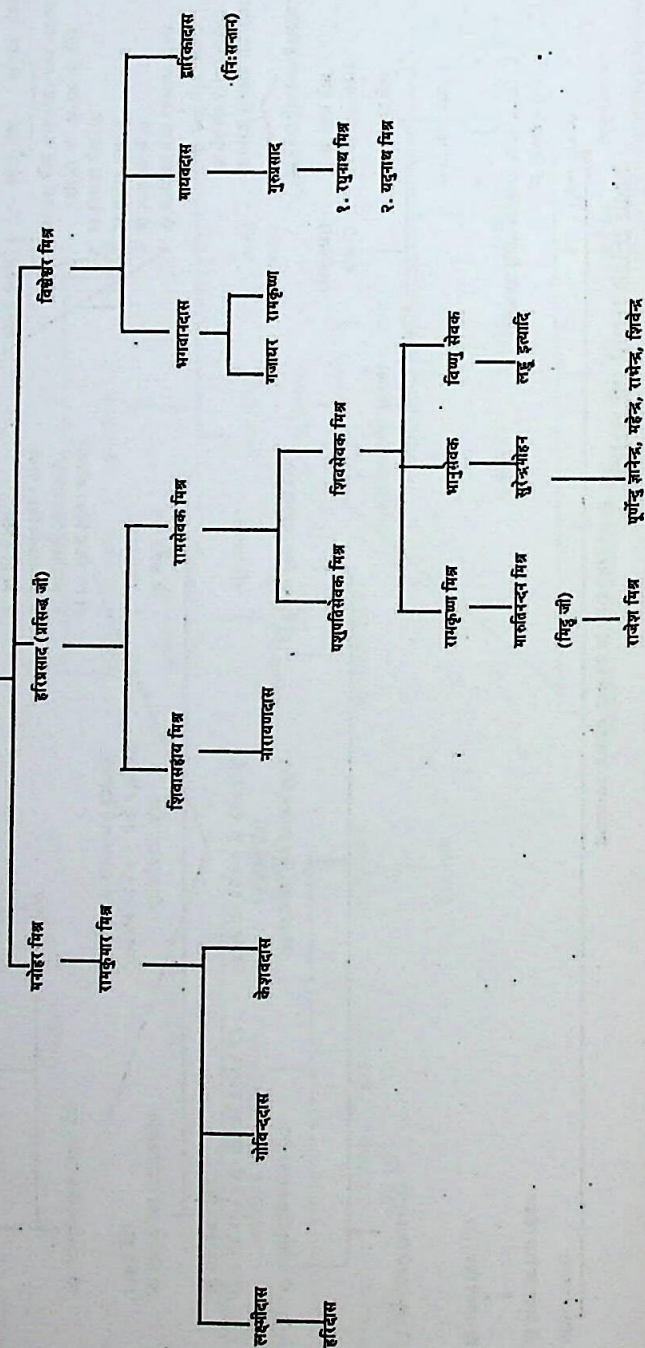




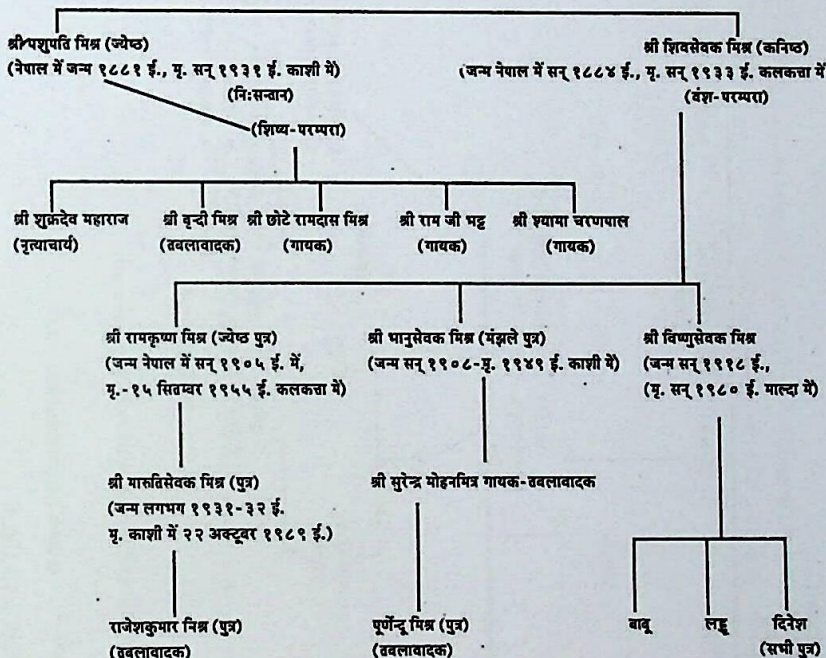
श्री दिलाराप-चिन्मयणि मित्र

गमन मिश्र

ठाकुरदयाल मिश्र



श्री रामसेवक मिश्र (वंश-परम्परा)



नोट-इस घराने के प्रतिनिधि श्री ठाकुरदयाल मिश्र का सम्पर्क जब ख्याल गायकी के प्रवर्तक नियामत खाँ 'सदार्ग' से हुआ, तो पियरी घराने में गायनशैली भी समाविष्ट हुई। प्रसिद्ध-मनोहर मिश्र ने शोरी पियाँ के सम्पर्क में आकर टप्पा गायकी से घराने को समृद्ध किया। विश्वेश्वर ने बहादुरशाह जफर दरबार के दरबारी कलावंत उस्ताद रजा खाँ से सितार की शिक्षा प्राप्त की और घराने में वंश वादन को प्रतिष्ठापित किया। पशुपतिसेवक मिश्र ने नेपाल दरबार के सुप्रसिद्ध बीनकार मुहम्मद खाँ से बीन की शिक्षा १५ वर्षों तक विधिवत् ग्रहण कर, वादनशैली पर अद्वय अधिकार प्राप्त किया। श्री शिवसेवक मिश्र ने अपने घराने की विशेषताओं के साथ-साथ नेपाल दरबार के विशिष्ट कलावंत टप्पा ख्याल शैली प्रवर्तक उस्ताद इनायत हुसैन खाँ से टप्पखाल की विशिष्ट शिक्षा लेकर अपने घराने की गायन शैली के साथ-साथ अन्य शैली पर भी विशेष अधिकार प्राप्त किया। इस घराने के नक्षत्री गायक बन्यु स्वनामधन्य प्रसिद्ध मनोहर मिश्र की शिष्य-परम्परा में पाँच नरेश महाराज महेन्द्रप्रताप सिंह, मुगल सम्राट् बहादुर शाह 'जफर' आदि एवं घराने की शिष्य परम्परा में श्री गोपाल मिश्र, श्री जिवनारायण मिश्र, गुरु प्रसाद (सभी स्वजातीय), एवं राधिकाप्रसाद गोस्वामी, नूनो गोपाल, विष्णुनाथ राय, काशीनाथ राय, लक्ष्मण नारायण बाबा जी, हरि कर्मकार (बाका) एवं विष्णुकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर-परिवार विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्री मनोहर मिश्र के सुकन्त गायक पुत्र श्री रामकुमार मिश्र की शिष्य-परम्परा में श्री कालीप्रसाद घोष, चन्द्र बंछोपाध्याय, मधु बंदीचोपाध्याय, महेश बंछोपाध्याय, शम्भु मुखोपाध्याय, सुरेन्द्रनाथ मजुमदार आदि ने विशेष प्रसिद्धि प्राप्त की।

श्री लक्ष्मीदास मिश्र की शिष्य-परम्परा में श्री अनामनाथ बसु, सुबोध नागी, क्षेमेन्द्रमोहन ठाकुर, गणिकलाल सतीशचन्द्र आर्णव, मन्मथनाथ घोष (पाचुरिया बाट, घोष-वंश) आदि प्रमुख थे।

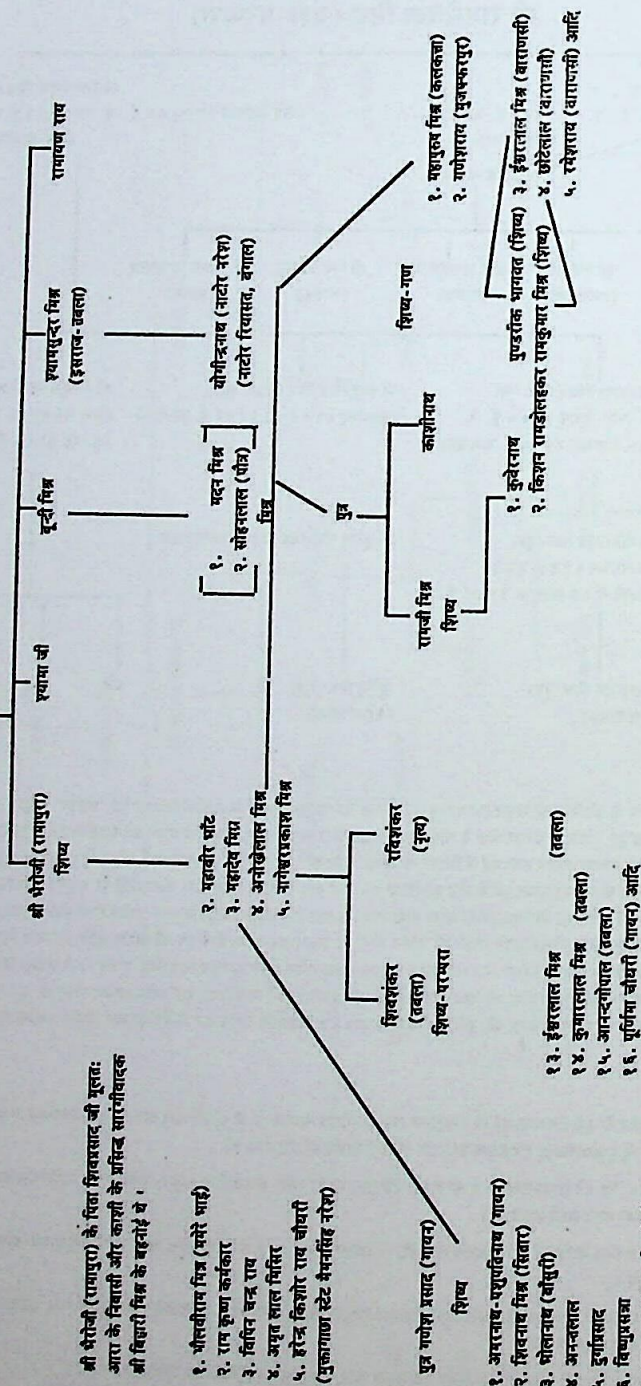
श्री शिवसेवक मिश्र के शिष्यों में नागेन्द्रनाथ लाहिड़ी, विजयदास पाकड़े, रवि सेन, रेखा सेन, महाराज शीतांशु कुमार आचार्य, सुमीन्द्र नाथ मजुमदार आदि प्रमुख हुए।

श्री रामकृष्ण मिश्र के शिष्यों में श्री ज्योतिकिशोर आचार्य चौधुरी, शीतलकुमार घोष, प्रतापचन्द्र ब्रह्म चन्द्र प्रभानाथ, अनिल विश्वास, जटाधर शाइन आदि ने लब्ध प्रतिष्ठित ख्याति हुये।

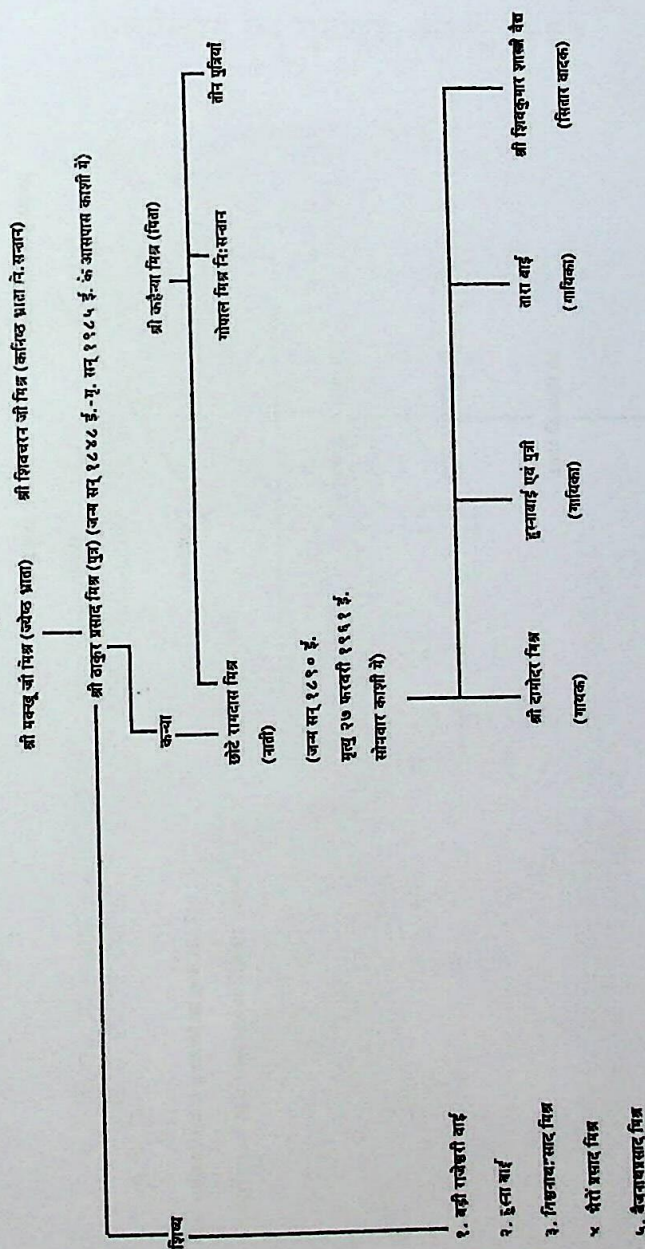
श्री विष्णुसेवक मिश्र की शिष्य-परम्परा में श्री यवीन्द्रनाथ घोष, शीतलकृष्ण घोष के नाम उल्लेखनीय रहे हैं।

इस प्रकार काशी के पियरी गायन घराने की वंश एवं शिष्य परम्परा के अन्तर्गत काशी से कलकत्ता, पूर्वी बंगाल, पश्चिमी बंगाल, बाका तक एक अविच्छिन्न संगीत मृन्माला फैली हुई है, जिससे संगीत जगत् में यह घराना सदैव अमर रहेगा।

बनारस के संगीत घराने की वंशावलियाँ/315

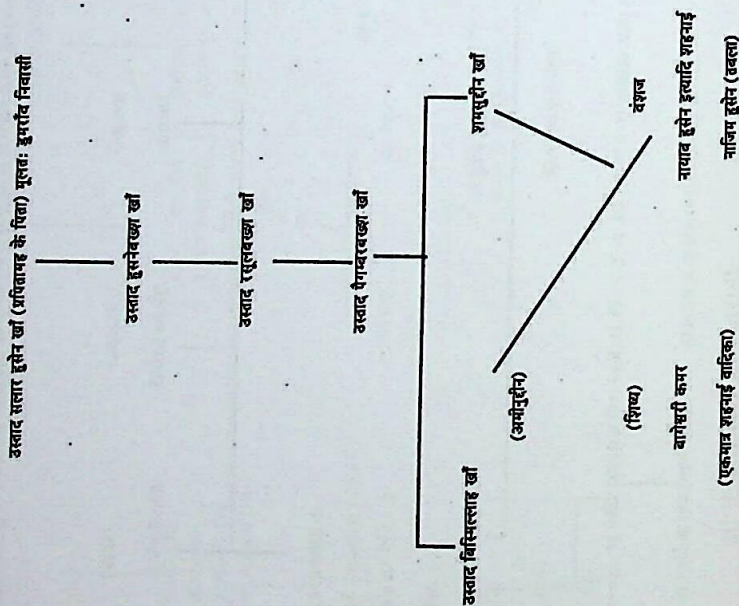


श्री ठाकुरप्रसाद मिश्र घराना



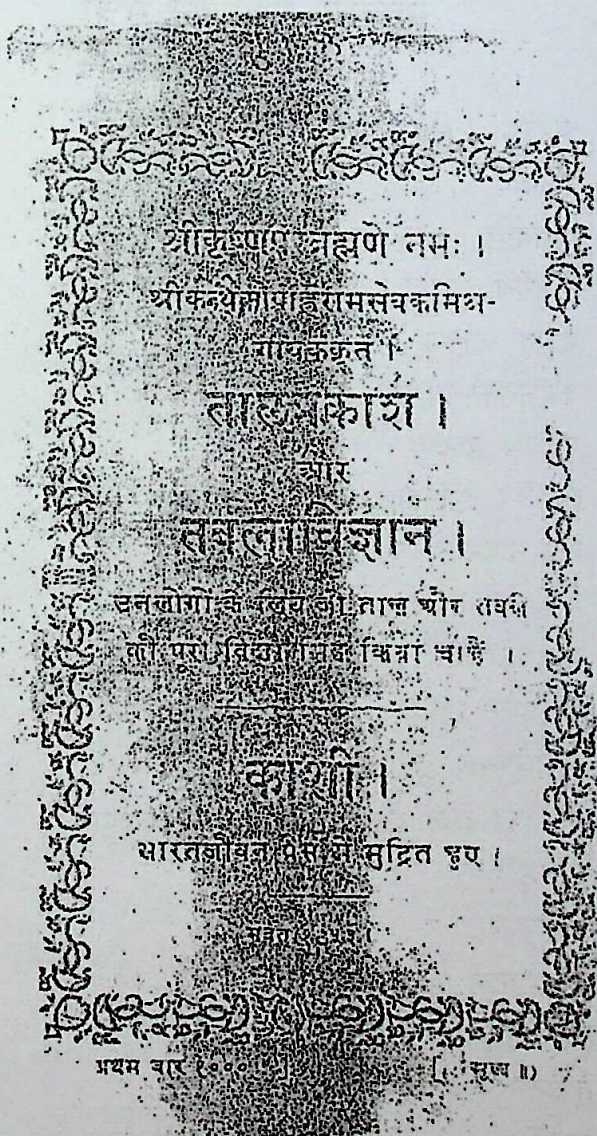
श्री ठाकुरप्रसाद मिश्र के पिता श्री यक्ष्म जी काशी के अनुपम सारंगी वादक श्री रामभूताय मिश्र के बड़ेपुत्र थे। श्री यक्ष्म मिश्र-शिवचरन मिश्र दोनों ही सारंगी के कुशल वादक एवं विद्वान् थे। श्री ठाकुरप्रसाद मिश्र को सारंगी वादन की शिक्षा पिता एवं चाचा से मिली। छयाल एवं टप्पा गायकी की शिक्षा पिता जी शिव सदाय मिश्र से मिली। टप्पा एवं छयाल का विकास संगठन आपके पास था। सारंगी पर की गायकी-गायकी के विद्वान् श्रीन, सुर्किंगार, सितार वादकों के अनुपम वादक थे। इसके अतिरिक्त सरस्वती वीणा, दिल बहार आदि वाद्यों के पारंगत विद्वान् किन्तु इन वाद्यों का वादन मात्र स्वतन्त्र सुझाव करते थे। छोटे रामदास मिश्र एवं गोपाल मिश्र (जाती) को अपनी विशिष्ट संगीतवादी शैली अत्युत्तम टप्पा गायक बनने में आपने विशेष परिश्रम किया।

उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ की वंश एवं शिष्य परम्परा



उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ ने उस्ताद विलायत हुसेन खाँ, बादिक हुसेन, अलीबख्श (भावा) से शहनाई की शिक्षा प्राप्त हुई ।

पं. रामसेवक जी द्वारा लिखित पुस्तक ताल प्रकाश और
तालविज्ञान का मुखपृष्ठ, संवत् 1953



पं. रामसेवक जी द्वारा लिखित पुस्तक...../319

सहायक ग्रंथों की सूची

1. ऋग्वेद
2. सामवेद
3. अथर्ववेद
4. तैत्तिरीय ब्राह्मण
5. गोपथ ब्राह्मण
6. कौशितकी ब्राह्मण
7. शतपथ ब्राह्मण
8. तैत्तिरीय उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर
9. केन उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर
10. माण्डुक्य उपनिषद
11. कठोपनिषद
12. छान्दोग्य उपनिषद
13. बृहदारण्यक उपनिषद
14. उपनिषद अंक 23वाँ, गीता प्रेस, गोरखपुर
15. मनुस्मृति
16. वायुपुराण
17. मत्स्यपुराण
18. ब्रह्माण्डपुराण
19. तैत्तिरीय संहिता
20. शारीरिक भाष्य

21. षट्चक्रनिरूपण
22. नारायणथर्वशीर्ष
23. योग तारावली-भगवद्पाद आद्यशंकरकृत
24. वाक्पदीय- चौखम्भा, वाराणसी
25. औमापतम् 5, मद्रास प्रकाशन
26. रुद्रडमरुद्भव सूत्र विवरण
27. कामकलाविलास-वात्स्यायन
28. अष्टाध्यायी पाणिनी
29. श्रीमद्भागवत पुराण- गीता प्रेस, गोरखपुर
30. स्कन्दपुराण - काशी खण्ड
31. शारदातिलक- डॉ. चमनलाल गौतम
32. नारद पाँचरात्र- तंत्र ग्रंथमाला, रामकुमार राय
33. पातंजल महाभाष्य
34. कीलहार्न
35. त्रिस्थली सेतु
36. शैवतंत्र
37. भारतीय संगीत शास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन- डॉ. विमला मुसलगाँवकर
38. श्रीमद् वाल्मिकीय रामायण- गीता प्रेस, गोरखपुर, भाग- 1-2
39. भारत का नाट्यशास्त्र
40. संगीत रत्नाकर- शार्ङ्गदेवकृत
41. संगीत दामोदर
42. महाभारत
43. विश्व की प्राचीन सभ्यता- श्रीराम गोयल
44. भारत का इतिहास- को.अ. अंतोनिका ग्रि.म. बोंगर्द लेनिन
45. भारत का इतिहास- डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल
46. पाणिनी कालीन भारत- डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल

सहायक ग्रंथों की सूची/321

47. हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन- डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल
48. प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व- आर. शरण
49. गुप्तकाल- एम.पी. श्रीवास्तव
50. प्राचीन भारतीय संस्कृति कला और दर्शन- एम.पी. श्रीवास्तव
51. मुगल कालीन भारत भाग 2- हरिश्चन्द्र वर्मा
52. मुगल भारत- डॉ. वि.बि. सिन्हा
53. प्राचीन भारत की संस्कृति- डॉ. जगन्नाथ मिश्र
54. भारतीय संगीत का इतिहास- श्री शरच्चंद्र परांजपे
55. भारतीय संगीत का इतिहास- ठाकुर जयदेव सिंह
56. भारतीय संगीत का इतिहास- उमेश जोशी
57. संगीत घरानों की चर्चा- सुशील कुमार चौबे
58. सम्राट तानसेन- प्रभुदयाल मित्तल
59. स्वामी हरिदास जी- प्रभुदयाल मित्तल
60. हमारे संगीत रत्न- लक्ष्मीनारायण गर्ग
61. प्राचीन भारत में संगीत- डॉ. धर्मावती श्रीवास्तव
62. भारतीय संगीत का इतिहास- भगवत शरण शर्मा
63. भारद्वाज पूर्वज और वंशज- डॉ. विश्वनाथ भारद्वाज
64. चूर्णिका 2
65. उत्तराध्ययन टीका
66. नायाधम्म 3
67. ठाणांग सुत्त 9
68. ओवाइया
69. रायाणसेणीय सुत्त
70. जातक ग्रंथ
71. जैनसूत्र
72. जैन साहित्य का बृहद इतिहास, भाग 5, छठा प्रकरण
73. दीघनिकाय

74. ललित विस्तार
75. गुत्तिल जातक, भाग-1, जातक सं. 243
76. दम्मेघ जातक, भाग-1, सं. 50
77. सुरुचि जातक, भाग-4, सं. 489
78. भूरिदत्त जातक, भाग-6, सं. 543
79. दारिमुख जातक, भाग-3, सं. 379
80. चन्दकिन्नर जातक, भाग-4, सं. 485
81. सौंदरानन्द-अश्वघोष
82. मध्य प्रदेश का इतिहास, डॉ. हीरालाल
83. एपिग्राफिका इण्डिका 7
84. राजतरंगिणी कल्हण
85. बयहाकी (गनि तथा फैयाज का अनुवाद)
86. मिनहाज
87. मिराशी कलचुरी नरेश उनका राजत्वकाल
88. दीवान मसूद साद सालमान संपादित रशीद यासीमी
89. इलियट एण्ड डाऊसन भाग 2,4,5,6
90. मोहम्मद तथा खालिक अहमद निजामी ए
91. काम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया-बर्नी
92. तारीख फिरोज शाही, कंजुक तारीख ले रजाउद्दीन
93. रम्भामंजरी अंक 1
94. ताजुलमासिर, तारीख अल्फी, फरिश्ता, फरवरेमुरद्दिर इप्ने उल मसीर
95. द. स्ट्रगल फॉर एम्पायर हबीबुल्ला
96. कैटलाग ऑफ कायन्स इन इण्डियन म्युजियम तबकाने नासिरी
97. तबकाने नासिरी
98. हिस्ट्री ऑफ द राठौर- आशुतोष वाल्युम 3
99. स्वयंभु पउमचरिउ संपा.एच.सी. भयाणी सिंधी और जैन ग्रंथमाला

सहायक ग्रंथों की सूची/323

100. भारतीय विद्या खण्ड 17, भाग 3
101. पुष्पदंत नायकुमार- चरिउ, सं. हीरालाल जैन
102. चतुरभणि-संपादित वा.श. अग्रवाल, मोतीचन्द
103. बदायुनी- भाग 4
104. सरकार औरंगजेब भाग 3
105. मा-आसीर-ए-आलमगीरी
106. क्रुक तावर्नियर्स ट्रेवल्स इन इण्डिया भारत 3
107. हौज ट्रेवल्स इण्डिया 1780-83 ई.
108. आइने अकबरी- अबुल फज़ल
109. जहाँगीरनामा मुंशीदेवी कृत
110. जलूली सन् नवाँ, बारहवाँ- डॉ. रघुवीर सिंह
111. फैजाबाद गजेटियर
112. अंवध की लूट- मेजर बर्ड
113. गार्डन ऑफ इण्डिया- मि. इरविन
114. गुजिस्तां लखनऊ- अब्दुल हलीम शरर
115. मुरवनसर तारिख अवध-नजमुलगनि
116. वाजिद अलीशाह- डॉ. मुहम्मद तकी
117. अयोध्या का इतिहास
118. भारत में अंग्रेजी राज भाग 1 सुन्दरलाल
119. आधुनिक भारत का इतिहास
120. विश्व संगीत का इतिहास अमलदास शर्मा
121. शंकर दिग्विजय
122. द राइटिंग ऑफ तामिल सिद्धान्त- द. सन्त कै. कैलाशपथी
123. सन्त काव्य धारा- परशुराम चतुर्वेदी
124. बलशौरी रेड्डी तेलगु साहित्य का इतिहास
125. भावात्मक एकता और संतसाहित्य का इतिहास- डॉ. विजयेन्द्र नाथ
126. हिन्दी संत काव्य में मधुर काव्य- डॉ. प्रवेश विरमानी

127. आदि कालीन संतसाहित्य- डॉ. शंभूनाथ पाण्डेय
128. आर.ए. जयंथ तल्लपक अन्नामाचार्य
129. श्री तुकाराम चरित- श्री लक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर अनु. ल.ना. गर्दे
130. संत नामदेव और उनका हिन्दी साहित्य- कृ.गो. वानखेडे
131. गुजराती संतों की हिन्दी वाणी- डॉ. अंबाशंकर नागर
132. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास- परशुराम चतुर्वेदी खण्ड-2
133. उत्तर भारत की संत परम्परा- परशुराम चतुर्वेदी
134. गुरुग्रंथ साहेब
135. रामजहाज बावरी पंथ की गुरुपद प्राप्त पोथी
136. गोपाल दास की सरभंगी
137. संत पानप की रचनायें
138. नाथ और संतसाहित्य- डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय
139. गोरखबानी
140. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, चतुर्थ भाग, भक्तिकाल परशुराम चतुर्वेदी (1400-1700 ई. ना.प्र. सभा वाराणसी)
141. सरभंगी रज्जबदास
142. मुसलमान भारतीय संगीत- आचार्य बृहस्पति
143. बाबा फरीद- बलवंत सिंह आनंद
144. औघड़ भगवान राम- यज्ञ नारायण चतुर्वेदी
145. कबीर ग्रंथावली
146. श्रीमद् वल्लभाचार्य उनका शुद्धाद्वैत एवं पुष्टिमार्ग लक्ष्मीशंकर निगम
147. महाप्रभु वल्लभाचार्य और पुष्टिमार्ग- पं. सीताराम चतुर्वेदी
148. ब्रजस्थ वल्लभ संप्रदाय का इतिहास- प्रभुदयाल मिश्र
149. सिद्धान्त मुक्तावली आचार्य वल्लभ
150. मानसिंह और मानकुतुहल हिन्दी अनु. हरिहर निवास द्विवेदी
151. 84 वैष्णवन की वार्ता
152. 252 वैष्णवन की वार्ता

153. 1-2 वैष्णवन की वार्ता
154. पुष्टि मार्गीय मन्दिरों की संगीत परम्परा- हवेली संगीत, प्रो. सत्यभान शर्मा
155. पुष्टि मार्गीय षष्ठ दर्पण-
लेख- (1) श्री वल्लभीय षष्ठ पीठ का इतिहास- महाराजश्री श्याममनोहर महाराज
(2) षष्ठ गृह का काशी का इतिहास- राधेकृष्ण अग्रवाल
(3) पुष्टिमार्ग और हवेली संगीत- विठ्ठलदास बपोदरा
156. काशी का इतिहास- डॉ. मोतीचन्द
157. बना रहे बनारस- विश्वनाथ मुकर्जी
158. बनारस का आधिदैविक वैभव- कुबेरनाथ सुकुल
159. वाराणसी वैभव- कुबेरनाथ सुकुल
160. कुट्टनीमतम्- दामोदर गुप्त
161. ये कोठेवालियाँ- अमृतलाल नागर
162. युगों-युगों में काशी- ठाकुर प्रसाद शर्मा
163. काशी का लघु इतिहास- शिवानन्द सरस्वती
164. काशी का महिमा- एस. सरस्वती
165. काशी की लोककला- डॉ. कमलगिरी
166. बहती गंगा रुद्र काशीकेय
167. काशी की संगीत परम्परा- कामेश्वरनाथ मिश्र
168. चौती- डॉ. शान्ति जैन
169. बनारस द सॅक्रेड सिटी ऑफ द हिन्दूज- एम.ए. शेरिंग
170. बनारस सिटी ऑफ लाईट- दियाना.एल.एक
171. वाराणसी रिडिस्कवर्ड- बी. भट्टाचार्य
172. बनारस द सॅक्रेड सिटी- इ.बी. हॅवेल
173. हिस्ट्री ऑफ बनारस- डॉ. ए.एस. आल्लेकर

174. बनारस इल्यूस्ट्रेटेड- जेम्स प्रिंसेप 1820-1840 ईस्वी

175. लेख-

- (1) बनारसी महफिल- डॉ. रायकृष्ण दास
- (2) बनारसी ठुमरी के आविस्मरणीय कलाकार- पं. किशन महाराज
- (3) बुढ़वा मंगल- डॉ. राय आनन्द कृष्णदास
- (4) वाराणसी की रामलीला- डॉ. भानुशंकर मेहता
- (5) काशी की संगीत परम्परा- रायकृष्णदास
- (6) काशी धर्म, कला एवं संस्कृति का संगम श्री पति मिश्र
- (7) काशी का सांस्कृतिक इतिहास- डॉ. श्रीपतिराम त्रिपाठी
- (8) वाराणसी की संगीत परम्परा- डॉ. सुरेशब्रत राय
- (9) काशी की संगीत परम्परा- विश्वनाथ मुकर्जी
- (10) यह बनारस है- पं. सीताराम चतुर्वेदी
- (11) बनारस में भाँड- विश्वनाथ मुकर्जी
- (12) वाराणसी की कजली उसकी परम्परा एम. भारती
- (13) कजली और झूला- पं. शिवकुमार शास्त्री
- (14) बनारस का बनारसीपन एम. भारती
- (15) काशी में पुष्टिमार्ग डॉ. केदारनाथ मिश्र

176. पत्रिकायें-

- (1) संगीत कला विहार- अ.भा.गां. मण्डल, मिरज
- (2) संगीत- संगीत कार्यालय हाथरस
- (3) सन्मार्ग- वाराणसी विशेषांक
- (4) प्रेरणा- काशी अंक 2000
- (5) काशी का रंगमंच
- (6) आज (दैनिक)
- (7) दैनिक जागरण (दैनिक)
- (8) गांडिव (दैनिक)



सहायक ग्रंथों की सूची/327



डॉ. वनमाला पर्वतकर का जन्म गोवा के प्रसिद्ध संगीतज्ञ घराने में हुआ । अपने पितामह लयभास्कर श्री लक्ष्मणराव पर्वतकर उर्फ खाप्रुमाम, पिता श्रीरामकृष्ण लक्ष्मणराव पर्वतकर से उन्होंने स्वर और लय का संस्कार प्राप्त किया । बनारस के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर आर्य महिला डिग्री कॉलेज तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में संगीत का अध्यापन कार्य किया । लेखिका देश-विदेश में संगीत के अनेक कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुकी है । बाबा भगवान राम संकीर्तन, शैवस्तोत्र, वैष्णवस्तोत्र, होली-चैती, प्रसाद निराला गीत आदि की भी रिकार्डिंग हो चुकी है । मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार से प्राप्त फेलोशिप पर किया गया शोध और अध्ययन प्रस्तुत पुस्तक के रूप में प्रकाशित है ।



शारदा संस्कृत संस्थान

जगतगंज, वाराणसी-221 002

फोन : (0542) 2204168 (संस्थान) 2452037 (आवास)

e-mail: sharadabhawan@yahoo.co.in

website: www.sharadasansthan.in

Des by: **arfrico** 9935269031

